जाने का विचार किया। मार्ग मे असह्य गर्मी तथा पानी न मिलने के कारण उसकी सेना का अधिक भाग पागल होगया और बहुत-सा समाप्त* होगया। प्रश्न होता है भीमदेव की इतनी बड़ी विजय का उल्लेख किसी प्रशस्ति, द्वयाश्रम (जैन ग्रन्थ), कीर्ति कौमुदी तथा किसी अन्य इतिहास-ग्रन्थ में क्यों नहीं हुआ ?

३—मुस्लिम इतिहास कहता है कि महमूद ने पाटण की गद्दी पर किसी डावि सलीम नामक व्यक्ति को करदाता के रूप में बिठाया। इसका कोई आधार भारतीय इतिहास में नहीं मिलता।

४—उपलब्ध सामग्री के आधार पर इतिहासकार भीमदेव का राज्यकाल सदा ही अविच्छिन्न मानते है। विक्रम संवत् १०८६के ताम्र पत्र मे लिखा है कि भीमदेव कच्छ देश पर राज्य करते थे। तथा विक्रम सवत् १०८८ में इनके मंत्री विमल आबू पर एक बडा मन्दिर निर्माण करा रहे थे।† यदि १०८२-८३ मे आक्रमण होता तो राज्य और वैभव की बात १०८८ में आश्चर्यजनक है !

५—सोमनाथ के आक्रमण का तिथि समेत उल्लेख महमूद के दो सौ वर्ष पश्चात्, अर्थात् सन् १२३० मे इब्न असीर की 'कामिलुत्त-वारीख' में मिलता है।

६—अनेक मुसलमान इतिहासकारों का कथन, जिन्होंने सोमनाथ की मूर्ति का वर्णन किया है, हिन्दू धर्म की दृष्टि से सर्वथा असम्भव है। इतना ही नहीं अलबरूनी, जिसने इस मूर्ति को आँखों देखा है लिखता है कि सोमनाथ का लिंग था, किन्तु वह शिव-मंदिरों मे मिलने वाले लिंगों की तरह नही था। महमूद के प्रशस्ति-गायको ने

---

*—फरिश्ता जिल्द १, पृष्ठ ७५, रतिकान्त भट्ट; गुर्जरेश्वर भीमदेव [illegible] प्रकाश जुलाई-सितम्बर १९३५ का अंक।

†—गोपीनाथ शंकर शास्त्री : गुजरातका मध्यकालीन राजपूत इतिहास, पृष्ठ १८९–१९०।

कहा है कि यह मूर्ति पोली नहीं थी ।*

इन आशंकाओं पर विचार करनेकी आवश्यकता है तो भी आक्रमण सत्य है, ऐसा मानकर मैंने इस उपन्यास का सृजन किया है। घोघाबापा का पराक्रम काल्पनिक नहीं है। मैंने अपने उपर्युक्त अंग्रेज़ी लेख में इसका उद्धरण दिया है किन्तु वह उद्धरण कहाँ से लिया गया है, यह मैं जल्दी मे नहीं खोज पाया। किन्तु राजपूताने मे अभी तक 'घोघादेव का स्थल' नाम से एक प्रसिद्ध स्थान है।

इस उपन्यास में मेरा उद्देश्य सुलतान महमूद के आक्रमण का वर्णन करना नहीं, अपितु गुजरात की तरफ से किये गए प्रतिरोध का दिग्दर्शन कराना है। यदि यह आक्रमण प्रबल था तो भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि गुजरात के सोलंकी राजाओं ने बलपूर्वक इसका प्रतिरोध किया। इस उपन्यास मे गुजरात के भीतर की दशा, उसके प्रतिरोध के प्रबल संचालक गङ्ग सर्वज्ञ, भीमदेव तथा सामन्त की भीष्म-दृढता, गङ्गा का आत्म-समर्पण, और चौला की प्रणय-विह्वल-भक्ति, देव-प्रसाद, मुंजाल और काक, मीनल और मंजरीका उल्लेख किये बिना गुजरात का दिग्दर्शन अज्ञेय तथा अपूर्ण होता।

उस समय प्रभास पाटण सम्पूर्ण भारत में पाशुपत (शैव) मत का केन्द्र था।† इस मत के संस्थापक लकुलेश अथवा नकुलेश शंकर के अवतार माने जाते थे। वे भड़ौंच के पास कामावरोहण (आज के कारवाड) में जन्मे थे। पाशुपत मत की एक मुख्य शाखा कापालिकोंकी भी है। कापालिक, कालमुख, वाममार्ग तथा भैरव इसकी उप-शाखाएँ मानी जाती है। इसकी प्रक्रिया को देखकर रोमांच होता है। खोपड़ी में खाना, चिता की भस्म का शरीर पर लेपन, भस्म का भोजन, त्रिशूल धारण करना, सुरा सेवन, तथा श्मशानवासी देव की पूजा करना आदि

---

*—रतिकान्त भट्ट का उपर्युक्त लेख।

†—दुर्गाशंकर शास्त्री: शैव धर्म का संक्षिप्त इतिहास।

मोक्ष-साधन के मार्ग माने गए हैं। एक शाखा पार्वती को त्रिपुर-सुन्दरी के रूप में मानने वाली भी थी। इन शाखाओं का अवशेष अघोरियों के रूप में आज तक विद्यमान है।

पाशुपत मत के केन्द्र प्रभास में गङ्ग सर्वज्ञ के द्वारा इन शाखाओं की प्रक्रिया का वर्णन कदाचित् पाठकों को अखरे; किन्तु इसके बिना ग्यारहवीं सदी में प्रभास का चित्रण अधूरा रहेगा, यही सोचकर उसका उल्लेख किया गया है। प्रबन्ध चिन्तामणि के कुमार पाल प्रबन्ध में भीमदेव की पत्नी और क्षेमराज की माता को वेश्या बताया गया है।

श्री मदणहिलपुरपत्तने बृहति श्री भीमदेवे साम्राज्यं पालयति श्री भीमेश्वरस्य पूरे चउलादेवी नाम्नी परायाङ्गना······ तामन्तःपुरे न्यधात्।※

इसके पुत्र का नाम क्षेमराज अथवा हरियाल था।† कदाचित् इसी कलंक के कारण क्षेमराज को गद्दी नहीं मिली।

अभिमानी चालुक्य ने एक नर्तकी को पत्नी बनाकर रखा, इसीके आधार पर चौला देवी के चरित्र का निर्माण हुआ है। मेरुतुंग ने चौलादेवी को अन्तःपुर मे रखने के कारण का उल्लेख किया है। उसी आधार पर चौला देवी का चरित्र काल्पनिक होते हुए भी सुन्दर बन गया है।

यह उपन्यास 'पाटण का प्रभुत्व', 'गुजरात के नाथ' तथा 'पृथ्वी-वल्लभ' की कथामाला का एक दाना तो है ही, किन्तु इसकी कल्पना, शैली, रचना और निर्माण मे बड़ा अन्तर पड गया है। उतना ही, जितना कि पच्चीस वर्ष और बावन वर्ष में हो सकता है।

साहित्य-सृजन के स्वरूप-निर्माण में मैंने अनेक प्रयोग किये हैं। कदाचित् उपन्यास-शिरोमणि अलैग्जैण्डर ड्यूमा की शैली की छाप भी

※—प्रबन्ध चिन्तामणि : कुमार पाल-प्रबन्ध।

†—श्री दुर्गाशंकर शास्त्री; गु मा. रा. इतिहास पृ० २०१

इसमें आगई है। सम्भव है आनन्द में पढ़ते-पढ़ते पाठक को पहले तीन प्रकरणों की भाँति आगे की शैली रुचिकर न लगे, किन्तु भीषण-प्रसंग, वेदनामय जीवन, तथा महान् उद्देश्य को लेकर चलने-वाले व्यक्तियों के चित्रण साधारण रंगीनी से सुन्दर भी तो न लगते? इसके अतिरिक्त मेरी साहित्यिक चेतना को ऊँचे-से-ऊँचा स्तर भी खोज निकालना था।

जैसा भी है यह उपन्यास गुजरात के चरणों में समर्पित है। आज बहुत वर्षों के पश्चात् मेरा यह संकल्प पूरा हुआ है, यही मेरे लिए सन्तोष का विषय है।

महाबालेश्वर। —कन्हैयालाल मुन्शी

२०-५-४०

सूचि

प्रकरण

पहला प्रकरण

जगत् के नाथ

: १ :

सम्वत् १६८२ को कार्तिक शुद्धि एकादशी थी। लोह-चुम्बक से खिंचे हुए-से यात्रीगण सोमनाथ के परम पूज्य शिवालय की ओर आकृष्ट हुए चले आ रहे थे।

कोई देलवाड़ा के रास्ते, कोई वीरावल बन्दर से, कोई जूनागढ की ओर से, कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई सबल, कोई रोगी, कोई लूला, कोई लंगड़ा; कोई पैदल, कोई गाड़ी में, कोई घोड़े पर या रथ में, कोई ऊंट या हाथी पर, कोई भजन गाते, कोई कीर्तन करते, कोई एकतारे की धुन में, कोई झांझ पखावज की ताल के साथ; कोई रक्षकों द्वारा सुरक्षित धन-सञ्चय लेकर, कोई जीवन-भर जोड़ी हुई पाइयों को साथ ले, कोई निर्धनता में मस्त, भिक्षा द्वारा ही अपनी मंजिल तय करता हुआ, कोई बाधा छुड़ाने, कोई भक्ति में डूबा हुआ, कोई धन-त्याग के लिए, तो कोई धन-संग्रह के लिए, कोई बेचने तो कोई बिकवाने के लिए, कोई पुण्य के लिए तो कोई पाप-मोचन के लिए, सहस्रों की संख्या में वे चले आ रहे थे, और उनके सामने एक ही परम कर्तव्य था—देव का दर्शन, उनके कानों में एक ही पुण्य नाद गूंज रहा था—"जय सोमनाथ"।

वहां यात्री लोग चले ही आ रहे थे—कोई प्रभासपुरी के प्राकार के भीतर तो कोई बाहर, मार्ग में अथवा वृक्षों की छाया में, किसी घर में या धर्मशाला में बैठते, सोते या भोजन की तैयारी करते।

समीप पहुंचने पर वे सूर्य के तेज में जगमगाती भगवान् शङ्कर की राजधानी पर भक्तिभाव-पूर्ण दृष्टिपात करते, वहां के सहस्रों मन्दिर-शिखरों पर विराजमान ध्वजाओं के नर्तन द्वारा अपने हृदयों को उल्लसित करते और सोमनाथ मन्दिर के स्वर्ण-कलश के मोहक तेज से मुग्ध हो उसकी भगवी विशाल पताका की विजयपूर्ण फरफराहट में ही मोक्ष मार्ग निहारते यात्रीगण वहां आते ही जा रहे थे, और नगर के मुख्य द्वार में एक दूसरे से टकराते, हुंकार करते और "जय सोमनाथ" का घोष करते हुए घुस रहे थे।

: २ :

सोमनाथ का शिवालय वास्तव में न तो कोई घर था, न कोई शहर, और न कोई स्वस्थ प्रदेश, किन्तु सदियों से चली आ रही श्रद्धा ने उसे देव-भूमि के समान समृद्ध और मोक्षदायी बना रखा था।

शिवालय के परकोटे के बाहर श्मशान में मोटे-ताज़े काले महाव्रत-धारी कापालिकों का झुण्ड एकत्र था। खोपड़ियों के आभूषणों के कारण भीषणाकृति वे लोग राख या नर-मांस खाते थे और खप्परों में हुंकार के साथ मदिरा-पान करते थे।

परकोटे के भीतर धर्मशाला में धनवान यात्रीगण ठहरे हुए थे और उस स्थान से बाईं ओर तेली और मोची आदि अन्य ग़रीब लोग बसते थे। दाहिनी ओर दुर्गपाल, चौकीदार और पहरेदार रहते थे। दरवाज़े में के चौड़े रास्ते से आगे बढ़कर कुएं और बावड़ी के पास से मुड़ते ही एक छोटा-सा बाज़ार आता था। वहां गुजराती व्यापारी संसार-भर के कला-कौशल की सामग्री एकत्रित कर यात्रियों को बेचते थे। तांबे पीतल के बर्तन, रेशमी और ज़री के कपड़े व भांति-भांति के अलङ्कार वहां दिखाई पड़ते थे। वहीं पर वृद्ध गुजराती साहूकार पैर-पर-पैर रखकर अपनी बड़ी तोंद पर हाथ फेरता हुआ व्याज पर लोगों को पैसे उधार दे धनाढ्य होने में रात-दिन संलग्न रहता था।

बाज़ार के दोनों ओर उच्च वर्ण की बस्ती थी। ज़रा आगे बढ़कर

एक अन्तर्कोट आता था और उसके निकट ही बाहर की ओर ब्राह्मणों का निवास था। वहां दो हजार श्रोत्रिय वेदाभ्यास, पाठ-पूजा और शास्त्रीय विधि द्वारा इस लोक में सोमनाथ की कीर्ति और परलोक में अपना मोक्ष साधते थे।

अन्तर्कोट लगभग बीस हाथ ऊंचा और छः हाथ चौड़ा था, उसमें प्रवेश करते ही दोनों ओर पंडों की बैठकें और पूजा-सामग्री की दूकानें लगी थीं। बीच में गणपति का मन्दिर था। कहा जाता है कि यह मन्दिर राजा ययाति ने बनवाया था। दाहिनी और बाईं ओर फूलों के उद्यान थे। हिरण्या नदी से दो बड़ी नहरों द्वारा पानी आता था जिससे उद्यान हमेशा हरे-भरे रहते थे।

दाहिनी ओर के उद्यान के आगे भैरव का मन्दिर था, जिसमें कापालिक और कलमुंहे मांस और मदिरा से यथाविधि पूजा कर उग्र एवं भयानक भैरव की आराधना करते थे। कहा जाता है कि काल-चतुर्दशी के दिन वहां नरमेध भी होता था। उस समय भाग्यवश ही कोई यात्री वहां पहुंच सकता था। बहुत-से लोग तो जैसे-तैसे अपनी कंपकंपी को दबाकर दूर से ही प्रणाम करके चले जाते थे।

बाईं ओर के उद्यान में द्वार से घुसते ही अनेक दन्त-कथाओं के केन्द्र त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में जाने का मार्ग था। इस मन्दिर के आस-पास कुमारी, काली, कापाली, चामुण्डा आदि भगवती उमा के भिन्न-भिन्न स्वरूपों के छोटे-बड़े मन्दिर थे।

त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में यात्री लोग कुतूहल से जाते थे। वहां प्रत्येक स्तम्भ और गोपुर पर शिव एवं शक्ति की युगल मूर्ति दिखाई देती थी। मन्दिर के द्वार पर एक बड़ा भैरवी चक्र खुदा हुआ था। स्त्री होकर ही मोक्ष मिल सकता है ऐसी श्रद्धा रखने वाले पचासों भक्त वहां ललनाओं के हाव-भावों द्वारा इस महाशक्ति की दिन-रात पूजा करते थे।

आश्विन मास के पहले दस दिन महाशक्ति के सजीव प्रतीक का

स्तवन, कीर्तन और पूजन उत्तरकौलिक सम्प्रदाय के शाक्त लोग किया करते थे। मधु, मांस, मत्स्य और मदिरा के नैवेद्य बिकते तथा भोग और विलास ही मोक्ष के परम साधन बन जाते थे।

इस सम्प्रदाय की दीक्षा लिये हुए स्त्री-पुरुष मन्दिर में वर्ण, जाति और आचार का भेद-भाव छोड़कर जगज्जननी की आराधना मे तल्लीन रहते थे।

: २ :

गणपति-मन्दिर के ठीक सामने मुख्य मन्दिर के परकोटे का द्वार था। उसके ऊपर नौबतख़ाना था जहां पहर-पहर पर चौघड़िया बजती थीं। इस द्वार के दोनो ओर दो दीप-स्तम्भ थे और उन पर पत्थर मे खुदी हुई दो वृषभ की मूर्तियां थी। दोनो ही दीप-स्तम्भो पर अद्भुत खुदाई का काम किया हुआ था। दाहिनी ओर के दीप-स्तम्भ के पास चन्द्रकुण्ड था जिसमे स्नान करने वाले महानुभाव समस्त रोगों एवं पातकों से मुक्त हो जाते थे।

दीप-स्तम्भों के बीच में होकर जाने पर ठीक सामने सभा-मण्डप की सीढियां पड़ती थीं जिनके द्वारा मण्डप से गर्भ-गृह में जाने का मार्ग था। गर्भ-गृह के ऊपर बडा शिखर था, जिसके प्रत्येक स्तर पर देश-देश के कलाकारो द्वारा भिन्न-भिन्न चित्र अङ्कित किये गए थे। उस शिखर पर भगवान् शम्भु की भगवी विजय-वैजयन्ती फरफराती थी।

सभा-मण्डप में जाते हुए दोनो ओर ऐरावत पर बैठे हुए इन्द्रराज की काले पत्थर पर खुदी हुई दो प्रतिमाये थीं और ऐसा प्रतीत होता था कि मानो देवराज वहां पूजा करने ही आये हों। मण्डप जितना विशाल था उतना ही भव्य भी दिखाई पडता था। अपने अठतालीस खम्भो के कारण वह मण्डप वृक्षावलियों से विस्तृत एक विशाल वन का चित्र सामने उपस्थित करता था। उसमे पांच हज़ार मनुष्य एक साथ खडे होकर भगवान् सोमनाथ के दर्शन कर सकते थे।

मण्डप के सामने पूर्वाभिमुख गर्भ-द्वार की ओर मुंह किये हुए

पीतल का एक बडा नन्दी था जिसकी पूंछ का स्पर्श भी संसार-सागर से पार हो जाने के लिए परम साधन माना जाता था।

गर्भ-गृह मे त्रिभुवनेश्वर भगवान् सोमनाथ विराजते थे। सृष्टि के प्रारम्भ से पूर्व, पुरुष और प्रकृति उत्पन्न हुए। एक दूसरे के ध्यान मे मस्त नारायण और नारायणी के रूप मे दोनों ही अनन्त जल मे विराजमान हुए। उस समय नारायण की नाभि से कमल का प्रादुर्भाव हुआ और उसके शतदलो की कान्ति करोडो सूर्यों के ससान जाज्वल्यमान होने लगी। उस नाभि-कमल से हिरण्यगर्भ प्रकट हुए। "मैं किसका पुत्र हूं" यह ब्रह्मदेव ने स्वयं प्रश्न किया जिसके समाधान के हेतु सदियो तक उस कमलनाल मे वे परिक्रमण करते रहे। आखिर ब्रह्मदेव ऐसा करते-करते थक गये और उन्होंने तप करना प्रारम्भ किया। तीव्र तपश्चर्या के अनन्तर पीताम्बर धारण किये चतुर्भुज-स्वरूप भगवान् विष्णु के दर्शन का सौभाग्य उन्हे प्राप्त हुआ।

अनेक युगों से अपने हृदय में उठते हुए इस प्रश्न को ब्रह्मदेव ने पूछा कि 'हे भगवन्! मैं किसका पुत्र हू।' विष्णु भगवान् ने उत्तर दिया कि मैं जगत् का रचयिता हूं और मेरे द्वारा ही तुम प्रकट हुए हो। इस प्रकार के अपमान को सहन करने मे असमर्थ ब्रह्मदेव क्रोध के आवेश मे विष्णु भगवान् के साथ भीषण युद्ध करने के लिए उद्यत हुए। शतदल कमल के प्रकाश मे तुमुल द्वन्द्वयुद्ध शुरू हुआ। उस समय युद्ध मे निमग्न दोनों भटों के मध्य सैकडो ज्वालाओं से देदीप्यमान, प्रलयकालीन सागर के अग्नि-समुदाय के समान तेजस्वी, क्षय और वृद्धि से रहित अनिर्वचनीय एवं अतर्कित तथा जगत् के मूल स्वरूप इस अद्भुत ज्योतिर्लिंग का प्रादुर्भाव हुआ। उसी क्षण भगवान् विष्णु ने वराह का और ब्रह्मदेव ने हंस का रूप धारण कर इस ज्योतिर्लिंग का आधार आकाश और पाताल तक पाने का प्रयत्न किया। इस ज्योतिर्लिङ्ग पर सबसे पहले सुवर्ण का मन्दिर बना हुआ था। और जब कि सतयुग का भी प्रारंभ न हुआ था तब वहां अमृत-किरण भगवान्

चन्द्रमा बारहो महीनों की रात्रियो को सुशोभित किया करते थे। किन्तु बृहस्पति की साध्वी स्त्री तारादेवी को मोहित करने मे चन्द्रमा कर्तव्य-भ्रष्ट हुए। वे अपनी सत्ताईस पत्नियो मे से केवल रोहिणी ही के पीछे उन्मत्त रहा करते थे। पति की उपेक्षा से दुखी हो उनकी अन्य स्त्रियां अपने पिता दक्ष प्रजापति के पास बिलखती हुई पहुंचीं। दक्ष प्रजापति अपनी कन्याओ के दुःख को न देख सके और क्रुद्ध हो उन्होंने चन्द्रमा को शाप दिया कि "तू क्षय रोगी हो"। अभिशाप को सुनकर त्रिलोकी इस भय से थर-थर कांपने लगी कि भविष्य में कौमुदीहीन रजनियों का अनुभव करना होगा।

पल-पल में क्षय को प्राप्त करता हुआ सोम ससुर के शाप से जलता हुआ अन्त में इसी ज्योतिर्लिङ्ग की शरण में आया और उसने अनेक युगों तक यहां तप किया। अन्ततः उसकी तपस्या से सन्तुष्ट हो ज्योतिर्लिङ्ग ने प्रसाद रूप मे चन्द्रमा का क्षय स्थगित किया और वरदान दिया कि 'जा पन्द्रह दिन तेरा क्षय होगा और पन्द्रह दिन तेरी वृद्धि होगी।' उसी समय से इस ज्योतिर्लिङ्ग का सोमनाथ के नाम से सत्कार कर ऋषियों और देवताओ ने चन्द्र-कुण्ड की स्थापना की और स्वयं चन्द्रमा ने सुवर्ण का मन्दिर बनवाया।

अनेक युग बीत गये। लङ्काधिपति रावण ने जगत् का आधिपत्य हस्तगत करने की लालसा से यहां उग्र तपश्चर्या की। शम्भु को प्रसन्न करने के लिए बारी-बारी से अपने मस्तकों को काटकर सोमनाथ के चरणों में अर्पण किया। अन्त मे जब वह अपना आखिरी सिर काटने को तैयार हुआ तब कृपासागर भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए और उन्होंने दसों मस्तकों को पुनः स्थापित कर जगद्विजय करने का अधिकार रावण को दिया। उस अवसर पर दशानन ने इस स्थान पर रजत-मन्दिर बनवाया।

द्वापर और कलियुग की सन्धि मे यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियो सहित इसी ज्योतिर्लिङ्ग की

आराधना कर नरोत्तम पद प्राप्त किया और उसी अवसर पर उन्होंने यहां चन्दनकाष्ठ का मन्दिर बनवाया।

कालक्रम से जब कलि का प्रभाव हुआ तब वल्लभीपुर के परम-माहेश्वर राजाओं ने यहां पत्थर का मन्दिर तैयार किया तब विश्वकर्मा ने मदद की थी और गन्धर्व तथा किन्नरों के गान और नृत्य के साथ इस मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई थी।

: ४ :

इस ज्योतिर्लिङ्ग पर दिन-रात रुद्री-पाठ होता था और सामने सभा-मण्डप में सूर्योदय से लेकर मध्यरात्रि तक सतत नृत्य हुआ करता था।

दीप-स्तम्भ के सामने से प्रदक्षिणा के मार्ग में जाते हुए तीन और छोटे-छोटे द्वार आते थे, जिनमें से एक में से पाशुपत मठ को मार्ग जाता था। वहां पूज्यपाद गङ्ग सर्वज्ञ रहते थे। शङ्कर के अवतार लकुलेश द्वारा स्थापित किये हुए पाशुपत सम्प्रदाय के वे अधिष्ठाता थे। सकल ज्ञान के अम्भोधि होने के नाते उन्होंने सर्वज्ञ की उपाधि प्राप्त की थी। काश्मीर से लगाकर काञ्ची पर्यन्त शिष्यगण उनका गुणगान करते थे। देश-देश के नरेश अपनी मुकुट-मणियों के तेज से उनके चरण धोते थे। उनकी छोटी-से-छोटी आज्ञा में जनता भगवान् सोमनाथ की दिव्य आज्ञा समझती थी। वे न केवल देवता ही माने जाते थे वरन् देवताओं के लिए भी दुर्लभ तपोनिधित्व उन्होंने प्राप्त किया था।

दूसरा पिछला द्वार एक छोटे-से चौक से होकर यात्री को नदी की ओर के दरवाजे पर ले जाता था।

: ५ :

परकोटे के दक्षिण की ओर चौथा द्वार था। उसमें से होकर नर्तकियों की बस्ती की ओर जाने का मार्ग था और वहां आसपास एक छोटा-सा कोट भी बना था।

इस बस्ती में लगभग तीन-चार सौ नर्तकियां रहती थीं। उनमें

कई गुजरातिनें थी, जो गेहुएं वर्ण और छोटे कद की थीं तथा मन्द भाववाही स्वर से देव की आराधना करती थी। कई उत्तर भारत की रहने वाली थीं। वे कम समझ मे आने वाली भाषा बोलती थी और खुले स्वर से अपरिचित रागो मे ही देव को रिझाने का प्रयत्न करती थीं। कई और उनसे भी आगे के उत्तरीय प्रदेशो की रहने वाली थी। और कई पर्वतीय प्रदेशो की भी थी, जो ऊंची, पूरी गौराङ्गी और तेजस्विनी थीं किन्तु उनका कण्ठ कर्कश था और उनके राग मे माधुर्य की न्यूनता होती थी। कई नर्तकियां दक्षिण की भी थीं। जो श्याम वर्ण की और छोटी नाक वाली थीं। वे नव-नूतन अभिनय के साथ नृत्य करती मधुर स्वर से गाती और जिसे अन्य कोई न समझे ऐसी भाषा बोलती थीं।

वे सब देव-समर्पित थी, देव को नृत्य-गीत द्वारा आराधित करना ही उनका आजीवन कर्तव्य था। वे चार सौ स्त्रियां दिन-रात वस्त्रा-भूषणों के सजाने मे, सङ्गीत एव नृत्य के सीखने या सिखाने मे अथवा किसी पुरुष को विलास के पाठ पढाने मे अपना काल-यापन करती थी।

: ६ :

इस बस्ती में सब घरो से अलग एक छोटा और सुन्दर घर था। इस घर के सुरचित चौक में एक वृक्ष के नीचे खटिया पर औंधी पड़ी हुई एक कुमारी अपने सुन्दर छोटे-से हाथ पर कपोल टिकाकर, अलग-फैलाये हुए अपने पैरों को खटिया पर ठोक रही थी। दोपहर मे ।कर उठने के बाद वह इस प्रकार लेटी हुई थी। उसके चमकते हुए और सिंह की अयाल के समान कोमल काले बालो के लच्छे उसकी खुली-पीठ को आधे ढकते हुए घुटने तक लहराते थे। अधीरता के कारण ज्यो-ज्यो उसके पैर खटिया पर गिरते थे त्यो-त्यो वे बाल काले पानी के प्रवाह के समान उसके पैरो पर से बहते प्रतीत होते थे।

जैसे-जैसे उसकी अधीरता बढ़ती वैसे-वैसे उसके पैर जोर से गिरने-लगते और केश की धाराएं उछल-उछल कर पैरो पर से जोश से बहने लगतीं।

जगत् के नाथ

वह अठारह वर्ष की थी, किन्तु उसके शरीर का ठाट-बाट पन्द्रह वर्ष की बालिका के समान था और उसके मुख-मण्डल पर आठ वर्ष के बालक की मधुरिमा एवं सरलता आभासित होती थी। परन्तु उसके तेजस्वी नयनों में वयोमान की अपेक्षा अधिक प्रशान्त गाम्भीर्य था।

उसके भाल पर रेखाएं आतीं और चली जातीं। अभी तक उसकी माता क्यों नहीं लौटी? सर्वज्ञ ही उसकी माता को न जाने किस कारण इतने विलम्ब तक विठा रखते थे? यह वृद्ध महानुभाव सदा ऐसा ही कुछ करते रहते थे।

उसने अपना सिर ऊंचा किया और सूर्य नारायण की ओर देखा। उसके भाल पर हृदय को हिला देने वाली ललित कमान खिंच गई। सूर्य ढलने लगा था और भगवान् सोमनाथ के मन्दिर पर गिरती हुई उसकी किरणें सौम्य होने लगी थीं।

कितने ही काल तक वह गम्भीर नयनों को मन्दिर के शिखर पर गड़ाये रही। इस गगन-चुम्बी शिखर की कारीगरी में आनुवंशिक शिल्पियों ने भव्यता के सत्त्व का सृजन किया था। चौला इसे कैलास मानती थी। बालपन से ही वह वहां जाती और मन्दिर के छज्जे पर खड़ी-खड़ी सागर की तरङ्गों की ताल के साथ नृत्य करती रहती।

थोड़ी ही देर में सूर्यास्त होगा—चौला की विचार-माला चली—और आरती शुरू होगी और फिर उसकी बारी—उसके जीवन की अपूर्व घड़ी आयगी। वह बालिका थी तब ही से उसकी माता इसके सपने देखती थी और जब से वह सयानी हुई तबसे इसके लिए दिन-रात एकाग्र चित्त से परिश्रम कर रही थी। जिस क्षण के लिए वह जीवित थी अब वह उसके हस्त-परिमाण में आने वाला था।

जगत् के नाथ, सोमनाथ के रञ्जन-हेतु उसकी माता के समान तीन सौ नर्तकियां दिन-रात नृत्य करती थीं, परन्तु वह स्वयं सबसे पृथक् थी। किसी के भी पैर इतने सुरेख और सबल न थे। उसकी कटि के झुकाव की छटा किसी और की कटि में न थी। गङ्ग सर्वज्ञ भी

उसे बुलाकर हमेशा समाचार पूछते और उसे विश्वास था कि वे भी उसमें अनुराग रखते थे। कई बार नाचते-नाचते जब उसके पैर थक जाते तब सोमनाथ उसे शक्ति देते थे। कई बार स्वप्न मे त्रिशूलधारी ने दर्शन देकर उससे कहा था "बेटी तू मेरी सच्ची नर्तकी है"। और वह भी अपने इष्टदेव ही की थी—तन से और मन से, श्वास और प्राण से। जीवन-भर भगवान् के चरणो में नृत्य करने के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु के प्रति उसके हृदय में स्वल्प भी रस न था। जीवन-भर नृत्य करना—"जय सोमनाथ" की घोषणा के साथ नृत्य करते-करते देव-मन्दिर के गर्भ-द्वार के आगे प्राण त्याग देना—इससे अधिक सुन्दर पराकाष्ठा उसकी कल्पना मे आती ही न थी।

देवालय की नृत्यशाला के नियमानुसार अठारह नृत्य-शास्त्र, बारह अभिनय-शास्त्र और सप्त संङ्गीत-शास्त्र में निष्णात अठारह वर्ष की बाल-नर्तकी को कार्तिकी एकादशी की नीराजना के समय पहली बार देव के सामने नृत्य करने का अधिकार मिलता था। इस धन्य क्षण मे एक बाल-पुष्प विकसित होता—देव को अर्पित होता—और फिर उसका अवशिष्ट अवतार प्रतिदिन नृत्य करती हुई नर्तकी के रूप में सूखता रहता।

चौला को इस क्षण-भर के प्रकाश के पीछे स्थित अन्धकार का भान न था। आज वह नृत्य करेगी और सोमनाथ स्वयं उसके ऊपर प्रसन्न होंगे। उन्हें प्रसन्न करने के हेतु उसने क्या अल्प तपश्चर्या की थी? नृत्य-कला के शिखर पर पहुंचने के लिए उसने अपनी इन्द्रियों का दमन कर रखा था, न तो उसने अपना आहार बढाया, न निद्रा अधिक ली और न कभी पुरुष ही का स्पर्श किया। सोमनाथ अवश्य प्रसन्न होंगे और...हमेशा एकादशी और शिवरात्रि के उत्सव पर उसके सिवाय किसी दूसरी का नृत्य देव कभी नहीं देखेंगे—यह उसका विश्वास था। कई बार पौ फटने से पहले उसने निर्जन सभा-मण्डप में जाकर सोमनाथ की आराधना की थी और यह वर मांगा था "हे नाथ जिसकी कोई कल्पना न कर सके ऐसी अपूर्व कला मुझे प्रदान करो।" और देव ने यह

वरदान देना स्वीकार भी किया था, अतएव वे उसे आज पूरा करेंगे; और इसके बाद वह नाचेगी और उसके भोले शम्भु रीझेंगे।

: ७ :

उसने फिर मन्दिर के शिखर की ओर देखा, वहां भगवी ध्वजा हवा में लहरा रही थी। उसकी ओर वह कितनी ही देर तक देखती रही। फरफराती ध्वजा की गति उसे हमेशा मुग्ध करती थी और जहां कोई नृत्य करती हो वहीं उसका हृदय दौड़ जाता था। फरफर करती हुई ध्वजाओ, नाचती हुई तरङ्गो, लहराती हुई शाखाओं को देखकर उसके हृदय मे स्नेह उमड आता था। स्वयं वह उन सबकी कुटुम्बी थी, तालबद्ध सौन्दर्य इन सभी का सामान्य लक्षण था और इन सब हृदयङ्गम वस्तुजात के अधिष्ठाता भोले शम्भु मे ही चौला का जीवन ओत-प्रोत हो गया था। उसके मन मे दो ही वस्तुएं थीं—एक भगवान् नटराज और दूसरी वह स्वयं उनकी बाल-नर्तकी। शेष जगत् तो मानो केवल ओलो का ही बना हुआ था।

"चौला! चौला! उठ, तू क्यो पडी है?" गङ्गा की आवाज़ आई। चौला के मुख पर उत्साह छा गया। उसने ज़रा ऊंचे उठकर अपने पीछे देखा और उसके कण्ठ और स्कन्ध की रेखाओ मे भरा हुआ माधुर्य स्पष्ट हो उठा।

"उठ! उठ", गङ्गा आई, "पता है आज यहां कौन आया है?—"

"परन्तु मेरे कपड़े लाई हो कि नही... .."

"ये रहे" हंसते हुए गङ्गा ने कहा।

गङ्गा की उत्तरावस्था का प्रारम्भ हो चुका था, उसके केश-पाश में सफेद लटें रुपहले तारो के समान चमकने लगी थी, किन्तु उसमे, उसकी चाल में, और उसकी आवाज़ मे अभी आकर्षण था। उसके स्वर से अब भी सौन्दर्य झरता था। पच्चीस वर्ष पर्यन्त उसने सोमनाथ के देवालय मे नृत्य-कला की अधिष्ठात्री का पद किस प्रकार भोगा था, यह एकदम झलक उठता था।

उसकी आंखे अपनी कन्या की आंखों के समान चमकती न थी किन्तु वे उतनी ही सुन्दर और गम्भीर थी। इस समय तो वह अपनी पुत्री को देखकर हंस रही थी। वृद्धता को प्राप्त करती हुई उन आंखों मे भाव दर्शन की खूबी अब भी क्षीण नही हुई थी।

चौला ने मां के हाथ में वस्त्र और आभूषण देखे और एकदम दौडकर उसके पास पहुंची। वह उन्हें इस तरह देखती रही मानो वे उसके प्राण हों—एक नज़र और एक श्वास के साथ।

"मां ! मां ! क्या ये सब मेरे लिए ?"

"हां, उन्होने तेरे ही लिए देश-देश से मंगवाये हैं।"

उसकी माता सर्वनाम के अलावा गङ्ग सर्वज्ञ का उल्लेख कभी भाग्य से ही करती थी। इस तरह सम्बोधन करने मे कौन-सा रहस्य होगा, यह कल्पना करके चौला हमेशा हर्षित होती थी।

"है !" उसने कहा।

"हां, और आज कौन आये है इसकी भी तुझे खबर है ?"

"नहीं, कौन हैं?"

"पाटण के राजा भीमदेव।"

"ऊंह !" कहकर चौला एक हार उठाकर गले में पहनने लगी।

"क्यों" मां ने लाड से कहा, "क्या तुझे गुर्जर-भूमि का राजा कुछ मालूम होता है ?"

"मुझे तो अपने सोमनाथ के सिवा किसी की परवाह नहीं।"

"मेरी भी नहीं ?" मां ने हंसते हुए उसके गाल पर एक चपत लगाया।

"मां ! मां ! तेरे बिना चौला क्या है" यह कहकर चौला अपनी मां के गले से लिपट गई।

: ८ :

इस सारी बस्ती पर चौला की मां राज्य करती थी, ठीक उसी तरह जिस तरह उसके पहले उसकी दादी ने किया था। गङ्गा से सब

थर-थर कांपती थीं। नृत्य, गीत और अभिनय मे वह क्या नही जानती थी, यह कोई नही कह सकता था। किसी भी नर्तकी के स्वर-भङ्ग, तालभङ्ग या मुद्रा-भङ्ग को वह तुरन्त पकड लेती थी और इसके लिए वह दोषी को अच्छी तरह झाडती थी। किसे कौन-सा घर देना, कितने वस्त्र या आभूषण देना, किसे कब छुट्टी देना यह सब उसके हाथ मे था।

गङ्गा के पैरो मे अब भी पच्चीस वर्ष की युवती की शक्ति और छटा थी। जब वह नाचती-तब यात्रीगण दंग होकर देखते ही रह जाते थे। ऐसा कहा जाता था कि भगवान् सोमनाथ का उसने साक्षात्कार किया था, किन्तु उसकी सत्ताधीन नर्तकिया इस बात मे श्रद्धा न रखती थी।

उसकी सत्ता की सर्वोपरिता का मूल कोई दूसरा ही था ऐसा अनुजान लोग कहा करते। सब नर्तकियो मे वही भयङ्कर गङ्ग सर्वज्ञ के पास जा सकती और मनोनीत काम करवा सकती थी। चपल जनता यो कहती रहती कि गङ्गा जो मांगे वह गङ्ग तुरन्त उपस्थित करे। वृद्धजन इन दोनो के छुटपन की कई दन्त-कथाएं कहते, परन्तु वे खरी थीं या खोटी यह कोई नही कह सकता था। तथापि हर सोमवार की रात को गङ्गा जब मन्दिर मे नृत्य करती तो गङ्गसर्वज्ञ आने मे कभी नही चूकते थे। और कितने ही द्वेषी लोग चौला की मुख-रेखाओं मे ब्रह्मचारी सर्वज्ञ के मुख की रेखाए देखने का सफल प्रयत्न किया करते, और यद्यपि ये रेखाए सदृश न हो तो भी सदृश ही है, ऐसा मानने के लिए कारण ढूंढ लेते थे।

जिस तरह गङ्गा की मां ने गङ्गा को तैयार किया था उसी तरह गङ्गा ने चौला को तैयार किया। जितनी कला वह जानती थी वह सब उसने अपनी लडकी को सिखाई थी। जवानी मे वह जितनी सुन्दर थी उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर उसकी लडकी थी। और सर्वज्ञ के शिष्य शिवराशि का ध्यान चौला पर रहे, इस प्रकार का प्रयत्न वह करती रहती थी। काल-क्रमानुसार जब उसकी शक्ति क्षीण होने लगे तब नर्तकियो का राज-दण्ड चौला सम्हाल ले यह उसकी उत्कट अभिलाषा

थी। कभी-कभी चौला में उसे अविश्वास अवश्य होता, कारण कि छोकरी व्यवहार से अनभिज्ञ थी। वह नाचती, गाती और सोमनाथ का विचार किया करती। देव को समर्पित दासियां देव का ही रटन करे यह बात गङ्गा ने अन्य नर्तकियों को कई बार सिखाई थी। किन्तु इस नियम का आचरण में पालन करते अनेक कठिनाइयां सामने पड़ती थीं इसका भान व्यवहार-कुशल गङ्गा को खूब था। ऐसा ही भान चौला को भी पक्की उम्र में होगा, यह मां मानती थी; तथापि किसी भी दिन वह परिपक्व अवस्था को प्राप्त कर पक्की होगी या नहीं इस विषय में संशय उसके मन में रहता ही था।

परन्तु आज गङ्गा की परीक्षा थी। चौला आज पहली बार महा शिव-पूजा के प्रसङ्ग पर नृत्य करने को थी। इस अवसर के लिए कितने ही वर्षों तक उसने तैयारियां की थीं। गत वर्ष सर्वज्ञ ने कहा था कि यह तो होगा ही, अभी चौला बालिका है, अभी उसकी शिक्षा अपूर्ण है, इस तरह बहाने निकालकर उन्होंने यह बात उड़ा दी थी।

दूसरा प्रकरण

नृत्याञ्जलि

बाहर दीपमालिका पर सहस्रों दीपक जले। परकोटे के चारों ओर दीपावली जगमगा रही थी। भगवान् सोमनाथ की आरती का समय हुआ। सभा-मण्डप में जनता की भीड़ जमा हुई।

सभा-मण्डप के स्तम्भ-समूह पर सुनहले दीपकों पर बत्तियां लगीं। छत के खंभों पर विचित्र त्रिपुरारि के पराक्रम सजीव दिखाई पड़ने लगे। छत के चार-चार खंभों के बीच सुवर्ण की शृङ्खला में लटकती हुई घण्टियों का निनाद अधिकाधिक सुनाई देने लगा और ज्यों-ज्यों जनता की भीड़ बढ़ती जाती त्यों-त्यों 'जय सोमनाथ' का घोष भी बढ़ने लगा।

गर्भ-गृह की छत से लटकते हुए रत्न-जटित दीपकों में ज्वालाएँ देदीप्यमान थीं और उनके मध्य में पुष्प एवं बिल्व-पत्र के ढेर में अन्तर्हित, छाती जितनी ऊंची, सोमनाथ की मूर्ति कैलास का भास कराती थी। ऊपर एक सोने की बड़ी जलाधारी से पानी टपक रहा था। चारों वेद विद्या में निष्णात श्रोत्रिय पुरुष-सूक्त द्वारा महाशिव-पूजा कर रहे थे।

एकाएक नौबतखाने में नगाड़ों और शहनाइयों का शब्द हुआ और लोगों में धक्का-मुक्की शुरू हुई। कोई पन्द्रह अलमस्त बाबा आ धमके और जगह काटने लगे। लोग झट-पट हट गये और गर्भ-द्वार के सामने जगह हो गई।

एक बाबा ने शंख बजाना शुरू किया और उसका प्रचण्ड घोष चारों ओर गूंज उठा, लोग मौन हो गये और एक नज़र से सभा-

मण्डप की सीढ़ियों की ओर देखने लगे।

पहले एक वृद्ध आये, ऊंचे, लगभग साठ वर्ष के और गौर वर्ण। वे व्याघ्र-चर्म डाले हुए थे और सारे शरीर पर विभूति लगी हुई थी। अपनी आधी सफेद दाढ़ी में उन्होंने एक गांठ लगा रखी थी। वामस्कन्ध पर द्वितीया को चन्द्र-कला के समान यज्ञोपवीत लटक रहा था। उन्हें आते देख बहुत-सी जनता हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। बहुतों ने उनके चरण स्पर्श किये और कइयों ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। "जय स्वरूप! जय सर्वज्ञ" चारों ओर उच्चरित होने लगा।

उन वृद्ध महानुभाव के ललाट पर त्रिकालज्ञान का प्रकाश झलक रहा था। उनके चक्षु निर्मल, गम्भीर और सद्भावनाशील थे, उनकी दृष्टि इस प्रकार भ्रमण कर रही थी मानो वह जागृत जगत् से दूरवर्ती किसी तेजोबिन्दु को ही खोज रही हो। शम्भु की सेवा और पाशुपत मत की विजय के हेतु समर्पित जीवन के संस्कार गङ्ग सर्वज्ञ के पद-पद पर निर्गत होते थे, कारण सत्ताईस वर्ष पूर्व जब वे मठाधिपति हुए तब पाशुपत मत की कीर्ति अस्त हो रही थी। आज देश-देश के पण्डित और राजा उनके मुख से निकलती हुई आज्ञाओं को मानने में सदा तत्पर रहते थे। उनकी एकनिष्ठ सेवा से अखण्ड भरतखण्ड में सोमनाथ का यश छा रहा था।

सर्वज्ञ के पीछे तीन मूर्तियां आईं। एक सर्वज्ञ के पट्टशिष्य शिवराशि थे। गुरु के जैसी ही वेश-भूषा उन्होंने भी धारण तो की थी किन्तु उनके मुख पर विद्या की अपेक्षा व्यावहारिकता अधिक स्पष्ट होती थी।

उनके साथ आता हुआ पुरुष कद में ऊंचा और बलिष्ठ मालूम होता था। मशालों का तेज उसके चेहरे को ताम्र-पात्र के सदृश चमकाकर उसकी मोटी काली आंखों में प्रतिबिम्बित हो रहा था। उसकी आंखों में, उसके समग्र व्यक्तित्व में एक सरलता, निडरपन और विश्वसनीयता कुछ इस प्रकार आभासित होती थी कि मानो उसने जगत् से प्रेम-दान

लेने के लिए ही जन्म लिया हो। वह थका हुआ प्रतीत होता था, तथापि अपने चलने के ढङ्ग से वह कोई राजा मालूम होता था और सिर पर बंधा हुआ बड़ा साफा, कटि पर लटकाई हुई लम्बी तलवार और कन्धे पर उठाया हुआ बड़ा धनुष इस स्वरूप को अधिक स्पष्ट कर रहे थे। श्रान्त होते हुए भी उसे देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह झपटता हुआ कोई शेर हो।

उसके साथ आता हुआ तृतीय पुरुष ऐसा लगता था मानो विधाता ने उसे दूसरों से बिलकुल विभिन्न ही रचा हो। वह शरीर का छोटा किन्तु छबीला था। उसका गौरवर्ण, सुहावना मुख, तेजस्वी और चञ्चल चक्षु, छोटी किन्तु गठीली उंगलियां यह प्रकट करती थीं कि वह किसी सुखभागी श्रीमन्त का कृपा-पात्र व्यक्ति है। उसे देखकर पहले लोग उसे बालक निर्धारित करते किन्तु उसके ओष्ठ की निर्भीक रेखाएं उसके मुख को ऐसा प्रतापी बना देती थीं कि उसे बालक मानने वाले तुरन्त ही अपनी धृष्टता पर थर-थर कांपने लगते। उसने भी कटि पर तलवार कस रखी थी किन्तु उसमें निरर्थक शस्त्रों का भार वहन करने का शौक प्रतीत नहीं होता था।

सर्वज्ञ 'नमः शिवाय' रूपी सत्कार का प्रत्युत्तर 'शिवाय नमः' कहकर और हाथ फैलाकर आशीर्वाद देते हुए गर्भ-द्वार के पास पहुंचे। एक व्यक्ति द्वारा तैयार रखे हुए बिल्व-पत्रों को उन्होंने लिया और गर्भ-गृह में दण्डवत् प्रणाम कर उन बिल्व-पत्रों के द्वारा देव का पूजन किया। तदनन्तर जिनकी पूजा करने में बड़े-बड़े नरेश अपना गौरव समझते थे उन गङ्ग सर्वज्ञ ने नम्रतापूर्वक दयनीय बन, हाथ जोड़, सिर झुकाकर देव का ध्यान किया। बाद में एक शिव-भक्त ने आरती तैयार की और सर्वज्ञ उसे लेकर नीराजना करने लगे।

आज चौदह वर्ष हुए प्रतिदिन सायंकाल एक भी दिन चूके बिना सर्वज्ञ स्वहस्त से जब देव की आरती उतारते तब यात्रीगण निःस्वर मुख से 'नमः शिवाय' बोलते। हज़ारों घण्टियों का निनाद जब

स्वर भरता और देव-दुन्दुभि की तरह जब नगाड़े गड़गड़ाते तब सर्वज्ञ निज हृदय की भक्ति को इस प्रार्थना के रूप में अभिव्यक्त करते।

गङ्ग सर्वज्ञ ने आरती पूरी कर 'जय सोमनाथ' का उच्चारण किया और तुरन्त ही उनके आसपास खड़े हुए भक्तों ने भी वही घोषणा की। घोषणा की ध्वनि सभा-मण्डप में फैली, और वह परकोटे में खड़े हुए यात्रियों में बहती हुई बाहर निकल प्रलयकालीन समुद्र की गर्जना के समान चारों ओर व्याप्त हुई। एक क्षण के लिए समस्त प्रभास सोमनाथ-मय हो गया।

शिवपूजा की पूर्णाहुति हुई और गङ्ग सर्वज्ञ बाहर आये और स्वर्ण के आसन पर बैठ गये। पास ही शिवराशि तथा अन्य अतिथिगण भी बैठ गये।

"भीमदेव बेटा!" सर्वज्ञ ने राजा सरीखे दीखने वाले अतिथि को सम्बोधित किया "आख़िर धाराधीश ने गांव दिये तो सही।"

भीमदेव प्रेमपूर्वक आगे बढ़े और बोले "किन्तु महाराज! मन्दिर का जीर्णोद्धार तो मैं ही कराऊंगा।"

"जैसी तेरी भक्ति और देव की इच्छा" सर्वज्ञ ने हंसकर कहा। और कुछ लोग जब चरण-स्पर्श कर रवाना हो गये तब उन्होंने फिर प्रसङ्ग छेड़ा "कब आओगे?"

"आगामी वर्ष, क्यों विमल?" भीमदेव ने मन्त्री की ओर फिर-कर कहा।

"हां, अवश्य" हंसते हुए उसके रूपवान् साथी ने कहा "तबतक आदीश्वर चाहेंगे तो महाराज के हाथ में मालवा भी आ जायगा।"

सर्वज्ञ ज़रा गम्भीर होकर देखते रहे, आदीश्वर का नाम और मालवा के साथ विग्रह ये दोनों विषय उन्हें रुचे नहीं।

"अब नृत्य का समय हो गया" सर्वज्ञ ने सङ्केत किया।

एकाएक द्वार के सामने जनता का हाहाकार हो उठा और बात अपूर्ण ही रह गई। जांच करने से मालूम हुआ कि भीतर आने वाले समूह

की धूमधाम में कोई कुचल गया था। हल्ला-गुल्ला हुआ और मशालचियों ने दौड़ मचा दी।

थोड़ी देर बाद शान्ति हुई और परकोटे के दक्षिण द्वार से सभा-मण्डप तक रस्से बांधकर अलग किये हुए रास्ते की ओर लोग देखने लगे।

पहले दो मशालची आये, बाद में गङ्गा आई, एकदम भड़कीले वस्त्र धारण किये हुए। उसके बाद श्वेत वस्त्र पहने एक नवयुवती आई, उसके बाद छः नर्तकियां और मृदङ्ग तथा वाद्य बजाने वाले भी आये।

इस मण्डली ने सभा-मण्डप के मध्य में पहुच भूमि पर दण्डवत् हो महादेव को प्रणाम किया। सर्वज्ञ की आखे भाव भरी हुई, श्वेत वस्त्रों से आच्छादित, तरुणी पर जा ठहरीं। "आज नई नर्तकी नृत्य करने वाली है?" भीमदेव ने शिवराशि से धीमे स्वर में पूछा और शिवराशि ने सिर हिलाकर "हा" कहा।

"यह कौन है? इसका नाम क्या है?" विमल मन्त्री का कौतुक बढ़ा, किन्तु शिवराशि ने मौन रहकर प्रत्युत्तर देना अस्वीकृत किया।

गङ्गा ने देव का कीर्ति-गान आरम्भ किया। उसके कण्ठ से माधुर्य की सरिता बहने लगी और उस सरिता में भक्ति तैरती, भाव तैरता और स्तवन भी तैर रहा था। वह गाती तो थी शङ्कर की स्तुति, किन्तु उसका आशय था सर्वज्ञ को रिझाने का। उसकी आंखे जितनी देर देव पर ठहरती उससे अधिक काल तक सर्वज्ञ की दृष्टि को खोजती। वह केवल उनके लिए ही गाती और सर्वज्ञ अर्ध-निमीलित नयनों से उसको सुनते थे। वे सकल शास्त्रों के साथ सङ्गीत शास्त्र में भी पारङ्गत थे— और गङ्गा के अतिरिक्त किसी का भी सङ्गीत उनकी कसौटी मे न चढ़ पाया।

सङ्गीत बन्द हुआ, गङ्गा ने निज दृष्टि के द्वारा सत्कार की याचना की और सर्वज्ञ ने अर्धनिमीलित नयन खोलकर उसका सत्कार किया। दोनों ही की दृष्टि श्वेत वस्त्रों से आवृत युवती की ओर एक साथ गई।

"अब नृत्य शुरू करो" सर्वज्ञ ने मृदु स्वर से कहा।

और उनकी आंखों के आगे एक अविस्मरणीय वर्चस्व उदित हुआ। उन्नीस वर्ष एक पल मे सञ्चालित हुए—अर्बुदाचल दृष्टि के सामने आ खड़ा हुआ—यही उन्होंने छः मास तक शुद्धि की अन्वेषणा मे पञ्चाग्नि का सेवन किया था। वहां से लौटने पर देव की सभा मे और भक्तगण एवं शिष्य-मण्डली के सहवास मे उन्हे जिस अद्भुत उत्साह का अनुभव हुआ था उसका स्मरण हुआ।

मध्यरात्रि बीत गई किन्तु उल्लास का ओघ अभी नही उतरा, वे नीद नही ले सके—मानो कोई दूर से बुला रहा हो, हाथ में दण्ड लेकर वे बाहर आये और सागर के तीर पर अस्तमित्त होने वाले तारागण के प्रकाश से घूमने लगे।

उस सागर में से कोई लक्ष्मी निकली हो ऐसी एक सुन्दरी मिली, और अरुण के तेज मे वह अपार्थिव प्रतीत हुई। इस चित्र को वे कभी भूले न थे, कारण उन्होंने पूछा था "कौन है तू" और सुन्दरी ने जवाब दिया था "यह तो मैं"। वे शब्द वह आवाज़—उन्हे याद थी।

उसे एकदम पहचाना, यह थी नर्तकियो के मुखिया की लडकी, जो निज कोकिल-कण्ठ द्वारा शिव-स्तवनों को भी कौमुदीमय अमृत के झरने बना देती थी। वे जानते थे कि वह थी तो नर्तकी, किन्तु शिव-भक्ति मे अपनी अचल सेवा ही उसका श्वास एवं प्राण था।

सर्वज्ञ रुके। आन्तरिक उल्लास बाहर उमड आया।

"तू कहां थी" ?

"अभी नही, मुझे भगवान् के पास नृत्य करना है।"

"इस समय! अकेली! कौन-सा वर मांगती हो देव से ?"

वह नीचा मुख कर देखती रही। उन्नीस वर्ष बाद भी दर्शन करने पर वे भूले न थे।

"देव की और आपकी सेवा" धीर स्वर से उसने कहा और ऐसा उल्लास उठा जो कि हृदय में न समाये। सर्वज्ञ से कोई वस्तु

अज्ञात न थी। भोलनी के नृत्य ने शिव के हृदय में जो ज्वाला प्रकट की थी उसकी आंच उन्हें अब लगी।

अस्तमित तारागण का तेज, सागर-मल्लोल के मद, उपः-कालीन मादक पवन की लहरें अभी तक उनके स्मृति-पटल पर वैसी-की-वैसी ही अङ्कित थीं।

यह स्मरण का स्वप्न पल-भर में समाप्त हुआ और उन्होंने स्थिर स्वर से कहा "नृत्य का समय होगया।" उनका हृदय आशा भरे आगामी क्षणों की राह देख रहा था।

छोटी-सी चौला श्वेत परिधान के द्वारा आभरण आच्छादित कर अधोमुखी बैठी थी। उसका हृदय ऐसे वेग में धडक रहा था जैसा कि पहले कभी न धडका था और उसके कानों में मनमनाहट होने लगी।

उसे सर्वज्ञ का स्वर सुनाई पडा। मां के 'उठ' कहते ही वह थरथराते पैरों से खडी हुई, "कैसे पैर उठेंगे?" नृत्य और अभिनय का एक ही प्रकार उसे याद न था—किस तरह नृत्य होगा, आंखों के आगे पर्दा गिर गया।

परन्तु उसके हृदयतल में श्रद्धा थी, उसके सोमनाथ ने उसे कभी छोडा न था और वे तो इस समय सामने ही थे। उसने शिवजी की मूर्ति की ओर निहारा—और वे थे सर्वदोपलब्ध प्रत्यक्ष उसके देव, उसके प्राण—उसके नाथ। उसने प्रणिपात किया और वह खडी रही।

गङ्गा का शब्द सुनाई पडा "सर्वज्ञ के पैर पडना।"

"अवश्य" उसके पैरों में जोर आया, वह गई और सर्वज्ञ के पैरों में झुकी। मठाधिपति हंसे। वह आशीर्वाद था—और अस्तङ्गत होने वाले तारागण, घूमता हुआ सागर और उषसीय तेज की लहरें पल-भर के लिए उसकी आंखों के सामने तैर गईं।

चौला उठी। सर्वज्ञ के पास बैठे हुए शिवराशि को उसने देखा, पास बैठे हुए दो अपरिचित युवकों की रसभरी आंखों को अपनी ओर घूरते हुए उसने पाया और वह पीछे हटी, उछली और सभा-मण्डप के

बीच रत्न-जटित दीपावली के कौमुदी मनोहर प्रकाश में अपने उपवस्त्र को हटाकर अपने रखे हुए पैरों के बीच श्वेत कमल में से प्रादुर्भूत नारायणी के समान प्रकट हुई। प्रेक्षक समाज मुग्ध एवं अवाक् हो देखता ही रह गया। कोमल कदली के समान नूपुरों द्वारा सुशोभित पैर पर सुनहली ज़रीन गांठ से बांधे हुए लहंगे में से चमकती हुई मेखला में से—किसी सुन्दर मन्दिर के मध्य भाग से जैसे शिखर निकलता हो उसी तरह—नाज़ुक कमर, गौरवर्ण उदर, हीरों में जगमगाता अदृश्य स्तन-मण्डल, रुचिर भूरी नसों की रेखाओं के मध्य में सुशोभित गर्दन, बालक के समान मुग्ध मनोहर मुख निकला। उसके मुख पर पार्थिव सुन्दरी की अपूर्व रेखाएं न थीं, देवियों की भव्यता न थी, छोटी बालिका की केवल सुकुमारता न थी, वह तो किसी सुभग स्वप्न में अनिमेष निहारे हुए नव मञ्जरियों द्वारा सुघटित मधुर एवं निर्दोषता के सत्व के समान वसन्त का ही मुख था।

किन्तु चौला को अपने रूप का ज़रा भी भान न था। आस-पास की भूमि थी या नहीं इस बात का भी ध्यान उसे स्पष्ट न था। उसकी आंखें तो स्थित थीं—दूर—अपने सोमनाथ की मूर्ति पर—जिसे रिझाने के लिए इतने वर्षों तक उसने एकाग्रचित्त से तपश्चर्या की थी और वह भी अपने जीवन की बाज़ी लगाकर। हां, भोले शम्भु उसकी राह देखते थे और उसके नृत्य को देखने के लिए अधीर भी हो रहे थे, उसे शाबाशी देने में तत्पर थे। तुरन्त उसके पैरों में चेतना आई।

झांझ की स्फुट झनकारों के साथ वेगपूर्वक चलने वाली सरिता के सदृश सीधी गर्भ-द्वार पर्यन्त वह आ पहुंची और वैसे ही वहां मृदङ्ग का ठोका शुरू हुआ।

चौला की नसों में रुधिर ने वेग पकड़ा, वह चौला न थी—पर्वत-कन्या थी, वह सोमनाथ का मन्दिर न था—नगाधिराज हिमालय था, वह मूर्ति न थी तपश्चर्या में निश्चल उसके प्राण थे। पार्वती की

तरह वह पूजा कर रही थी। उसके पैर, उसके हाथ, उसकी कटि और उसकी गर्दन पूजा करती हुई पार्वती के भाव बता रहे थे। उसके मुख पर सरल एवं भोली-भाली पुजारिन का भाव था। उसके नयन आतुर, विह्वल एवं भक्तिभीने थे।

उसने खड़े हो, बैठकर, झुक-झुककर पूजन किया, हाथ के द्वारा उसने गन्धाक्षत किया, दोनों हाथों से फूल चढ़ाये, उसकी प्रत्येक चेष्टा में शम्भु को रिझाने की आतुरता झलक रही थी।

पुजारिन थक गई, पैर शिथिल हुए, हाथों में शिथिलता दिखाई पड़ी, मुख पर खिन्नता छाई, सङ्गीत मन्द हुआ, ताल का ढोला धीमा पड़ा, मुख पर से उत्साह लुप्त होने लगा, दयनीयता छाने लगी और नयनों से निराशा प्रतीत होने लगी।

चौला अभिनय नहीं कर रही थी। पार्वती ने तप किया था वैसा ही उसने भी किया था, और अब वह शम्भु को रिझाने बैठी थी। यदि न रीझे तो आन्तरिक भाव ने उसके नृत्य को स्वानुभवालम्बी कर छोड़ा था।

तुरन्त उसका भाव बदला, उसने कामदेव को आते देखा, उसके मुख पर उछाह आया, अभिनय में चेतना आई, पैर की ठुमकियां धीमी किन्तु आशाभरी थीं। धीरे-धीरे घूमते हुए पैर आशा से परिपूर्ण ताल के साथ नर्तन कर रहे थे।

वह चौंकी, आशा से भरी हुई, उसका आधा शरीर टेढ़ा झुका, उसके विह्वल चक्षु देख रहे थे और धीरे-धीरे वह पीछे फिरी। कामदेव का बाण शम्भु को लगा, और कौतुक के साथ नयनों में प्राण पूरित कर चमकती, ज़रा शर्माती, ज़रा गर्व के साथ शम्भु के पास पहुंची। चौला ने मूर्ति की ओर देखा और उसे प्रतीत हुआ कि शम्भु रीझ गये।

पीछे खड़ी हुई छः नर्तकियों ने मीठे स्वरोदय के साथ महादेव जी की वाणी का उच्चारण किया।

> किं मुखं किं शशाङ्कश्च किं नेत्रे चोत्पले च किम्?
> भ्रुकुट्यौ धनुषी चैते कन्दर्पस्य महात्मनः।

अधरः किञ्च बिम्बं किं, किं नासा शुकचञ्चुका ?
किं स्वरः कोकिलालापः, किं मध्ये चाथ वेदिका ॥

(यह मुख है या चन्द्रमा, ये नेत्र हैं अथवा कमल, यह आत्मा कामदेव के धनुष हैं या भ्रुकुटि, यह अधर है या बिम्ब, यह नासिका है या तोते की चोंच, यह स्वर है या कोयल का आलाप, यह मध्य है या वेदिका।)

पार्वती विरह-विह्वला होते हुए भी आगे बढ़ती और फिर शरमाती पीछे हटी, और नितम्ब बारी-बारी से विजय की मस्ती दिखाने लगे। वह मन्द हास्य और ससंभ्रम मुख के साथ उपरिवस्त्र के द्वारा स्तन-मण्डल को आच्छादित करती हुई, धीमी सङ्कुचित चाल से गर्व मे ठुमकते पैरों को पीछे रखती हुई हटी।

वह फिर चमक उठी—घबराई और कुछ रुकी।

नर्तकियों ने गाया—

किं जातं चरितं चित्रं किमहं मोहमागतः।
कामेन विकृतश्चाय भूत्वादि प्रभुरीश्वरः ॥
ईश्वरोऽहं यदीच्छेयं पराङ्गस्पर्शनं खलु।
तर्हि कोऽन्योऽक्षमः क्षुद्रः किं किं नैव करिष्यति ॥

(ईश्वर और प्रभु होते हुए भी कामान्ध होकर आज मेरा व्यवहार विचित्र बन गया है, क्या मैं मोह के वशीभूत हो गया हूं। ईश्वर होकर भी मैं परस्त्री के अवयव स्पर्श करना चाहूं तो फिर क्षुद्र क्या नही करेगा।)

सर्वज्ञ से न रहा गया और उन्होंने पीछे से संक्षेप में कहा :

एवं वैराग्यमासाद्य पर्य्यङ्कासादनञ्च तत्।
वारयामास सर्वात्मा परेशः किं पतेदिह ॥

(इस तरह वैराग्य को प्राप्त कर सर्वात्मा शङ्कर ने दृढ़ हो उस सुन्दरी को पर्यङ्क पर बैठने से निवारण किया। कारण, क्या कभी ईश्वर भी मोह में पड़े हैं।)

और चौला का शरीर कम्पमान हुआ । उसके घूंघरूओं मे घबराहट आई, भयभीत हो उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग कांपने लगा ।

मदन हत हुआ और मित्र की मृत्यु से पागल हुई पार्वती ने नृत्य एवं मुखभाव के द्वारा रुदन आरम्भ किया । किन्तु शिवजी चल दिये थे, और मित्र-वियोग का रुदन, विरह का आक्रन्द बन गया था । मृदङ्ग विलाप करने लगा । चौला के पैर लडखडाने लगे, उसके हाथ मे थी हताशा और नयनों में था आक्रन्द । वह रोई, वह कलपने लगी और आखिरकार देव पर नयन-युगल स्थित कर ध्यान करने लगी । मुख का भाव गम्भीर हुआ, झङ्कार मे स्थिरता आई, अभिनय मे तपस्वी के समान गौरव आया, अङ्गो मे कर्कशता व्यापी हुई उसने अभिनय करते हुए आसन जमाया, उंगलियों के द्वारा ध्यान मुद्रा धारण की, नेत्रों को नासिकाग्र पर स्थित कर धीरे-धीरे मन्द पडने वाले मृदङ्ग के साथ ध्यान शुरू किया । वह स्थिर हुई—ध्यानस्थ हुई .. ..

और वृद्ध ब्राह्मण अतिथि का सत्कार करने का भाव दर्शाती रही । उसने अभिनय समाप्त किया, पैरो द्वारा प्रणिपात किया, झांझ की झनझनाहट के साथ सत्कार प्रदर्शित किया और वह एक चित्त से ब्राह्मण के वचन सुनने लगी ।

इन्द्रादिलोकपालांश्च हित्वा शिवमनुव्रता ।
एतत्सूक्तं हि लोकेषु विरुद्ध दृश्यतेऽधुना ॥
क त्व कमलपत्राक्षी क्वासौ वै त्रिलोचनः ।
शशाङ्कवदना त्वञ्च पञ्चवक्त्र शिव. स्मृत ॥
वेणी शिरसि ते दिव्या सर्पिणीव विभासिता ।
जटाजूट शिवस्येव प्रसिद्धं परिचक्षते ॥
चन्दनञ्च त्वदीयाङ्गे चिताभस्म शिवस्य च ।
क दुकूलं त्वदीयं वै शाङ्कर क गजाजिनम् ॥
क भूषणानि दिव्यानि क सर्पाः शङ्करस्य च ॥

(इन्द्रादि लोकपालों को छोड़कर तू शिव को चाहती है । यह

उचित नहीं है, कारण यह इस समय लोक-विरुद्ध प्रतीत होता है। कहां तू कमलनयनी और कहां वे त्रिलोचन, कहां तू चन्द्रमुखी और कहां वे पञ्चानन शिव,

नागिन के समान तेरे शिर पर वेणी सुशोभित है और शिव के तो जटाजूट प्रसिद्ध ही है। तेरे अङ्ग पर चन्दन और शिव के अङ्ग पर चिता-भस्म, कहां तेरा दिव्य दुकूल और कहां शङ्कर पर हाथी की खाल, कहां तेरे भव्य आभूषण और कहां शङ्कर के सांप।)

पार्वती ने तिरस्कार किया। झांझर गुस्से से झमकने लगे। उसके हाथ के मरोड में उग्रता आई। मृदङ्ग भी गुस्से में गर्जना करने लगा। उग्ररूप पार्वती के नयनों से अंगार बरसने लगे। पैरों की उछलती हुई छलांगें नूपुर को ताल देती हुई चारों ओर से ब्राह्मण को डरा रही थीं। आंखों के द्वारा, भावों के द्वारा, मुद्राओं के द्वारा उसने तुच्छता प्रदर्शित की; उसने मुंह चढाया और वक्र होकर—

चौला एकदम बदल गई। प्रछन्नवेशी शिवजी ब्राह्मण का रूप छोड अपने असली स्वरूप में प्रकट हुए। मृदङ्ग से बादलों की गड-गड़ाहट सुनाई पड़ी। वाद्य स्थगित हुए। चौला के नयनों में भी प्रत्यक्ष मूर्ति से शिवजी प्रकट होते दिखाई पडे। नृत्य करते हुए उसकी रगों में उल्लास बढता जाता था। उसके हृदय मे अकथ्य उत्साह की बाढ आई, गति और नाद की उछलती हुई सरिता मे बहती हुई उसकी कल्पना के सामने साक्षात् शम्भू आकर खडे हुए—उसके जीवन-हार।

वह सब-कुछ भूल गई—जीवन का लक्ष्य मैंने प्राप्त कर लिया बस इतना ही उसे विश्वास हुआ, उसने नृत्य एवं अभिनय में शालीनता त्याग दी; उसकी नाक विस्तृत होने लगी—प्रेम के प्रवाह में उसके नयन व्याकुल एवं विशाल हो गये।

प्रणय-विह्वला पार्वती का सृजन करती हुई वह स्वयं प्रणय-विह्वला वधू बन गई। उसके पैर नाच नहीं रहे थे वरन् भूमि से स्पर्श किये बिना ही उड़ रहे थे, हाथ अपनी छटा से बल नहीं खाते थे किन्तु कठोर पवन मे

झुकती, झूलती और उलझती वल्लियों में परिणत होते रहते थे। उसका मुख प्रणय का सार-रूप हो अलक्ष्य तेज के द्वारा जगमगा रहा था।

उसने उल्लास के साथ प्रदक्षिणा की, वृषभ को छाती से लगाया शम्भु से आलिङ्गन करती हुई कपाल-माल में वह रमती रही, आश्लेष में दबी रही और चुम्बन से लज्जित हो गई।

वह नृत्य करने लगी, बढ़ते हुए वेग से मृदङ्ग के नाद को झांझर की झङ्कार और कम्पमान हृदय साथ-ही-साथ ठेका दे रहे थे। चौला ने संयम छोड़ा, नृत्य प्रणय-काव्य बना—चुम्बित, परिमृदित हो आनन्द की अवधि का अनुभव करती हुई वह धरणी पर लेट गई।

वाद्य एवं मृदङ्ग एकदम अटक गये, सभा चित्रवत् हो गई, सर्वज्ञ स्वस्थ हो गये और आंखों में आये हुए गर्वाश्रुओं को पोंछने लगे।

तदनन्तर आज सत्ताईस वर्ष में मठाधिपति को जो करते किसी ने नहीं देखा था वह करते आज सबने देखा। वे बैठे थे, उठ खड़े हुए, वेग से चौला जहां पड़ी थी वहां गये और उसे उठा लिया।

चौला उनकी पुत्री थी। देव की आज्ञा से वह उन्हें कैसे प्राप्त हुई थी यह आज उनकी समझ में आया। वे कुमारी को गर्भ-द्वार के सामने ले गये और गद्गद्-स्वर से बोले, "देवाधिदेव! इस बाला को स्वीकार करो, जब तक चौला जीवेगी तबतक शिवरात्रि को यही आपके समक्ष नृत्य करेगी।"

जैसे कोई भेंट चढ़ाता हो वैसे सर्वज्ञ ने चौला को सोमनाथ के सामने अर्पण किया। चौला को जीवन का परम क्षण प्राप्त हुआ। जटाधारी पिनाक-पाणि तो उसकी दृष्टि से बाहर ही न हुए।

"तुम्हारी, तुम्हारी, इस भव में और भवोभव में" इस तरह बड़बड़ाती वह अचेत हो गई।

तीसरा प्रकरण

दैव कोप

: १ :

मन्दिर में एकत्रित जनता में एकाएक खलबली मच गई। लोगों ने हाहाकार मचाया। ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई व्यक्ति उस भीड़ में जोर से घुस रहा है। सर्वज्ञ अचम्भित हो गये, इस समय कौन शांति-भङ्ग कर रहा है, यह उनकी समझ में न आया। वे भ्रू-भङ्ग करते हुए देखते रहे। उनकी उपस्थिति में इस प्रकार का अविनय प्रायः नहीं होता था। भीड़ दो भागों में बंट गई, बीच में मार्ग हो गया और उससे एक पागल-जैसा आदमी भीतर घुस आया। "भीमदेव महाराज की जय" उसने थके हुए खरखर कण्ठ से जय-घोषणा की। भीमदेव ने यह घोषणा सुनी और वे चमककर खड़े हुए और सामने आये।

"कौन है", उन्होंने सर्वज्ञ की ओर देखकर पूछा।

"कौन है" जो हो उसे यहां आने दो" सर्वज्ञ ने आज्ञा दी और नवागन्तुक लड़खड़ाता भीतर आया। उसकी आंखें व्याकुल और उसके परिधान परम मलिन थे। वह आकर सर्वज्ञ के चरणों पर गिर पड़ा और किसी प्रकार "नमः शिवाय" का उच्चारण किया।

"शिवाय नमः, कौन है बेटा ?"

"कौन, तू मूला राठौर ?" भीमदेव उसके पास जाकर पूछने लगे।

"बापू, बापू," मूला ने किसी तरह बैठकर हाथ जोड़कर कहा "चलो मेहता जी की देह छूट रही है, चलो, चलो।"

"मेहता जी ! दामोदर ? क्या हुआ—कहां" विमल मन्त्री ने आकर मूला का कंधा हिलाया "पागल हुआ है तू ! और तू आया कहां से ?

मेहता जी तो सपादलक्ष गये है।"

थकावट के मारे मूला सांस भरने लगा। "बापू सत्य कहता हूं–वहां नही–वह तो यहा पडे है–देहली पर, मरने की दशा मे। उस दिन से न तो हमने कुछ खाया और न हम सोये–बडी से योजन चलने वाली चार-चार ऊटनिया तो मर गईं, मेरे बापा! समय मे चलो, नहीं तो मेहता के प्राण चले जायंगे और बडी मुसीबत होगी।

भीमदेव की समझ मे कुछ भी न आया। उन का सन्धि-विग्रहिक दामोदर मेहता सपादलक्ष के राजा से अभिवचन करने गया था और मूला उसका विश्वस्त अनुचर था। इस समय यह मूला प्रभास मे कहां से आया? दामोदर क्योंकर मरने लगा?

"चलो बापू।"

"अच्छा चल, उठ, जल्दी कर", विमल मन्त्री ने कहा।

सर्वज्ञ ने श्वास लिया और अंगुलि द्वारा उसको मापा।

"शिवराशि!' सर्वज्ञ ने कहा "मुझे इसमे कुछ आपत्ति आती हुई जान पडती है। जाओ वहां जाकर दामोदर को मेरे आसन पर ले आओ, मै अभी वहां आता हूं"।

शिवराशि दो साधुओ को साथ लेकर, भीमदेव, विमल और मूला सहित दामोदर की तलाश मे चले। दो मशालची आगे-आगे मार्ग-प्रदर्शन करते थे।

सर्वज्ञ के हृदय मे उच्चाटन हुआ। उन्होने भगवान् सोमनाथ की ओर दृष्टि डाली और मूक प्रश्न किया "देवाधिदेव! यह क्या!" किन्तु कुछ स्पष्ट उत्तर न मिला अतएव सन्त-सुलभ दीनता के साथ उन्होंने अपनी चिन्ता शिवार्पण की।

: २ :

कुछ देर बाद गङ्ग सर्वज्ञ के आसन पर सब एकत्रित हुए। दामोदर मेहता अर्धचेतन अवस्था मे बिस्तर मे पडे थे। वे लगभग चालीस वर्ष के थे। उनका स्वरूपवान् मुख इस समय श्रान्त, पीडाग्रस्त और निस्तेज

था। उनकी बड़ी आंखों में सूजन आ गई थी।

विमल मन्त्री उनका सिर दबा रहे थे। सर्वज्ञ का एक शिष्य उनके तलवों पर कांसे की कटोरी से घृत घिस रहा था। भीमदेव अधीरता के साथ उनकी ओर देख रहे थे।

किञ्चित् आगे गङ्ग सर्वज्ञ पीढे पर पलथी मारकर सीधे बैठे थे। पास में शिवराशि था।

"गुरुदेव कहीं दामोदर मर ही न जाय ?" भीमदेव ने दसवीं बार यह अधीर प्रश्न किया।

एक कोनेमें दूसरा एक शिष्य सिलपर दवाई घिस रहा था। मूला दूसरे कोने में छिपा हुआ नींद में झूम रहा था। "नहीं मरेगा, जा मेरा वचन है।"

सर्वज्ञ ने कहा और उठकर शिष्य द्वारा घिसी हुई दवाई ली और पास आकर दामोदर मेहता के होठ खोलकर उनमें डाल दी। थोड़े समय तक सब मेहता की ओर एकाग्र दृष्टि से देखते रहे। उसके निश्चेष्ट मुख में से निश्वास निकला, आंखें हिलीं, होठ में से ज़रा दवाई बाहर निकली और उसने आंखें खोल दीं।

"दामोदर, दामोदर!" भीमदेव ने स्नेहपूर्वक उसे पुकारा।

दामोदर की आंखों मे चेतना आई और उसने भीमदेव को पहचाना। "अन्नदाता ! बापू, आप हो ? सचमुच" इतना कहकर वह एकदम बैठ गया और भीमदेव के गले लग गया।

"मेरे मेहता!" पाटण के प्रभु ने मन्त्री के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया।

"दामोदर के लिए एक तकिया ले आओ" सर्वज्ञ ने कहा।

सर्वज्ञ को देखकर दामोदर ने उनके चरणों मे प्रणाम किया। "नमः शिवाय" सर्वज्ञ ने प्रत्युत्तर दिया और दामोदर को तकिये के सहारे बैठाया।

"दामोदर अब व्याकुलता छोड़कर सब हाल कह, है क्या ?" सर्वज्ञ ने पूछा।

"पूज्यपाद !" सिर झुका कर दामोदर ने शुरु किया, उसकी

आवाज और भाषा मे संस्कार था। उसे खांसी आई किन्तु वह रुक गई और उसने आगे बोलना शुरू किया।

"शान्त होओ, दामोदर शान्त होओ।"

"बापू, बापू!" दामोदर ने बोलने का प्रयत्न किया "बैठे क्या हो! पाटण जाओ, तुरन्त जाओ।"

"क्यों?" भीमदेव ने विस्मयपूर्वक पूछा।

"क्यो क्या? ग़ज़नी का अमीर चढ आ रहा है।"

"क्या कहते हो?" सर्वज्ञ और भीमदेव दोनो बोल उठे।

"क्या, क्या—अमीर के आदमी तो टिड्डियों की तरह सपादलक्ष की भूमि पर उडकर आ रहे हैं—कल सुबह यहां तक आ पहुंचेगे।"

"यहां" सर्वज्ञ ने गम्भीरतापूर्वक पूछा।

"हां, उसने थानेश्वर लूटा और कन्नौज का ध्वंस किया। आपको मालूम है? अब वह भगवान् सोमनाथ का धाम तोडने को आ रहा है, एक पल भी खोना नही चाहिए, जाओ मेरे बापू! और गुर्जर-भूमि सम्भालो।"

"वह ग़ज़नी से कब चला?"

"लगभग एक महीना हुआ होगा, जैसे ही मुझे ख़बर मिली, वैसे ही मै रवाना हुआ। आपको सूचना देने के हेतु आज दस दिन से मैने पैर को विश्राम नही दिया।"

"भगवान् सोमनाथ का धाम तोडने आ रहा है—ऐसा?" ज़रा गर्व से सर्वज्ञ ने पूछा।

"हां, सपादलक्ष को रास्ता देने के लिए भी कहला भेजा था।"

"कितने दिन मे यहां आ पहुंचेगा?"

"क्या कहा जा सकता है, लाखों की सेना लेकर मरुस्थल पार कर रहा है"।

"और यह यवन मेरे देवाधिदेव की पताका को नीचे उतारेगा?" सर्वज्ञ हँस कर बोला। "अभिमानी, यह मानव देव से भी

डरता नहीं ?"

"ग़ज़नी का मुहम्मद तो यमराज से भी भयङ्कर है।"

"आने दो, जिसने तृतीय नयन द्वारा कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया उसकी नयन-ज्योति अभी बुझी नहीं है।" सर्वज्ञ ने कहा। "भीमदेव ! दामोदर सच कह रहा है, तू सुबह ही पाटण सम्भालने को जा।"

"महाराज ! मैं तैयार हूं, गज़नवी ने अभी पट्टणियों का हाथ देखा नहीं है। मेहता ! यवन के साथ कितने आदमी हैं ?"

"क्या कहा जा सकता है, अफ़वाह उड़ी है कि यावनी सेना लाखों की है।"

"पिनाक-पाणि जिसे रखेगा उसे कौन छेड़ सकता है", सर्वज्ञ ने कहा "उठ बेटा ! सोमनाथ तेरे साथ हैं।"

"गुरुदेव ! मैं तो इसमें महादेव जी की कृपा देख रहा हूं, मैं तो युद्ध के लिए तरस रहा हूं और उसमें भी ग़ज़नी के अमीर जैसा योद्धा लड़ने को मिला। अब आप भीम की बाणावली का शौर्य देखेंगे। उठो, विमल ! तैयारी कराओ।"

"सत्य की जय है बेटा" सर्वज्ञ ने कहा और सोमनाथ की कृपा ने श्रद्धावान् से लगाकर तपस्वी तक का उद्धार किया, "भगवान् तुझे ही विजय दिलायेंगे।"

: ३ :

भीमदेव के कानों में रण-कङ्कण का प्रोत्साहक नाद सुनाई देने लगा। विषयी पिता और निःसत्त्व भाई को पाटण की गद्दी से पदभ्रष्ट कर उस पर चढ़ बैठना उसको मनमानी बात बन गई थी।

मालवा के साथ युद्ध करने को वह तैयारी कर रहा था और उसमें विजय-प्राप्ति की उसे पूर्ण आशा थी। युद्ध करने के लिए उसके सदृश कोई योद्धा नहीं जन्मा था, इस विचार से वह कई बार खिन्न रहता था। अब देव ने उस पर कृपा कर यह रण-प्रसङ्ग उसे दिया था।

गज़नी के म्लेच्छ राजा की अनेक कथाएं उसने सुन रखी थीं। उसने लवकोट के राणा को हराया था, थानेश्वर लूटा था, कन्नौज को भी गिराया था, किन्तु वह मरु को पार कर दुनिया के उसपार से गुर्जर भूमि के समान वीर जननी पर आक्रमण करने की धृष्टता करेगा यह तो भीम ने स्वप्न मे भी न सोचा था। किन्तु आज महादेव जी ने ही उसे यह सुन्दर अवसर दिया था। इस परमधाम को तोडने की इच्छा करने वाले यवन को दण्ड देने की अपेक्षा दूसरा कौन-सा महोत्सव पामर जीव पा सकता है ? राजा भीमदेव की रगो मे उत्सुकता व्यापने लगी।

मध्य रात्रि वीत गई थी, और विमल जाने की पूरी तैयारी कर रहा था। चल पडने मे दो चार घडियां ही शेष रही थी।

वह अस्त्र-शस्त्र सज्जित कर तैयार था किन्तु जाने मे देर थी। क्षुधित सिंह के समान अधीरता के साथ इधर-उधर घूमते हुए उसके पैर मन्दिर की ओर आगे बढे। जाते समय एक वार सोमनाथ के दर्शन कर आशीष क्यो न मांग लिया जाय ?

वह सर्वज्ञ के धाम से परकोटे मे आया। मैदान की सारी भीड जा चुकी थी, एक या दो व्यक्ति दूर कोने मे बैठ जम्हाई लेते हुए कुछ बातचीत कर रहे थे। वहुत-से दीपक भी बुझ चले थे।

वह सभा-मण्डप मे धीरे-धीरे आया। एक ओर कोई दुखी यात्री शिव-कवच का जाप कर रहा था। दूसरी ओर चन्द्रिका की ज्योत्स्ना स्तम्भावलि में प्रतिफलित हो आदर्शमय मण्डप मे गिर रही थी, और उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो ताड के वनो मे श्वेत रेती पर चांदनी छा रही हो। युद्ध करने के लिए तरसते हुए उसके मस्तिष्क पर रसोत्सुकता की ठण्डी, मीठी वायु की लहर चली और वह गर्भ-द्वार के पास आ पहुंचा। गर्भ-गृह मे घृत के कुछ दीपक झिलमिला रहे थे।

वह महादेव जी की ओर दृष्टि किये हुए गर्भ-द्वार के पास जा रहा था कि उसकी दृष्टि खम्भे के सहारे खडी हुई एक आकृति पर पडी। एकदम उसके होश-हवास उड गये और पत्थर के पुतले के समान वह

स्तब्ध हो गया।

खंभे से टिककर खड़ी हुई आकृति भयङ्कर थी। उसके सिर पर गंदी सफेद लटकती हुई जटा थी, गले मे खोपड़ियों का हार झूल रहा था, जांघो और पैरो पर छोटी बड़ी हड्डियो की मालाएं थीं, हाथ मे किसी मोटे जानवर के पैर की हड्डी थी। दोनों नथुनो में भारी कम्प था। ऊपर का होंठ कट गया था इसलिए भीतर से बड़े-बड़े दांतो की पंक्ति का दारुण दर्शन होता था, इतना ही नहीं वह भीषण मुख कल्पनातीत भयावहता से हंसता भी था।

भीम थर-थर कांप उठा। पहले तो उसे ऐसा लगा कि साक्षात् भैरव यहां शिव-मन्दिर की रक्षा करने खड़े है, किन्तु ध्यान देकर देखने पर मालूम हुआ कि यह व्यक्ति कालमुखों के सम्प्रदाय का अनुयायी है। भैरव हैं आख़िर देवदूत, और दैवी भयङ्करता–चाहे कितनी ही भयंकर क्यो न हों यह तो था जीता जागता कापालिक। भीमदेव का रोम रोम खड़ा हो गया। वहां से चल देने को उसका मन हुआ किन्तु उसके पैर वहां से खिसक ही न सके। कापालिक किसे देख रहा था यह जानने के लिए उसने गर्भ-गृह में नजर डाली। लाल, मदिरा मे मत्त, भयानक आंखे टकटकी लगाकर अमानुषिक एकाग्रता के साथ देख रही थी—गर्भ-गृह मे कोई एक वस्तु रखी थी। उसको देख भीमदेव भी उस वस्तु की ओर देखने लगा।

पहले ऐसा प्रतीत हुआ कि फूलो का ढेर पड़ा है, बाद मे उसमे मनुष्य की शरीर-रेखाओं का भान हुआ। सुरेख कन्धा, छोटे-छोटे कोमल हाथ, गठीले नितम्बद्वय की रेखाओ पर उसने दृष्टि डाली और जिस प्रकार हृत्तन्त्री के तार टूटते हो उस प्रकार उसे उस व्यक्ति की पहचान हुई। यह तो वह चौला–महादेव जी की नर्तकी है।

वह सिर टिकाकर प्रार्थना कर रही थी। उसका एक भी अङ्ग हिल नहीं रहा था—क्या वह मर चुकी थी? भीमदेव को अपने हृदय का दीपक बुझता मालूम पड़ा। और यह कापालिक क्यो उसे इस प्रकार

देख रहा था।

वह भी स्तब्ध होकर खडा रहा। उसकी आंखे भी चौला की औंधी पडी हुई अङ्ग-यष्टि पर चिपक गईं थीं।

थोडी देर मे चौला का सिर हिला। वह जी रही थी? यह कापालिक क्यो कर उसे यहां लाया था—क्या वह उसी के लिए राह देख रहा था? न भीमदेव खिसका, न चौला खिसकी, और न कापालिक ही खिसका। बाद मे चौला बैठ गई और हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगी, और फिर वह गेंद की तरह एकदम उछल पडी। उत्साह को टपकाते हुए हास्य के साथ वह देव को रिझा रही थी। वह हंसो, पैरों की ठुमकार से उसने त्रिताल दिये और लडते हुए प्रणय-कौतुक के स्वर से वह बडबडाई "मेरे नाथ! तुम्हारी—मैं तुम्हारी"। वह पीछे हटी, हंसती मदमस्त नयनों को नचाती वह गर्भ-द्वार से बाहर निकली और दक्षिण की ओर चली गई।

भीमदेव पीछे हटे। कापालिक खंभे के पीछे खिसक गया और चौला बसन्तकालीन पक्षी की तरह उत्साह से कूदती हुई चल दी।

तुरन्त ही कापालिक खंभो में लुकता-छिपता पीछे हटा।

भीम गजनी के यवन और भगवान् के दर्शन दोनों ही को भूल गया। उसका हृदय तो उस बसन्त को चिडिया पर जा अटका था। वह कापालिक के पीछे चला।

कापाली क्यों पीछे हटा?

संकेतवश?—तो फिर छिपता क्यों था?

किसी कारणवश—तो वह क्या?

भीम ने सुन रखा था कि कापालिक त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में अबोध बालिकाओं को उडा ले जाते है और श्मशान मे ले जाकर उनके रुधिर से भैरव को तृप्त करते हैं। किन्तु यह तो सोमनाथ की नर्तकी है। इसे ऐसा भय कैसा?

कपाली आगे-आगे चौला पर नज़र रखे चला जा रहा था।

भीमदेव भी धीमे पैर से कापाली की ओर ध्यान रखते हुए गर्भ-गृह के पीछे गये। चौला नदी की ओर जाने वाले दरवाजे की ओर पलटी। इस समय नदी की ओर क्यों? दरवाजे मे भीमदेव छिप-कर खड़ा रहा। कापालिक घाट के पास एक वृक्ष के सहारे जाकर खडा हो गया। परन्तु चौला तो जलाशय की आख़िरी सीढी पर जा कर खडी हो गई। वह तेजी के साथ कपडे खोल रही थी, उसे तनिक भी आशङ्का न थी कि दो पुरुषों की एकाग्र अतृप्त आंखें भिन्न-भिन्न भावो से प्रेरित हो भ्रमर की तरह उसके अँगों की मोहकता का पान कर रही थीं।

चौला ने अपने परिधान उतारे। वह चन्द्रिका के अमृत रूपी प्रकाश में, सागर की लहरो की रजतमय ज्योति में, एकान्त प्रतीत होते हुए उदधि पर खडी हुई—जल से उद्गत लक्ष्मी के समान निर्वसनता के कारण चमकते हुए सौन्दर्य मे स्थिर चन्द्र-किरणों की एक छोटी-सी मूर्ति ही मालूम होती थी।

सौन्दर्य-दर्शन के प्रचण्ड प्रवाह में बहता हुआ भीमदेव उत्सूत्र हो टकटकी बांधे देखता रहा।

चौला दरिया में नहाने कूद पड़ी। वह उन्माद पर चढी हुई थी। केश-पाश निर्मुक्त कर उसने बडी निग्धता के साथ अपने घुंघराले बाल संवारे, कपोल पर, वक्षःस्थल पर और उदर पर स्नेह पूर्वक हाथ फेरा, और जल मे डुबकी लगाई। क्षण-भर के लिए वह अदृश्य हो गई, ऊपर आई, फिर अदृश्य हुई। उसने अपने कर-कमल और चरण-सरोज द्वारा पानी उछाला और वह पीठ के बल तैरने लगी। चमकती हुई पारदर्शक तरंगो में लहराती हुई किरणे उस पर छिटक रही थीं। वह ऐसी दिखलाई पड रही थी कि मानो मोहक सीप का बना हुआ कोई शङ्ख तैर रहा हो और सागर अपने जलमय पालने मे उसे सुला रहा था—धीरे-धीरे एवं ममता के साथ।

भीमदेव ने प्रमदायें देखी थीं, भली, बुरी स्वरूपवती, नख़रीली और लावण्यमयी, किन्तु उसने ऐसी न कोई देखी थी, न किसी ऐसी

की कल्पना की थी जो उसे इतना मुग्ध बना दे । यह तो था कौमुदी, लहरिया, पवन एवं लावण्य से बना हुआ, सौन्दर्य की सीमा के बल से मूर्छित करता हुआ केवल स्वप्न ।

उसका व्यक्तित्व केवल उसके नयनों में आ ठहरा था ।

चौला का सौन्दर्य-स्नान समाप्त हुआ, वह घुटने तक पानी में आकर खड़ी हो गई । उसने अपने शरीर को हिलाकर अम्बु-कण दूर किए, बाल निचोड़कर वेणी बांधी और वह पानी से बाहर आई । भीमदेव इस सौन्दर्य-चन्द्रिका का पान कर रहा था ।

उधर चन्द्रिका की मादक अपूर्वता में, सागर की तरङ्गों में चमकते हुए आह्लादक प्रकाश में सरसता की भावना के मूर्तिमान् चित्र को कलङ्कित करता हुआ, भीषण हुङ्कार के साथ हाथ में हड्डियों की गदा फिराता हुआ काला और मोटा भयङ्कर कापाली राहु के समान चौला के सामने जा खड़ा हुआ ।

वह आनन्दमग्न, उत्साहपूर्ण सुकुमार बाला उस काल के दर्शन से भयभीत हो पीछे हटी और उसकी हृदयद्रावी भयङ्कर चीत्कार से तरङ्गों के मनोहर निनाद से निर्मित सुमधुर शान्ति विदीर्ण हो गई ।

भीमदेव के मन को झटका-सा लगा और वे शार्दूल के समान चपलता के साथ झपटे, कूदकर सीढ़ियां उतरे और कापालिक पर जा टूटे । उन्होंने अपने स्नायुबद्ध हाथ से उसकी गरदन दबाई ।

कापालिक ने चौला को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया था किन्तु वह वैसा ही खाली रह गया । भयभीत चौला बेसुध हो धरातल पर गिर पड़ी । भीमदेव के बल में परास्त वह कापालिक चीखते हुए जानवर के समान आवाज करता हुआ घूमा और साथ-साथ पाश के समान भीमदेव के हाथ को तोड़ने लगा ।

भीमदेव की उग्रता का पार न रहा । कापालिक के गले को दबाकर गिरा देने का उन्होंने प्रयत्न किया । कापालिक ने बड़े ज़ोर से उसे दूर धकेलने का प्रयत्न किया । एक दूसरे को भूमि पर गिराने के लिए दोनों

कुछ समय तक युद्ध करते रहे और एक दूसरे को मारते हुए दोनों ही पानी के पास जा पहुंचे । भीम का क्रोध काबू मे न रहा । होठ पर होठ दबा उसने कापालिक को पानी मे फेंक दिया और उसका गला पकड नीचे दबाया—एक बार, दो बार, अनेक बार । कापालिक की तड़फड़ाहट शान्त हुई । उसकी प्रतिक्रिया समाप्त हुई । उसके मुंह से फेन निकलने लगा और वह मुर्दा हो पानी में गिर पडा । कापाली फिर न उठा, भीम का क्रोध शान्त हुआ । उसके शव को ढकेलकर वे बाहर आये ।

: ९ :

भीमदेव पानी से बाहर आकर भूमि पर बेसुध पडी हुई चौला को देखते रहे । वह कुम्हलाये हुए मोगरे के फूल के समान सुरेख एवं सुघड किन्तु श्वेत और शिथिल पडी थी । भीमदेव के हृदय मे लहरें उठने लगीं । उन्होंने उसे हाथ मे लिया, गले से लगाया और निज मे समावेश कर लेने की इच्छा प्रकट की । भीमदेव ने उसे हाथो मे उठा लिया ।

उसकी स्निग्ध मसृण एवं शीतल देह के स्पर्श से भीमदेव का शरीर पुलकित हो उठा । वह बाला थी, यौवन ने उसके शरीर की रेखाओं को नाम-मात्र को ही वर्तुलता दी थी और उसके कृश अङ्गों में विश्वकर्मा की अद्भुत कारीगरी की अपूर्वता थी ।

वह ठंडक से सुन्न हो गई थी । भीमदेव ने उसे अकथनीय ममता के साथ हृदय से लगाया । उसके मुंह को लेकर अपने मुंह के साथ दबाया । क्रोध, श्रम और आवेश से सन्तप्त उनके मुख को चौला के बेसुध मुख की शीतलता के स्पर्श से शान्ति मिली । उन्होंने चौला के वस्त्र लिये, जैसे-तैसे उसके ऊपर लपेटे और उसे अपनी गोद मे सुला-कर होश मे लाने का प्रयत्न किया ।

चौला के पलक हिले और उसने आंखे खोलीं । खोलते ही उसे भान आया या न आया, वह चीख पडी और दूर जा खड़ी हुई । दूर जाते ही उसका परिधान भूमि पर गिर पड़ा ।

भीमदेव भी खड़े हुए । "घबराओ नही", उन्होने कहा "घबराओ नही ।"

अपने शरीर का भान आते ही चौला लज्जित हो गई। उसने वस्त्रों को उठाकर अपने अङ्गों को यथा-तथा आच्छादित किया "कालमुखा किधर गया ?" उसने पूछा, और वह भय से चारो ओर देखने लगी।

"कालमुखे को मैंने भेज दिया—भैरव के पास" कहते हुए भीमदेव खिलखिलाकर हंस पडे।

"कालमुखे को ..." स्वर मानो रुद्ध हो रहा हो इस प्रकार चौला ने कहा "मार डाला ?"

ओह मां—अपशकुन हुआ—मगर आप हैं कौन ?"

कालमुखे के मरणनिमित्त अपशकुन के कारण जायमान कम्प को भीम ने किसी तरह पूरा किया, "मुझे नही पहचाना ? मैं पाटण का भीमदेव।"

"कौन बाणावली भीमदेव ?" सम्भ्रम और भय उसके अवयवों को पुनराच्छादित करने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगे।

"हा, यदि मैं उसे न मारता तो वह तुझे उडा ले जाता।"

"किन्तु कृपानाथ ! आप मुझे विवसन यहां ले आये" वह नीचे से ऊपर तक देख न सकी—"मेरा परिधान ?"

"क्या करूं" उसको लज्जा पर इठलाते हुए भीम ने कहा, "तू अपने परिधान के साथ स्वयं को भूल गई थी।" इस तरह का उनका विशुद्ध परिहास चौला को भी मुग्ध कर रहा था।

"कृपानाथ ! जो भी अवलोकन किया हो उसे भूल जाना, कारण मैं सामान्य नर्तकी नहीं शिव-निर्माल्य हूं।"

"उसी तरह शिव को चढा हुआ फूल मैंने सिर चढाया, और यह मैं पीछे फिर कर खडा हूं, ले तू अपने परिधान पहन ले"

भीमदेव हंसते-हंसते पीठ घुमाकर खडे हो गये। घबराहट मे चारों ओर देखती हुई चौला ने किसी तरह कपडे पहने। कापालिक की भीति और निर्वस्त्र होने की लज्जा के अन्तर्गत उसका हृदय अभी भी स्थिर न हो पाया था।

"क्या अब मैं फिरूं ?"

"हां अब फिरो" चौला ने उत्तर दिया।

"अच्छा हुआ कि मैं यहां था नहीं तो—"

"आपको कालमुखे का भय न लगा–वह मुआ, कौन जाने वह क्या था, ऐसे भयङ्कर अघोरी को छूने का साहस आपको कैसे हुआ यह तो महादेव जी ही जानें, भगवन् अपनी नर्तकी को नहीं भूले।" भीमदेव फिर हंस पड़े और चौला समीप आ गई।

"आप बहुत बहादुर हैं।"

"तुम कहती हो इसलिए मुझे विश्वास होता है।"

"मैं अब जाती हूं—आप यहां कब तक रहेंगे ?"

"मैं ! मुझे तो सिर्फ इतने ही के लिए भगवान् ने भेजा था, मैं यह लौट चला।"

"क्या अभी ही जा रहे हैं ?"

"पाटण"

"परन्तु आज सुबह ही तो आप पधारे,तुरन्त ही जाने का क्या सोच लिया ?" चौला हंसी, और पहली बार भीम को ज्योत्स्नामयी रमणीयता सहस्रधा होती हुई लगी।

"किसी से न कहो तो बताऊं।"

"नहीं कहूंगी—ऐसा क्या है ?"

"गजनी का म्लेच्छ चढ़ा आ रहा है, सो मैं उसका सामना करने मरुभूमि में जा रहा हूं।"

"ओह ! तो फिर विजयी होकर जल्दी लौटना" चौला ने कहा, "भोलानाथ आपकी रक्षा करेंगे।"

"तुम राह देखोगी", भीमदेव ने पूछ ही लिया।

चौला तटस्थ हो गई "जब आप पधारेंगे तब तो मैं महादेव के चरणों में ही होऊंगी।"

गौरव-भग्न भीमदेव इस तरह देखते रह गये मानो किसी ने तमाचा

लगा दिया हो। उन्होंने उस ललना की ओर देखा। उसके उपकार-जित नयनों मे और मोहक स्मित मे मानवीय राग न था—केवल देवभक्ति थी। उन्होंने विश्वास छोड़ा।

"तो फिर चल, मेरा विमल मेरी राह देखता होगा, मैं तुझे छोड़ता चलूं।"

"चलो" चौला ने पानी की ओर देखा और उसे पुनः कम्प हुआ।

: ५ :

नर्तकियो के आवास मे जाने के दरवाजे पर चौला ने भीमदेव से अनुज्ञा ली। अदृष्ट होते हुए चन्द्रबिम्ब के सदृश वह दृष्टि से ओझल हो गई। किन्तु भीमदेव से हिला न गया। इस घडी-आधी घडी मे उन्हे ऐसा सौन्दर्य दर्शन हुआ था जिसका न उन्होंने कभी अनुमान ही किया था न स्वप्न ही से आनन्द लिया था। अन्धकारमय जगत् मे जिस तरह प्राणदाता भानु का उदय होता है उसी तरह उनके जीवन मे यह प्राणेश्वरी उपस्थित हुई और उसी धन्यपल मे पीछे लुप्त हो गई। मुझे जाना ही चाहिए, रण चढना ही चाहिए, विजयदेवी के अंक में मस्तक रखना ही चाहिए, किन्तु बक्त की बात है कि जीवित लौटूं या न लौटूं—उनके हृदय मे खिन्नता व्याप गई।

भीमदेव ने मन्दिर की ओर दृष्टिपात किया। धीरे-धीरे निगाह ऊंची कर शिखर पर फरफराती ध्वजा पर जा गडाई। उनके महादेव उनके साथ थे। गङ्ग सर्वज्ञ का आशीर्वाद था। चौला उनकी राह देखती होगी—अवश्य—हालाकि वह 'नहीं' कर चुकी थी। वह तो अवश्य लौटने वाले थे—और फिर वही दर्शन—और इससे पहले कि उनकी कल्पना आगे बढे, होठ-पर-होठ दबाकर वह वहां से रवाना हुए।

उन्होंने जल्दी से महादेव जी के दर्शन किये और वे बाट जोहते हुए विमल के साथ जा मिले। निकलने से पहले उन्होंने दामोदर को जगा उससे विदा ली।

"बापू!" दामोदर ने कहा, "मै ज्यो ही ठीक हुआ त्यो ही वहां अ

पहुंचूंगा—किन्तु सम्हलना, भूल न करना, यह म्लेच्छ दावानल के समान भंयङ्कर है। उसको मार भगाना सहज नहीं।"

"तू ज़रा घबरा मत, हम वहां पहुंचकर सब ठीक कर लेंगे" भीमदेव ने कहा।

"अवश्य।"

"इस रण को किस तरह निपटाना चाहिए यह तो कहो" विमल ने पूछा। उसे दामोदर का भय अकारण मालूम हुआ। "मैं सेना को ले सामने जाऊंगा, और अन्नदाता पाटण सम्हालेंगे।"

दामोदर ने सिर हिलाया "ऐसा साहस न करना, एक ही मोर्चे पर सारी सेना इकट्ठी कर शत्रु को दबाना चाहिए, बापू! ध्यान रखना।"

"ज़रा भी फिक्र न करो, मैं सब सम्हाल रहा हूं", भीम ने दामोदर को धैर्य दिया। सर्वज्ञ से आशीर्वाद की फिर से याचना की और विमल के साथ यात्रा शुरू की। और सोमनाथ के मन्दिर को छोड़ ज्यों-ज्यों ऊंटनी दूर जाने लगी त्यों-त्यों उसका हृदय तांत से बंधे न होने पर भी मन्दिर की एक छोटी नर्तकी की ओर ज़ोर से खिंचा चला जाता था। वृत्ति उसे खींचती थी प्रणय की ओर, कर्तव्य उसे खींचता था रण की ओर, और जैसे-जैसे कर्तव्य से प्रेरित शरीर दूर जाता गया वैसे-वैसे प्रणय प्रेरित वृत्ति चौला के पास-ही-पास आती गई।

: ६ :

एक शिवभक्त दैनिक नियमानुसार उठा और धीरे-धीरे दतौन स्तवन गाता हुआ नदी की ओर के दरवाजे से शनैः शनैः-सीढ़ियां उतर रहा था। चन्द्रमा बिलकुल अस्त होने आया था और उसका प्रकाश फीका पड़ गया था। वह सीढ़ियां उतरा, दतौन की लकड़ी दरिया में दूर फेंकी और नीचे झुककर कुल्ली करने लगा......और दारुण चीख के साथ पीछे हटा और प्राण लेकर भागा। वह मुंह से शिव-कवच का स्मरण करता जाता था "ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकल-तत्वात्मकाय।"

दो स्त्रियां पानी के घडे लेकर आईं। जम्हाई लेती, गप्पे मारती वे सीढियां उतरीं–पानी में उतरने लगीं और उनके पैर मे कुछ अटका। दोनों ने नीचे देखा और घडे फेक दिये और "ओह री मा" कहकर पीछे भागीं।

आधी घडी मे मन्दिर मे शोर-गुल मच गया। एक भयङ्कर बात सबकी जीभ पर थी, अकल्पित आतङ्क सबके हृदय पर बैठा हुआ था। ऐसी घटना घटी थी जो किसी ने कभी न सुनी थी—भयङ्कर आपत्ति-सूचक दैव-कोप का दर्शक एक कालमुखा फटी आखो से ओष्ठहीन विकराल मुख लिये घाट पर पडा था।

यह बात वायु के समान फैली, सर्वज्ञ के धाम से, मन्दिरो से, पाठशालाओं से, शिवभक्तों और नर्तकियो के आवास से स्त्री और पुरुष घबराए हुए मुख से, भीत मन्द हृदय से बाहर आये। कुछ ऐसी बात बन गई थी कि जिसकी कल्पना से सबकी काया कम्पमान हो रही थी। कुछ ऐसी घटना हो गई थी जो त्रिकाल मे किसी ने न जानी थी। एक कलमुहे का भयङ्कर शव मन्दिर के आगे घाट पर पड़ा हुआ था। भय से कापते, दैवकोप की आशङ्का से संत्रस्त नर-नारी न अपनी जिज्ञासा को रोक सके और न सच्ची घटना का विश्वास ही कर सके।

बात बढने लगी, एक नहीं अनेक कलमुहों के शव की बात होने लगी।

यात्रियों की धर्मशाला मे बात फैली, थरथराते श्रद्धालुजन दैव-कोप से बचने के उपाय सोचने लगे। स्त्रियां रोने लगीं और अबोध बालकों को हृदय से लिपटा बलाएं लेने लगीं। छोटी बालिकाएं हिचकी के साथ रोने लगीं। मुंह-मुंह पर शिव-शिव की रटन लग गई।

जिन्हें याद था वे शिव-कवच का पाठ बोलने लगे, श्रोत्रियगण मन्दिर में आते और सीस नवा, गाल पर तमाचा मारकर देव से क्षमा-याचना करने लगे। जिन्होंने सन्ध्या समाप्त नहीं की थी उन्होंने रुद्री शुरू की। कितने ही भयभीत लोग टोली बनाकर घर के बाहर निकले और एकत्रित होकर कीर्तन करने लगे। मञ्जीर, मृदङ्ग और शहनाई का शब्द चारों ओर

होने लगा। जिससे जैसे बना वह वैसे मन्दिर की ओर आने लगा। शङ्कर की कृपा की याचना किये बिना कोई दूसरा बचने का उपाय सूझा ही नहीं।

शिवराशि ने बडी मेहनत से घड़ी-दो-घड़ी आंखें मीचीं थीं, किन्तु उसे इस कोलाहल ने जगा दिया। उसने पूछ-ताछ की और बात सुनते ही वह शिव-कवच का पाठ करने लगा। नित्यकर्म छोड वह मन्दिर में पहुंचा और वहां संत्रस्त और कृपाकांक्षी भीड़ देखकर स्वयं भी त्रस्त हो गया। वह घाट पर आया, जैसे-तैसे भीड में उसे रास्ता मिला और वह सीढी पर पहुंचा।

उद्दीयमान सविता के प्रकाश में कापालिक का ओष्ठहीन भयङ्कर आनन विदीर्ण नयनों द्वारा शिखर की फरफराती-विजय वैजयन्ती की ओर देखता हुआ दिखाई पड़ रहा था।

दामोदर की चर्चा से परिचित, दैव-कोप के भय से संत्रस्त शिवराशि ने मस्तक पर दोनो हाथ रखे और प्राकृतजनों की तरह 'ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्वात्मकाय' कहना शुरू किया। वह पीछे जाने लगा परन्तु दो क़दम रखते ही उसकी नज़र घबराए हुए स्त्री-पुरुषों पर पडी और वह रुका। बीस वर्ष तक सुसेवित शास्त्र-वचन, गुरु-सेवा और तप इस समय उसके सहायक हुए। गङ्ग सर्वज्ञ के कैलासवासी होने पर यह परमधाम और पाशुपत की आचार्य पदवी उसके हाथ मे आने वाली है, और इस समय वह स्वयं हिम्मत हारकर भाग जाए? साहस कर वह फिर मुडा और पास खडे हुए एक शिष्य को उसने आवाज़ दी "सिद्धेश्वर!"

"जी!"

"जाओ गुरुदेव को खबर दो की कापालिकों में श्रेष्ठ त्रिकालज्ञ श्रीमत्कङ्कयोगीश्वर कैलासवासी हुए, और बाद में कापालिकों की मण्डली में यह समाचार दे आओ।"

"जैसी आज्ञा" कहकर सिद्धेश्वर झपटकर चला गया।

खड़े हुए लोक-समूह ने जब कङ्कयोगीश्वर का नाम सुना तब उस पर कंपकंपी की एक महान् तरङ्ग फिर गई। कङ्कयोगीश्वर का नाम कालमुखों के सम्प्रदाय में परम पूज्य माना जाता था। उनके योगबल के कारण भैरव स्वयं उनकी हाज़िरी में रहते थे ऐसा पाशुपत मत के अनुयायियों में माना जाता था। शंकर का साक्षात्कार करने के हेतु उन्होंने भयङ्कर महाविधि का प्रारम्भ किया था और इस विधि को समाप्त करने के लिए एक सौ आठ सुन्दरियों के रुधिर से भैरवनाथ-जैसे महा-रुद्र की रुद्री करने का व्रत लिया था। अघोरियों में श्रेष्ठ कङ्क-योगीश्वर मध्यरात्रि के बिना श्मशान से बाहर न निकलते थे। उनका ऐसा मरण सुन सब लोग पहले से भी अधिक घबरा उठे।

शिवराशि को प्रतीत हुआ कि इस समय वह कसौटी पर चढ़ रहा है। यदि वे सब उसे घबराया हुआ मानेंगे तो उसकी सर्वज्ञ पद की योग्यता कम गिनी जायगी। गुरु के पास रहकर अधिकार कैसे जमा लेना यह वह जानता था। यथा-तथा घबराते हुए हृदय को वश में कर, अपने पास खड़ी एक वृद्धनारी को कांपते हुए देख वह बोला—

"मां जी! क्यों कांप रही हो?"

"राशिजी, यह क्या हुआ? कङ्कयोगीश्वर इस प्रकार कैलासवासी हुए, सो कौन जाने क्या होगा?"

"भगवान् शङ्कर की कृपा है तो क्या बिगड़ सकता है?"

"महादेव जी की अवकृपा के बिना ऐसा कभी हो सकता है? क्या क्या विपत्तियां आयेंगी?"

शिवराशि को गज़नी के अमीर की याद आई और उसे रोमाञ्च हो आया किन्तु भयभीत हृदय को यथा-कथञ्चित् दबाकर वह बोला, "अरे ऐसे क्या घबराती हो, मुझसे योगीश्वर ने स्वयं कहा था कि जिस पल में भगवान् शङ्कर का साक्षात्कार उनको होगा उसी पल से इस भूतल को त्याग वे कैलास पर निवास करेंगे। यह तो भगवान्

सोमनाथ की कृपा उन पर हो गई।"

आडम्बरपूर्वक शिवराशि सीढियां उतरा और योगीश्वर के शव के सामने खड़े हो उनकी फटी हुई आंखों से अपनी दृष्टि किसी तरह दूर रखकर स्तोत्र-पाठ करने लगा। उसका हृदय प्रतिपल बन्द होने की तैयारी कर रहा था किन्तु हाल हो गुरूजी आ पहुंचेगे इस आशा से वह किसी तरह खड़ा रहा।

जनता की संख्या बढती गई। कीर्तन और भजन ज़ोर ज़ोर से गाकर भय मिटाने, और दैवकोप को शान्त करने का प्रयत्न बढता गया।

शिवराशि की गप्प मुंह-मुंह चारो ओर फैलने लगी। जनता मे हिम्मत बंधी। यह दैव-कोप नहीं, पर देव की कृपा थी। और जब गङ्ग सर्वज्ञ पहुंचे तब लोगो मे घबराहट बिलकुल शान्त होने को थी। सत्कार स्वीकार करते हुए सर्वज्ञ आये। उनके मुख पर सदा के समान शान्ति थी। उन्होंने आते ही तुरन्त बुलन्द आवाज़ मे एक परिचित स्तोत्र बोलना शुरू किया और उनको देख निर्भय बने हुए लोग उसी स्तोत्र को साथ-साथ बोलने लगे। सर्वज्ञ योगीश्वर के शव के पास गये और उन्होने नीचे झुककर उनकी आंखो पर फूल अर्पित किये।

इतने ही मे कालमुखो का झुण्ड विचित्र एवं भयङ्कर हुङ्कार करता हुआ आ धमका और उसने योगीश्वर का शव सम्हाल लिया।

कङ्क योगीश्वर की श्मशान-यात्रा शुरू हुई। एक लाख स्त्री-पुरुषो की 'नमः शिवाय' की रटन के साथ योगीश्वरो मे श्रेष्ठ कङ्क योगीश्वर का शव श्मशान पहुंचा। कालमुखों ने अपनी विधि शुरू की और सर्वज्ञ और उनके शिष्यो के सिवा सब बाहरी मण्डली विदा हुई। कालमुखों ने अपनी सनातन प्रणाली के अनुसार अपने कैलासवासी योगीश्वर के हाड़-चाम की अकथ्य एवं भयावह व्यवस्था की।

सूर्य व्योममध्य तक पहुंचा और गङ्गा लौट आई। तब तक चौला

सोई हुई थी। उसे भयानक और रस झरते स्वप्न आ रहे थे। भयावह अघोरीगण उसके पीछे दौडते नजर आते थे और शिव वृषभारूढ हो उसके आगे-आगे जा रहे थे। भीमदेव की गोद मे छिपी हुई वह गणपति के चूहे पर सवारी कर रही थी। देव और दानव उसके लिए आपस मे मार-काट कर रहे थे। शङ्कर की गोद मे बैठ वह पार्वती जी से लडने लगी और पार्वती जी कुपित हुई तो वह एक पैर से नाचने लगी। फटे होठ वाले अघोरी उसे कन्धे से पकड भीमदेव के पास ले जाने लगे। भीम कार्तिकेय स्वामी के मोर पर बैठ आने लगे और उन्होने उसे अपने हृदय से लगा लिया। मोर ने चोच मारकर वस्त्र खीच लिए और वह उड गया।

वह एकदम चौक उठी और पूर्व दिवस के स्मरणो को ताज़े करने लगी: "कल मैंने देव को रिझाया था, चन्द्रिका मे समुद्र-स्नान किया था, भीमदेव के हाथो मे छिपी थी, मेरे महादेव ने मुझे बचाया था नही तो मुझे बचाने भीमदेव कहां से आते। अवश्य मै देव की ही लाडली थी–थी–हां थी। इसमे तनिक भी सन्देह न था"। वह हंस पडी।

गङ्गा आई और उसने अपनी पुत्री को हंसते देखा।

"क्यों री, इतना सोती है, दोपहर कभी की हो गई ?"

"तो क्या हुआ, कल सारी रात का जागरण था।"

"मगर ख़बर है क्या हुआ है ?"

"मैं तो सो रही थी मुझे क्या ख़बर", उसने मुस्कराते हुए पूछा "कौन-सी ख़बर ?"

"कङ्क योगीश्वर मर गये।"

"कौन ?"

"कापालिक कालमुखों के आचार्य, उनका शव सीढियो पर पडा था, बाप रे! कैसी फटी आंखो वाला भयानक मुख!" कपडे बदलती हुई गङ्गा चर्चा करने लगी। "ख़बर है तुझे, एक सौ आठ छोकरियो के

रुधिर से महादेव जी की रुद्री की"—उसकी नज़र चौला पर पड़ी और वह घबराकर अटकी "क्या है बेटी ?"

"छोकरियों का रुधिर ? ओह री मां !" इतना कहकर चीख़ मारकर चौला बेसुध हो गई ।

: ८ :

और श्मशान से लौटते हुए गङ्ग सर्वज्ञ पुनः स्नान कर ध्यान करने बैठ ही रहे थे कि उनके मुख से आप-ही-आप शिव-कवच का पाठ चल पड़ा ।

'ॐ नमो भगवते सदाशिवाय..............'

चौथा प्रकरण

सामन्त चौहान

: १ :

चौला जब मूर्च्छा से जागी तो उसका सिर चक्कर खा रहा था भीमदेव कापाली और गजनी का म्लेच्छ इन तीनो का स्वरूप उसके सिर मे घूमता नजर आता था और उसके हृदय मे आतङ्क बैठा हुआ था। गङ्गा पास ही मे बैठी हुई थी, उससे वह लिपट गई।

"हां, क्या होगा ?"

"क्या होने वाला है ?"

"तू क्या जाने ? योगीश्वर मरे, सो ज़रूर कोई बडा अमङ्गल होने वाला है।"

"अरे होगा, होगा" तिरस्कार से गङ्गा ने कहा "मुझे तो इतने बरस हुए मैने तो इतना बडा अमङ्गल कभी नहीं देखा।"

"तुझे खबर है", चौला ने अपनी मां के कान मे कहा "गज़नी का म्लेच्छ चढा आ रहा है ?"

"गज़नी का म्लेच्छ !-यह और कौन मुआ है ?"

"यह तो मुझे मालूम नही।"

"तो तुझे कहां से मालूम हुआ ?"

"मालूम हुआ कहीं से, अब तुझे इसकी पंचायत से मतलब ?"

"ओहो, कल तो तू कुछ भी नही जानती थी और आज कहां से मालूम हुआ ?"

"मुझे खबर मिली है।"

"कहां से ? कह तो सही" गङ्गा ने आग्रहपूर्वक चौला से पूछा। पुत्री के प्रति उसका इतना जबर्दस्त प्रेम था कि उसके आन्तरिक भावों से अपरिचित रहने पर उसे ईर्ष्या हो उठती थी। वह शिवराशि के साथ सम्बन्ध जोड ले ऐसी गङ्गा पैरवी करती रहती थी, तथापि अपने सिवाय किसी दूसरे को वह अपना देह तथा हृदय दोनों समर्पण करे यह कल्पना तो उसके हृदय मे वज्राघात करती थी। "कह तो सही ! मुझे भी नहीं बताती ?"

चौला तो भोली और सरल थी। जगत् से कुछ छिपा नही सकती थी तो मां से कैसे छिपा सकती ?

"मां गज़नी का म्लेच्छ चढा आ रहा है यह मुझे पाटण के भीमदेव ने कहा।" चौला की नज़र के सामने रात का चन्द्रिका-स्नान आ खडा हुआ और वह कम्पित हुई।

गङ्गा चौला से लिपट गई "ओहो मेरी अच्छी बिल्ली ! तू भीमदेव से कब मिल आई ?"

चौला का हृदय तो इस प्रसङ्ग को प्रकट करने को तैयार था ही। वह मां से लिपटी, उसे छाती से लगाया, रोते-हंसते, डरते उसने रात का प्रसङ्ग, कङ्कयोगीश्वर की मृत्यु और भीमदेव का मिलाप इन सबका वर्णन किया। केवल स्नान करके लौटते हुए उसे भीमदेव जब ले आया तब अपने तन पर कपडे थे या नही, यही कहना वह भूल गई।

: २ :

जब गङ्गा ने यह बात सुनी तो उसके हृदय में भी आतङ्क छा गया। कङ्कयोगीश्वर की हत्या चौला के अर्थ हो इससे अधिक और कौन-सा विपत्ति-सूचक अपशकुन हो सकता था ? और तुरन्त ही भीमदेव को गज़नी के साथ लडने जाना पडा। सब दु:ख से छूटने का गङ्गा को एक ही रास्ता मालूम था और वह उसने ग्रहण किया। वह गङ्ग सर्वज्ञ के पास गई और अपने साथ चौला को भी लेती गई।

गङ्ग सर्वज्ञ मध्याह्न सन्ध्या कर रहे थे। वे अर्घ्य प्रदान कर चुके

थे और अब गायत्री का जप कर रहे थे। परन्तु आज उनका चित्त अस्वस्थ था। मुख से गायत्री का उच्चार होता था किन्तु उनके अन्तर में आवाज उठा करती थी।

"भगवान् शङ्कर! क्या ठानी है?"

गङ्ग चौला को लेकर पिछले दरवाजे से दालान में आई और हाथ जोडकर एक ओर बैठ गई। पास में सिर नीचा किये चौला भी बैठ गई। चौला गङ्ग सर्वज्ञ के मुंह की ओर देखती रही। तेजस्वी विशाल भाल पर चन्द्रलेखा के समान स्पष्ट एवं धवल त्रिपुण्ड शोभित था। उसे शङ्का हुई कि सर्वज्ञ सचमुच मानव थे कि स्वयं शङ्कर, कई बार उसे स्वप्न में शङ्कर ऐसे ही दिखाई पडते थे। सर्वज्ञ ने अपनी दाढी पर जैसी गाठ लगाई थी वैसी ही शङ्कर भी लगाते थे। उसकी विचार-धारा चली: "यदि सर्वज्ञ शङ्कर हो तो फिर मैं देवाधिदेव की लडकी हुई"—यह तो सच नहीं मालूम होता था, कारण वह स्वयं तो शङ्कर को पार्वती के भाव से भजती थी।

गङ्ग सर्वज्ञ सन्ध्या कर ही रहे थे कि शिवराशि आया और मुख के पास जा कर पैर पडा। उसने एक नजर चौला को देखा और मुस्कराया।

"गुरुदेव! बाहर सज्जन चौहान और उसका पुत्र दर्शनार्थ आये हैं।"

"हां, किन्तु गङ्गा कोई बात करने आई है, सो इसे पहले निपटा दे।" और सर्वज्ञ की नजर स्नेह पूर्वक चौला पर गिरी। "और चौला भी आई है। क्यों चौली! कल तो तूने हद कर दी न?"

गङ्गा और चौला आगे बढी और सर्वज्ञ के पैरों में झुकीं।

"आप की ही तो सब कृपा है।"

"कृपा भोलेनाथ की" सर्वज्ञ ने कहा, "मगर चौली! है तू जबरदस्त, मुझे क्या पता कि तुझे इतना अच्छा याद है, गङ्गा! अब तो तेरा अस्त हो गया।"

"मेरा अस्त होगा तो मेरी पुत्री ही से न—क्यों राशि जी ?" राशि जी तो हां कहने को तत्पर थे ही, किन्तु सर्वज्ञ ने इस कौटुम्बिक वार्तालाप को आगे न बढ़ने दिया।

"गङ्गा ! बोलो कैसे आई ?"

"एक तो इस चौला को आपके दर्शन कराने थे।"

"और दूसरा—?"

"और दूसरा यह कि एक भयंकर बात अभी चौला ने कही सो निवेदन करने आई हूँ।"

चौला ने चारों तरफ देखा, इससे गङ्ग सर्वज्ञ समझ गये।

"शिवराशि ! जाओ, बाहर कह आओ कि कोई अन्दर न आने पाये।"

"जैसी आज्ञा", कहकर शिवराशि बाहर गया और थोड़ी देर बाद फिर आकर बैठ गया।

और गङ्गा ने चौला के अनुभव में आई हुई बात सर्वज्ञ से कही। जैसे-जैसे वह कहती गई वैसे-ही-वैसे सर्वज्ञ का मुख गम्भीर होता गया। जब भीमदेव ने कङ्क योगीश्वर को मार डाला, यह बात उसने कही तब सर्वज्ञ की दोनों आंखों के सामने अंधेरा छा गया। लम्बी श्वास लेकर वह शिव-कवच की कुछ पंक्तियां पढ़ने लगे। शिवराशि ने बात सुनी और उसके तो छक्के छूट गये। जब गङ्गा की बात पूरी हुई तो सब चित्रवत् हो गए। सर्वज्ञ ने प्रयत्न पूर्वक धीमे स्वर से कहा "मनुष्य की भीति और मनुष्य की आशा ये शशकश्रृङ्ग के समान है। सत्य, वस्तु तो भगवान् शङ्कर की इच्छा है, उसके अधीन होने की शक्ति दे, इतनी ही कृपा अपने को चाहिए। इन बीस वर्ष में इस धाम की उत्तरोत्तर वृद्धि भगवान् ने मेरे हाथ से करवाई है। ये त्रिसूलपाणि विराजमान है तब तक कोई क्या कर सकता है ?" यह कहते-कहते उनकी आंखों में तेज आ गया और उनकी आवाज़ ऐसी अर्थ गम्भीर बन गई मानो देव का सन्देश ही कह रही हो "जिसका हाथ भगवान् ने पकड़ा हो उसे कौन छेड़

सकता है, और जिसे सोमनाथ ने छोड़ दिया हो उसे बचाने वाला कौन है। जिस पल में गज़नी का अमीर सोमनाथ से द्वेष करेगा उसी पल में उसका अस्तित्व ही मिट जायगा।"

वे रुक गये और आंखें आकाश की ओर स्थिर करके पल-भर मौन रहे। उस समय तीनों प्रेक्षकों में सर्वज्ञ के प्रति अचल श्रद्धा व्याप गई।

"राशी! बाहर सज्जन चौहान खड़ा है न। भगवान् सोमनाथ ने ही उसे भेजा है---उसे बुला लाओ।"

शिव उठकर सज्जन चौहान और उसके पुत्र को बुला लाये।

: ३ :

सज्जन चौहान पैंतीस-चालीस वर्ष का प्रचण्ड, घने बालों वाला विकराल राजपूत था। उसका बीस वर्ष का पुत्र पिता की छोटी प्रतिकृति था। दोनों ही एक सरीखी ढाल और तलवार से सुसज्जित थे। दोनों ने आकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया।

"नमः शिवाय।"

"शिवाय नमः" सर्वज्ञ ने आशीर्वाद दिया, "क्यों, कल सांझ को आये?"

"हां गुरुदेव," सज्जन ने कहा, "ज़रा आने में देर हुई, आप जब आरती उतार रहे थे तब हम पहुंचे थे, बाद में तो नृत्य हो रहा था।" उसने चौला की ओर देखा।

"हां चौला ने सुन्दर नृत्य किया न?' सर्वज्ञ ने कहा और उनकी नजर सज्जन के पुत्र सामन्त पर पड़ी। छोकरा जब से आया तब से ही चौला पर टकटकी लगाये बैठा था। सर्वज्ञ जरा मुस्कराये, चौला थी तो बहुत मोहक।

"सज्जन! घोघाराणा कैसे है?"

"मज़े में हैं, उन्होंने आपके चरणों मे अनेकानेक दण्डवत् प्रणाम कहलाये हैं और यह भेंट भी भेजी है", यह कहकर सज्जन ने कमरबन्द में से एक सुन्दर हीरा निकालकर सर्वज्ञ के चरणों पर रखा।

सर्वज्ञ बोले "चौहान कुल का मुकुट सोमनाथ की भक्ति में अचल है यह देख मैं प्रसन्न हूं।"

"शङ्कर की कृपा है।"

"सज्जन! घोघाराणा पर तो शङ्कर प्रसन्न हैं। उनकी सेवा देव को बहुत प्यारी है। तुम कब रवाना हुए थे?"

"हम तो दो महीने हुए तब घोघागढ से रवाना हुए, सपादलक्ष होते हुए श्रीमाल पहुंचे और वहां से चित्तौड होकर यहां आये।"

"और कितने दिन में वापस जा सकते हो?"

"पच्चीस दिन लगेंगे।"

"यूं नहीं। तेजी से—पक्षी के समान उडते हुए—जान पर खेल जाने का काम है, भगवान् का काम है।"

"बहुत जल्दी करूं तो बीस दिन लगे।"

"सज्जन! पन्द्रह नहीं दस दिन में, दस नहीं आठ दिन में, मैं तुम्हे—घोघाराणा के पौत्र को—पहचानता हूं, पक्षी न उड सके उस तरह तू मरुस्थल मे ऊंटनी पर सवार होकर उड सकता है।"

"कहो महाराज! आज्ञा क्या है?"

"पामर की आज्ञा क्या हो सकती है?" भगवान् सोमनाथ की आज्ञा है।"

"क्या है? कहिये महाराज! घोघाबापा के कुल को सोमनाथ की आज्ञा सदा शिरसावन्द्य।"

"इस कुल पर तो भगवान् सोमनाथ के दोनों हाथ है, सज्जन! मन्दिर से बढिया-से-बढिया ऊंटनी लो और रात-दिन सवारी कर घोघाराणा को सोमनाथ की आज्ञा कहो।"

"कौन-सी महाराज?"

"गजनी का म्लेच्छ चढा आ रहा है, भगवान् का मन्दिर तोडने। जाओ! घोघाराणा को कहो कि भगवान् ने तुम्हारी अस्सी वर्ष की भक्ति के फलस्वरूप तुम्हे देवताओं से भी बढकर अधिकार दिया है—

सोमनाथ के मन्दिर का रक्षक तुम्हे बनाया है।"

"हमारा अहोभाग्य !"

शङ्कर की आज्ञा सुनाते हुए सर्वज्ञ के मुख पर दिव्य तेज फैल रहा था और उनके नयनों मे से अङ्गार-वृष्टि होने लगी, "और कहना कि सुलतान रण मे घुसने न पावे—घोघाराणा के कुल मे एक वीर भी जीवित हो तब तक। कहना कि भगवान् सोमनाथ की आज्ञा है कि जहां हो वहां इस देव के द्वेषी की जान लेना, और शङ्कर का वरदान है कि घोघा चौहान की कीर्ति सूरज और चांद जब तक तपेगे तब तक रहेगी।

सज्जन सर्वज्ञ के चरणों मे मस्तक झुकाकर शङ्कर की आज्ञा सुनता रहा और गद्गद् स्वर तथा नेत्रों से बोला।

"महाराज! निर्भय रहिए! घोघाराणा के इक्कीस पुत्र, छियालीस पौत्र और एक सौ तीन प्रपौत्र देव की आज्ञा से मरुस्थली को घेरे खड़े है—किस यवन की हिम्मत है कि उन्हे हटाकर आगे बढे ?"

"धन्य है चौहान! जा शङ्कर की आज्ञा घोघाराणा से कह।"

"जिन्दा रहा तो पन्द्रह दिन मे पहुंच जाऊंगा, मेरे सामन्त को सम्हालना।"

सामन्त पिता की ओर देखने लगा, उसके विशाल, वीर नयन उपालम्भ दे रहे थे।

"बापू!" सामन्त की आवाज मे अपमानित होने की असीम वेदना थी, सोमनाथ की आज्ञा तो घोघा चौहान के प्रत्येक पुत्र को है, मै छोकरा नही, मैं आपके साथ चलूंगा।" सर्वज्ञ ने सामन्त की पीठ ठोकी, "शाबाश! देखा चौहान कुल का खून, किन्तु मुझे तेरी ज़रूरत यहां पड़े तो ?"

सामन्त के वदन पर निराशा छा गई, "महाराज! यहां के राजपूत यहां होंगे न, ज़रूरत पडे तो भी घोघा गढ का चौहान तो वहीं हो और वही मरे—मै तो जाऊंगा।"

सर्वज्ञ का उत्साहपूर्ण हास्य सबको प्रेरणा दे रहा था "सज्जन ! तेरे लड़के में घोघाराणा का शौर्य है। ले जाओ, जब तक ऐसे चौहान हैं तब तक धर्म की विजय है।"

सामन्त ने उपकृत हृदय से सर्वज्ञ के पैरों पर मस्तक रखा। सर्वज्ञ ने उसे उठाकर हृदय से लगाया।

"वत्स ! गौ, ब्राह्मण और धर्म इस त्रितय के विध्वंसको की तुझ जैसे के सामने क्या हिम्मत ? जा, विजयी हो।"

"महाराज" ! सज्जनसिंह ने कहा, "जहां होगा वहां—इस म्लेच्छ का शीश हम भगवान् सोमनाथ को चढ़ावेंगे।"

"जाओ पुत्रो ! विजय करो। शिवराशि ! इनके जाने की व्यवस्था कर दो, इन्हें अपनी अच्छी-से-अच्छी ऊंटनियां देना।"

"महाराज ! चिन्ता न करें, ये मरुस्थली के मार्ग दूसरे को थका सकते है, किन्तु हमारे लिए तो ये विश्राम के रास्ते हैं।"

"क्या मुझे मालूम नहीं ?"

सज्जन चौहान और सामन्त सर्वज्ञ के पैरों मे झुके और विदा हुए। जाते-जाते सामन्त ने चौला की ओर देखा। उसकी सुन्दर एवं प्रशंसा-मुग्ध आंखे देख रही थीं। उनके द्वारा प्रेषित नयन-सन्देश को सामन्त ने स्वीकार किया और उसे प्रतीत हुआ कि वह सन्देश उसकी वीरता को प्रेरणा दे रहा है।

सर्वज्ञ की दृष्टि से बाहर कुछ नहीं था। उन्होने कहा "सज्जन, तू और तेरा पुत्र दोनो ही भगवान् के दर्शन करने जाना, यह चौला तुम्हें प्रसाद दे देगी।"

सामन्त का हृदय पुलकित हुआ—यह चौला जो कल नृत्य करती थी—सोमनाथ की लाडली दासी—मुझे प्रसाद देने आयगी ?

दो घड़ी बाद सामन्त और उसके पिता दर्शन करने गए तब चौला प्रसाद लेकर खड़ी थी। दोनो ने ही मिश्री का प्रसाद खाया, प्रक्षालन जल सिर पर चढ़ाया और शौर्य से उछलते हृदय से दोनों

सोमनाथ के पांव पडे ।

सामन्त की आंखें पास खडी हुई नर्तकी को देख रही थी । वह जाने ही वाला था कि उसकी सुमधुर आवाज सुनाई दी :

"और सर्वज्ञ प्रभु ने यह भेंट भेजी थी वह तो रह ही गई", ऐसा कहकर सोने की कटोरी में रखी हुई भस्म उसने सामने रखी । दोनो चौहानों के गर्व का पार न रहा । शङ्कर के सेवायज्ञ में अपनी आहुति हो इसी अर्थ से सज्जन ने स्वयं गर्व से भृकुटि के मध्य विभूति लगाई । सामन्त ने विभूति स्वयं न ली । उसने तो सदेह अप्सरा का नृत्य देखा था, उसका नयन-सन्देश पाया था, उस के हाथ से दिया हुआ जल चखा था, जो रण-यज्ञ मे अपने-आपको बलि चढाना हो, तो फिर उन्ही हाथो से क्यों नहीं ? उर्मि मे कम्पायमान हो वह क्षण-भर खडा रहा और फिर उसने अपना सिर आगे किया । चौला ने सामन्त की आंखो से टपकते हुए शौर्य का नशा देखा, उस स्वरूपवान् युवक के अङ्ग-अङ्ग मे जो उत्कण्ठा भरी थी वह भी देखी—सिर्फ अपने लिए । उसने अपनी उंगली से भस्म लेकर तिलक लगाया ।

"जीत कर जल्दी पधारना", उसने धीमे स्वर से कहा ।

"जरूर" गर्व के साथ सामन्त ने कहा और चौला की मोहिनी आंखो ने पलक की एकाग्रता के साथ उस शब्द को स्मृति पर अङ्कित कर दिया ।

जब वह गया तब विजयी का प्रचण्ड उत्साह उसकी रग-रग मे था ।

: ४ :

सज्जनसिंह, सामन्त और अन्य आठ योद्धाओं को लेकर ऊंटनियां बाहर निकली । उन्होने साथ में कुछ अच्छे-अच्छे ऊंटनी वाले भूमिपों को भी साथ ले लिया ।

सज्जन को आडे मार्ग से नही किन्तु सीधे मरुस्थल की ओर जाना था । सौराष्ट्र के आडे मार्ग से वह विशेष परिचित न था । किन्तु मरु-भूमि में उसको किसी की परवाह न थी, जहां रेती बिछी हो वहां वह

राजा था। कच्छ से घोघागढ तक के सब रास्ते पार करना उसके लिए मनोविनोद था और सारी मरुभूमि में उसके सरीखा ऊंटनी का सवार दूसरा न था। उस जानवर पर उसने रात और दिन बिताये थे। जिस ऊंटनी को वह हांकता वह पंखवाली हो जाती थी। उस के साथ वह बात कर सकता था, उसकी वेदना को समझ सकता था, उसके द्वारा चाहे जो करा सकता था। घोघागढ की तेज़ ऊंटनियां उसकी एक टच-कार मे मुग्ध हो जाती, और वह भी ऊंटनियो के पीछे पागल था, कारण वे उसके लिए निर्मनस्क मूक जानवर न थी, परन्तु उसकी बांसुरी पर नाचने वाली गोपियां थीं।

वह तेज़ी से आगे बढा। उसने सामन्त को और एक भूमिप को अपने साथ रखा था। दूसरे साथी सैनिक दूसरी ऊंटनियो पर पीछे आ रहे थे।

सौराष्ट्र के जंगलो को पार कर जब सज्जन चौहान का छोटा-सा काफिला रण के सामने उपस्थित हुआ तब दोपहर का समय होने लगा था। जिस प्रकार समुद्र-तट पर खडे हुए व्यक्ति की जहां तक दृष्टि पहुंचती है वहां तक उसे पानी की उछलती हुई लहरें-ही-लहरें दिखाई देती हैं, उसी प्रकार सज्जन की नज़र के सामने रेती की तरङ्गें ही विस्तृत थी। सूर्य की किरणे रेती के तेज मे मिलकर ऐसी चमकती थी कि सज्जन आखें भी खुली न रख सका। इस ओर से रेगिस्तान मे होकर जाने का भयङ्कर छोटा-सा रास्ता था, यह उसे मालूम था, किन्तु वह मार्ग कच्चे सुकुमार सामन्त के लिए न था।

उसने अपने पुत्र की ओर देखा। हाथ के द्वारा आंखों के आगे छाया कर बस केवल होश और हिम्मत के सहारे वह दुस्तर रेती के सागर को माप रहा था। क्या उस बेचारे को इस मार्ग से ले जाना ठीक होगा ? सज्जन का दिल न हुआ।

"बेटा ! हमें एक काम करना चाहिए, तू आबू होकर झालोर जा, मै यहां से सीधा रास्ता पकडता हूं।"

सामन्त समझ गया और आंखों से उसने अपने पिता को फिर उलाहना दिया।

"इस रास्ते मुझे क्या होगा ?"

"तुझे क्या होगा ? किन्तु एक की जगह दो रास्ते पकडना अच्छा है, इस रास्ते मैं कभी गया नहीं इसलिए मुझे जाकर देखना है। हम भम्भरिये पर मिल जायंगे।"

"बापू ! सचमुच मुझे साथ ले जाने में आप डरते तो नहीं ?"

"घोवा बापा की प्रसूति कभी डरी है ?" ऐसा कह उसने सामन्त को हृदय से लगाया, कोई विलक्षण लहर उसके हृदय में उठी और उसकी आखें निमीलित हुईं। घोघागड दो दिन पहले पहुंचने के लिए वह इस अनजान रास्ते को पकडना चाहता था किन्तु समय की बात है, यह रत्न-जैसा बेटा फिर से देखने को न मिले तो।

किन्तु सामन्त के हृदय में बाल्यकालीन अविचारिता जरूर थी।

"हे बापू ! इस तरह मुझसे पहले घोघागड पहुचना चाहते हैं आप ? मगर देखिये मैं पहले पहुचूंगा।"

"तू मुझसे सवाया न होगा तो होगा कौन ?" सज्जन ने कहा।

सामन्त ने पिता की आखों में पानी देखा "बापू यह क्या ?"

कुछ नहीं, कुछ नहीं, यह तो रेती की चमक के कारण है।"

चार घडी सबने आराम किया और सज्जन ने दो ऊंटनियों पर पानी और भोजन रखा, फिर एक बार और सामन्त को हृदय से लगाया। एक ऊंटनी पर खुद सवार हुआ। दूसरी पर उसका चरवाहा बैठा और "जय सोमनाथ" की ध्वनि के साथ वे निस्सीम मरुस्थल में आगे बढे।

समुद्र मे जैसे कोई गोता लगाता हो उसी तरह पिता को समुद्र जैसे भयङ्कर मरु मे घुसते हुए सामन्त ने देखा। उसने पिता की हांकने की छटा देखी, उनकी सवारी का ढंग देखा और उनकी उडती हुई काली दाढी की फरफराहट देखी। कैसा उनकी पगडी का मरोड और

कैसी सफ़ाई से वह मरुस्थली का राजा चला जा रहा था। सामन्त अपने पिता की अदृश्य होती हुई आकृति को गर्व से देख रहा था। ऐसे बाप का बेटा होने मे सचमुच सौभाग्य था। और दस दिन में—पन्द्रह में—बहुत-से-बहुत बारह दिन में दादा, काकाओ, भाइयों के वृन्द में वह फिर पिता की गोद में बैठने वाला था, और राजस्थान की गढी मे बाप बेटे के बयान से चौहानो की कीर्ति-गाथा अलङ्कृत होने वाली थी।

चार ऊंटनियां बाकी बची थीं। वे सब तैयार हो गईं। पिता जिस रास्ते गये थे उस ओर सामन्त ने एक बार फिर नजर डाली और पिता के पुनर्दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा को दबाकर ऊंटनी पर सवार होकर उसने अपना रास्ता लिया।

सज्जन चौहान जिस ऊंटनी पर बैठे थे उसका नाम पदमडी था। सारे सोरठ मे उसकी जोडी न थी। वह इशारे समझती थी और पवन के वेग से उडती थी। सज्जन ने उसके साथ कभी से ही मित्रता कर ली थी। वह उसे पदमडी बहू कहकर पुकारता और पदमडी बहू होठ की स्नेहपूर्ण फरफराहट से जवाब देती थी।

"बाबा सोमनाथ और घोघा बापा दोनों की लाज तेरे हाथ है पदमडी बहू!" पदमडी ने सिर घुमाकर संकेत किया कि यह बात मेरे ध्यान में है और साथ-ही-साथ उसने अपनी चाल बढाई।

"पदमडी बहू! जल्दी जल्दी चल। घोघा बापा के घर की बहुएं तेरा मोतियों से स्वागत करेंगी।"

पदमडी ने फरफराहट के साथ अपनी चाल बढा दी। मोतियो से बधाई लेने के लिए वह अधीर हो गई थी यह स्पष्ट मालूम होता था।

सांझ हुई तब एक टेकडी दिखाई दी। उस पर कुछ छोटे पेड़ थे और एक ताड का वृक्ष भी था। पास ही एक टूटे हुए मन्दिर पर ध्वजा लहरा रही थी। सज्जन ने हर्ष के साथ हुंकार किया, "विश्राम आया, जीती रह मेरी पदमडी बहू!"

थोडी देर मे दोनो ऊंटनियां टेकडो पर चढ गई। वहां दो तीन झोपडियां थी और खटिया डालकर चार-पांच चरवाहे बात-चीत कर रहे थे। चार ऊंटनियां सिर ऊंचा कर वृक्ष-शिखर पर लगे हुए पत्ता को चबा रही थी, उन्होंने अपनी जात के नये आगन्तुको को देखा और ऊट ही अपने कण्ठ से निकाल सके, ऐसे स्वर से, उनका स्वागत किया।

सूर्य अस्तमित हुआ और पल-पल मे धुंधलाती हुई सांझ व पश्चिम दिशा का प्रकाश चारो ओर फैली हुई रेती को लाल रंग से रंगित कर रहा था। ऐसी निर्जनता मे अकेला खडा हुआ ताड का वृक्ष भोले शङ्कर की कृपा का एक-मात्र चिन्ह दीख पडता था। सज्जन ने ऊटनी को विठाया और वहां वैठे हुए चरवाहो को बुलाया।

"भाई रे! कुछ खाने-पीने को है क्या?"

"बापू! बाजरे के टिक्कड हैं और यहां तालाव और कुआं, जल का बडा आनन्द है।" सज्जन को वक्त खराब करना पसन्द न था, उसने अपनी ऊंटनिओ की जाच की और उन्हे पानी पिलाने का काम अपने चरवाहे सौनिया के सुपुर्द किया। वारह घण्टे की मजिल पार की थी तथापि पदमडी तो ताजा थी किन्तु दूसरी ऊंटनी थकी नजर आती थी। सज्जन ने उसकी पीठ ठोकी, उसे पुकारकर उसकी जाच की, किन्तु उसमे कुछ तेज हो ऐसा प्रतीत न हुआ। उसने अपना सिर घुमाया और दूसरे चरवाहो की ओर देखा। "आप लोगों को कहां जाना है?" उसने पूछा।

"बापू! हम तो कल सुबह रुलबद की ओर जायंगे।"

"तो मुझे अपनी एक ऊंटनी को दे दो, और मेरी इस ऊंटनी को अपने पास रखो।"

"नही भाई! आपको कहां जाना है बापू?"

"मुझे? मुझे अभी मरुभूमि की ओर जाना है।"

"इसी घडी? मरुभूमि मे क्या जाया जा सकता है?"

"तो आप कहां से आये हो?"

"बापा ! हमें तो इस रणथम्भी माता की मिन्नत थी, हम उसे उतारने आये थे।"

सज्जन हंसा और बोला "मेरी कठिनाई कुछ ऐसी है कि मुझे अभी ही यहां से जाना होगा।"

"बापू ! इस रणथम्भी माता की आन है इस रास्ते से गया हुआ फिर पीछे नहीं लौटा। लोग कहते हैं कि तीन सौ योजन तक झाड-पानी कुछ भी नही है।"

"फिकर न करो मुझे अपनी एक ऊंटनी दे दो बस।"

"नहीं बापा ये तो हमारी वरू ऊंटनियां है, ये नहीं दी जायंगी।"

"तो फिर मैं तुम्हारे कहे बग़ैर ले जाऊंगा," सज्जन ने तलवार पर हाथ रखकर कहा, "सौनिया ! खा ले, मैं नहाकर पदमडी बहू को नहला कर आता हूं फिर तू अपनी ऊंटनी को नहला लाना।

"सुवह नहलाऊंगा बापा।"

"अरे क्या पागल हुआ है ? अभी चन्द्रमा उगा कि हम रवाना हुए।"

"परन्तु, बापा, रात को ही—और वह भी इन रणथम्भी माता का उल्लंघन करके", घबराकर सोनिया ने कहा।

"घबराता क्यों है ? सोमनाथ महाराज की आज्ञा है। जा, जीम ले", ऐसा कहता हुआ पदमडी को ले सज्जन वहां से तालाब पर गया।

सोनिया दूसरे गडरिए की ओर फिरा और पूछा, "यहां से आगे जाने पर क्या आयगा ?"

"कुछ नही। तेरे बापू तो पागल है।" एक वृद्ध ने कहा, "किसी को भी इस रास्ते जाते सुना ही नहीं।"

"अरे मनुष्य तो क्या—किसी पची को उडता भी नहीं देखा।"

"चलो रोटी तो खा लें" यों कहकर सोनिया अपनी रोटी ले आया और सबको बांटने लगा। रणथम्भी माता को लांघकर जाने वाले इस मूर्ख के भविष्य की कल्पना उनकी आंखो के सामने घूम रही थी अतएव सब चरवाहे चुप हो गए थे। सोनिया ने जैसे-तैसे बात-

चीत की। उन लोगो ने जैसे-तैसे जवाब दिया और बारम्बार आगे न जाने की चेतावनी देने लगे।

"चौहान वीर को इन किसी की परवाह नहीं थी। उसे तो भगवान् सोमनाथ का सन्देश घोघावापा को सुनाना ही था। उसने पदमडी को मालिश कर नहलाया, खुद नहाया, कुंए से पानी निकालकर पाखाल भरी, रणथम्भी माता के चरणों की वन्दना की और सब चरवाहे जहां बैठे थे वहां जा पहुंचा। पदमडी गरीब गाय सरीखी उसके पीछे-पीछे आई। उस स्नेहमय पुचकार करने वाले मालिक की वह गुलाम बन गई थी।

सोनिया ने मूक वदन से पाथेय निकाल कर सामने रखा और सज्जन ने खाना शुरू किया।

"सोनिया, वे लोग ऊंटनी देते है कि नही ?"

सोनिया तो एकदम फीका पड गया था, बोला "बापा वे तो इन्कार करते है।"

"तो फिर अपनी ऊंटनी खोल ले।"

"बापा! अभी क्या चला जायगा, इस रणथम्भी माता को लांघ कर ?"

"तू तो घबरा गया। मै तेरे साथ हूं तो।"

"बापा! माता का कोप होगा तो फिर कौन सम्हालेगा।"

"मुझे मालूम है, उन पर मां की कृपा होगी।"

"बापा! मगर अभी नही", सोनिया ज़िद पर चढ़ा।

"अभी ही चलना पडेगा" सज्जन ने हुक्म दिया, "जा, अपनी ऊंटनी को नहला ला, अभी चांद उग जायगा।"

सोनिया चुप खडा रहा।

"जाता है कि नहीं ?" सज्जन ने आंखें निकाली और एक तमाचा मारने खडा हुआ। अतएव सोनिया ने मुंह चढा लिया और धीरे-धीरे अपनी ऊटनी तालाब पर ले गया।

सज्जन ने भोजन किया और अपनी ऊंटनी तैयार की, रोटी साथ बांधी और देखा कि काफी पानी साथ मे है या नही। इतने में सोनिया ऊंटनी ले आया।

"दोस्तो!" सज्जन ने चरवाहों से कहा "मेरी ऊंटनी और दो टके लेकर ऊंटनी देते हो क्या?"

"नहीं" एक ने निर्लज्जता से कहा।

मेरी ऊटनी और दो टके"—दूसरे से पूछने गया।

"चांदी के टके—?"

"हां चांदी के।"

"अरे क्यों रे भद्रबन्धु! सात पीढो की ऊंटनी को मारने के लिए तैयार हुआ है?" वृद्ध चरवाहे ने तेजी से कहा।

"नहीं, काका! मुझे अपनी ऊंटनी नही देनी है।"

"जैसी मरज़ी" कहकर सज्जन सोनिये की ओर घूमा "चल सोनिया हम चलते होवे।"

"बापा—"

"बस जल्दी कर" गुस्से से सज्जन ने कहा।

कार्तिक द्वितीया का चन्द्रमा उगा और किरणों का विस्तार रमणीय हुआ। पवन भी बहने लगा, और रणथम्भी माता का अकेला ताड़ निर्मल आकाश के प्रकाशमय पट पर सरस चित्र बन गया। सज्जन पद्मडी पर सवार हुआ और सोनिया शनैः-शनैः अपनी ऊंटनी पर बैठा। वहां से सरकने की उसकी ज़रा भी वृत्ति न थी।

"बापा जल्दी लौटना", एक जवान चरवाहा बोला।

"जय सोमनाथ" कहकर सज्जन ने अपनी ऊंटनी हांकी।

चन्द्र का प्रकाश मरु-भूमि को उज्ज्वलित कर रहा था, मन्द पवन और कार्तिक की ठंड आल्हादिक थे। पद्मडी भी मग्न थी और सज्जन को प्रतीत हुआ कि पौ फटने से पहले तो कितने ही योजन मैं पार कर जाऊंगा। परन्तु चरवाहे का कथन मानो सत्य ही हो इस तरह

दूसरी ऊंटनी पर सोनिया थर-थर कांपता हुआ बैठा था। इस रास्ते मे वह कभी न आया था और रणथम्भी माता को उलांघ कर रवाना हुए इस कारण कोप अवश्य होगा इसका उसे निश्चय था। मानो उसकी सब बात उसने सुन ली हो इस तरह उसकी ऊंटनी भी धीमे क़दमों से चल रही थी।

"सोनिया जल्दी कर" सज्जन बारम्बार आवाज देता, किन्तु सोनिया ने तो उसका जवाब देना भी छोड़ दिया।

एक बार सज्जन को गुस्सा आ गया, उसने पदमड़ी को पीछे मोड़ा और पिछड़ी हुई ऊटनी को दो-चार सोटियां लगा दीं। मानो सोनिया-जैसी वृत्ति ऊंटनी की भी बन गई थी इस तरह वह भी ज़िद कर बैठ गई।

"उतर, सोनिया देख क्या रहा है?" इतना कहकर, पदमड़ी को बिठा सज्जन नीचे उतर कर दूसरी ऊटनी को फटकारने लगा। बड़ी मिन्नत से वह फिर खड़ी हुई। सज्जन पदमड़ी पर बैठा और दूसरी ऊंटनी को जल्दी चलने पर उत्तेजित करने लगा।

सज्जन समझ गया कि वह ज़िद ऊंटनी की न थी किन्तु सोनिया की ही थी। ऊटनी सिर्फ़ मालिक की अनकही आज्ञा पूरी कर रही थी।

"सोनिया! तू पदमड़ी पर बैठ और मैं तेरी ऊंटनी पर बैठता हूं; देखूं वह कैसे नहीं चलती?"

"नहीं नहीं, बापू यह चली" ऐसा कहकर सोनिया ने ऊंटनी को तेज़ी से दौड़ाया। सज्जन पीछे रह गया, किन्तु थोड़ी देर में उसने उसे पकड़ लिया। सोनिया की ऊंटनी तेज हो गई थी, इसलिए सज्जन आगे हो कर चलने लगा। तुरन्त ही सोनिया की ऊंटनी धीमी हो गई।

"चल, जल्दी चल" उसने पीछे देखकर कहा। परन्तु ऊंटनी तो टेढ़ी होकर खड़ी थी। सज्जन का मिज़ाज काबू मे न रहा। वह पीछे गया और उसने सोनिया को ही दो-चार डण्डे जमाए।

"हरामख़ोर! तुझे ही नहीं आना है।"

"नहीं बापा ! नही बापा !" कहकर सोनिया ने ऊंटनी को ललकारा। ऊंटनी कूदकर खड़ी हो गई, एकदम पीछे फिरकर चारों पैरों से उछलती हुई रणथम्भी माता की ओर दौड़ने लगी। उस समय उसकी चाल ऐसी थी कि पदमडी को भी थका दे।

दूर जाने पर सोनिया और उसकी ऊंटनी एक छोटे उड़ते हुए धब्बे के समान मालूम होने लगे, और सज्जन अपनी भौंहो को मिलाकर उस धब्बे को देखता रहा। पीछा कर उसे शिक्षा देने का मन तो बहुत हुआ, परन्तु उसने उसे रोका।

"पदमडी बहू ! बेटी! शङ्कर बापा का काम अब अपने ही सुपुर्द है।"

पांचवां प्रकरण

गज़नी का अमीर

: १ :

उस रात को कृष्ण पक्ष की तीज चौथ का चांद रण के विशाल विस्तार पर आह्लादक प्रकाश डाल रहा था। रेती भी समुद्र की लहरों के समान चमक रही थी, शीतल पवन बह रही थी और पदमडी बहू के घुंघरू चमक रहे थे और सज्जन चौहान का हृदय उनकी ठुमकी के साथ नाचता था। उसे चौहानों की दुर्जयता में तनिक भी अविश्वास न था, घोघा बापा के पुत्रों ने कई एक रण खेले थे, तो यह तो एक म्लेच्छ—इसकी क्या मजाल?

सज्जन ऊटनी को उत्तर दिशा में—जहां ध्रुव के आस-पास प्रकाश होने लगा था उसी ओर—हांकता जा रहा था। रूपहली रात की घड़ियां सरकने लगीं, पदमडी की चाल धीमी हुई और उसने भी चलती हुई ऊटनी पर थोडी निद्रा ले ली। मध्य रात्रि हुई, विभावरी अस्त होने आई और उषःकालीन पवन की लहरें चलने लगीं। सज्जन ने हुङ्कार किया, रास हाथ में ली और समझकर पदमडी बहू वेग से रास्ता काटने लगी।

यह रास्ता जैसा चरवाहों ने कहा था वैसा अत्यन्त निराशाजनक न था। जिस किसी स्थल पर टेकडी या वृक्ष आता वहीं सज्जन विश्राम करता; स्वयं वह खाता-पीता और पदमडी को खिलाता और पानी पिलाता उसे ऐसा मालूम हुआ कि यह रास्ता ठीक है, रण में होकर सीधे आने वाले लुटेरों की जो बातें उसने सुनी थीं वे झूठी न थीं। इसका भी उसे विश्वास होने लगा।

दूसरा और तीसरा दिन अच्छा बीता। पदमडी को रास्ता ढूंढ निकालने की अद्भुत दृष्टि थी और थोड़ी देर मे विश्राम लेने का स्थान आया ही करता, जहां चारा-पानी दोनों मिल जाते थे। चौथे दिन दोपहर को ऐसा मालूम होने लगा कि पदमडी थक गई। सूर्य का ताप और प्रखर होता गया, रेतीले बवंडर चारो ओर आने लगे, राह में छांह का नाम-निशान न था, घडी-पर-घडी बीत गई पर कोई पंछी भी उडता न दिखाई दिया।

चारो ओर रेत मे सूर्य का तेज चमकता और सज्जन की आंखों को चकाचौंध करता, उसकी देह पर स्वेद की धार बहने लगी। भट्टी की हवा जैसी लू चलने लगी और उसके हृदय मे अनेक संशय उठने लगे कि क्या यह रास्ता सीधा है, इस रास्ते आने मे मैंने मूर्खता तो नही की, रास्ते मे विश्राम अथवा पानी न मिले तो क्या होगा? परन्तु महादेव जी की आज्ञा पालन करने वह आया था। चौहानो को महादेव जी का सदा इष्ट था, आते हुए म्लेच्छ को अटकाने ही वह जा रहा था। उसमे वह क्योंकर पीछे हटने लगा। वह बोला "मेरा भोला देव विराजमान है तो भय किसका पदमडी बहू?"

परन्तु आज पदमडी बेचैन थी, और उसकी चाल मे पहले-जैसी स्फूर्ति न थी।

"पदमडी! देख! तू हार खा रही है" सज्जन ने उससे कहा। पदमडी ने फुरफुराहट की, किन्तु उसमें पहले जितना उत्साह न था। सज्जन ने उसे बिठाकर पानी पिलाया और उसके गले लगकर अपनी देह से उसकी आंखो पर सूरज अस्त होने तक छांह की। शाम पडने पर पदमडी कुछ ताज़ी हुई और सज्जन ने पुनः प्रयाण शुरू किया। उस समय ठंडा पवन चलने लगा और उसका जितना उत्साह था उतना ही बढ गया। तथापि रात अंधेरी होने के कारण पदमडी अधिक मंज़िल पार न कर सकी। कुछ देर बाद जब अच्छी तरह चन्द्रोदय हुआ तब कुछ रास्ता कटा।

: २ :

पांचवें दिन सूर्य निकलते ही गरम हवा चलने लगी और दिन चढा तब तो वह आंधी में बदल गई। रेत के भवर, जो सूर्य के तेज में अग्नि-कणों के स्तम्भ जैसे लगते थे—चारों ओर उडने लगे और सज्जन की तथा पदमडी की आंखें खुली न रह सकी। दोपहर हुई तब तो चारों ओर जलाती, आंखों मे घुसती, रेत उडने लगी और आगे बढना असंभव हो गया। सज्जन ने पदमडी को बैठाया, उसके गले लगकर उसकी आंखें अपने शरीर से ढकीं और उसके सिर से अपनी आंखे दबाकर मुश्किल से वह कठोर दोपहर निकाली। स्नेहालु पदमडी छोटी बकरी के समान सज्जन की बांहों में सिर रखकर पडी रही।

दिन ढलने लगा और दिवस के अवसान का समय समीप आया। गरम हवा बन्द हुई। सज्जन ने अपनी ऊंटनी जोती, लेकिन उसके बहादुर दिल मे डर बैठ गया था। इस तरह यदि तीन दिन और बीते तो क्या हालत होगी? उसका हिसाब भी बराबर नही बैठता था, कारण यदि वह रास्ता ठीक हो तो दो तीन दिनमें विश्राम-स्थान आना चाहिए, किन्तु वे नहीं आये। मैं रास्ता भूला? इस रेतीले प्रदेश मे राह भूले हुए लोग प्यास और धूप से मर जाते है—कहीं उसकी वैसी ही दशा न हो। रात को पदमडी लडखडाने लगी और सज्जन भी थक गया। वह पदमडी के सहारे सो गया। एकदम पदमडी की घबराहट के कारण वह चोंक उठा। पौ फटने लगी, ऊंटनी ने आंखें खोलीं और वह नकसोडे फुलाकर कूदने लगी।

"क्या है, क्या है पदमडी बहू, तू क्या पागल हो गई?" पदमडी की भाषा वह समझा, वह तुरन्त रवाना होना चाहती थी। सज्जन एकदम उस पर सवार हुआ और उसे उत्तर दिशा की ओर प्रेरित करने लगा; किन्तु वह ऊंटनी एक से दो न हुई। न तो उसने सज्जन के स्नेह को ही माना और न उसके गुस्से की ही परवाह की। उसने उत्तर की ओर

जाने से साफ़ इन्कार कर दिया। वह जब समझाते-समझाते थक गया, तब उसने उसे एक आध सोटी भी लगाई। उत्तर में पदमडी ने वेदना-पूर्ण निनाद किया, और उसकी प्रेरणा की परवाह न करके उसने मुंह फेरा और पूर्व दिशा की ओर जाने लगी। आख़िरकार सज्जन की समझ में आया कि पदमडी की तीव्र वृत्ति उत्तर दिशा में वर्तमान किसी भय से उसे दूर रखने की प्रेरणा कर रही थी।

"भोलानाथ! जो तू करे सो सही" सज्जन बडबडाने लगा और लडके को साथ नही लाया इस अपनी होशियारी के आनन्द का अनुभव करने के सिवाय किसी आनन्द का अनुभव न कर सका। दो तीन घड़ी पदमडी जब वेग के साथ पूर्व की ओर भागती रही तब कही उसे उसके विचित्र व्यवहार का रहस्य समझ मे आया। उसको अपने पीछे उत्तर और पश्चिम की ओर से रेती के गोटे उडते दिखाई दिए।

"ओफ़! बाप रे! जीती रह पदमडी बहू, तूने तो मुझे जिन्दा बचाया।" इतना कहकर उसने पदमडी की पीठ ठोकी और अपना स्नेह दर्शाया।

ज्यों-ज्यो सूर्य ऊपर चढने लगा त्यो-त्यो रेती के गोटे अधिकाधिक ऊंचे उडते दिखाई दिए और पदमडी जान लेकर पूर्व की ओर भागने लगी। सज्जन ने अपने प्राण पदमडी को सौंप दिए, कारण पीछे से आने वाले इस तूफ़ान से बचने का अन्य कोई उपाय न था। प्रभास से रवाना हुए वह बारहवां दिन था तो भी थकी हुई वह ऊंटनी नए बल के साथ भागने लगी। मरुभूमि और उसकी भीषणता से वह अच्छी तरह परिचित थी और इस समय वह अपने और अपने मालिक के प्राण बचाने के लिए भाग रही थी। पीठ पीछे मानो कोई बादल अंधेरा कर रहा हो इस तरह रेत के गोटे उडते-उडते आकाश में छाकर उसकी ओर बढते जा रहे थे।

सज्जन का वीर हृदय भी आशा खो चुका था, पदमडी कितना भागेगी और कहां भागेगी ? आगे निःसीम रेत का ढेर, पीछे यमराज

के समान आगे बढती हुई प्राणहर आंधी—दोनो के बीच मृत्यु निश्चित प्रतीत होने लगी। सूर्य मध्याह्न मे आया, सामने चमकता हुआ रेत आंखो को अन्धा कर रहा था, पवन दाहक होने लगी तथापि खाने-पीने और विश्राम की अपेक्षा न करती हुई जातिवान पदमडी चातुर्मास्य के नीर के समान आगे बढती गई।

फिर आंधी आगे बढती दिखाई पडी, एक बार तो रेत के बडे बवण्डर में फंसती हुई पदमडी दक्षिण की ओर भागी परन्तु वहां भी मृत्यु सामने उपस्थित होती हुई दिखाई दी। यकायक चारो ओर पडे हुए रेत मे सजीवता समा गई, वह उडकर गोल गोल चक्कर खाने लगा और स्तम्भाकार हो आकाश को स्पर्श करने लगा। पदमडी झुंझला कर बैठ गई, सज्जन उसके गले से लिपट गया और उसके और अपने आख, नाक, कान मे जमी हुई रेत को निकालने लगा। उसे प्रतीत होने लगा कि इस आधी मे से बचने की आशा व्यर्थ थी। मौत के समय सज्जन ने अपनी मृत्यु-सहचरी को स्नेह से पुचकारा। चारों ओर थी रेती, रेती, और रेती वह थी दसो दिशाओ मे उडती, चमकती, दाह करती, सूर्य-मण्डल से टपकते हुए अग्नि-बिन्दुओ की वर्षा के सदृश स्तम्भरूप बनी हुई एक जलती चिता। सज्जन ने सोमनाथ का स्मरण किया और कल्पना मे उपस्थित हुए सामन्त के साथ राम-राम की।

किन्तु वह बवण्डर जिस तरह आया था उसी तरह चला गया। चक्कर खाते हुए सैकत-कणो का स्तम्भ उसके ऊपर घूमकर चला गया। जब उसने आंखे खोली तो गोल फिरता हुआ अग्नि का स्तम्भ वेग से दूर जाता हुआ दिखाई दिया। "पदमडी! बच गए, भोले शम्भु ने कृपा की", इतना कहकर अपनी ऊंटनी के मुंह पर गिरे रेत को उसने हटाया।

उसने अपने पीछे देखा तो मालूम हुआ कि वास्तविक बवंडर तो बहुत दूर था, यह तो आंधी सिर्फ उसे स्वाद चखाने आई थी। पदमडी की दूरदर्शिता के फलस्वरूप वे आधी की मर्यादा से आगे-ही-आगे बढे

जा रहे थे। मृत्यु की दाढ़ों में जाकर लौट आने वाले उसके हताश हृदय में प्रतीति हुई कि अनजाने सीधे मार्ग से घोघागढ जाना शक्य न था, अतएव मूंछ नीची कर सरल रास्ता पकड़ना ही पड़ा।

सूर्यास्त होने लगा, आंधी कुछ कम पड़ने लगी, पद्मडी खड़ी हुई और चारों-ओर सूंघने लगी। कुछ देर बाद अंधेरा होना शुरू हुआ और निर्मल आकाश मे तारे चमकने लगे। पद्मड़ी हर्ष से हिनहिनाने लगी।

"शाबाश, मेरी पद्मडी बहू! शाबाश" यूं कहकर सज्जन ने उसे बिठाया और उसकी साल-सम्हाल करनी शुरू की। रात की हवा चलने लगी और सज्जन पद्मडी को गले लगाकर उसकी कद्र करने लगा। आज पद्मड़ी न होती तो वह ज़िन्दा न बचता।

आज वह खूब थका हुआ था, अतएव उसने पद्मडी के पास हाथ-पैर लम्बे किए और अपनी सारी चिंता भोले शम्भु को सौंपकर थोडी ही देर में वह नीद मे खुर्राटे लेने लगा।

: ३ :

सज्जन ने पहले यह हिसाब लगाया था कि उत्तर दिशा मे सीधे जाने पर घोघागढ आ ही जायगा, परन्तु आंधी के कारण से उसे यह ख़याल न रहा कि वह अब कहां है। ऐसी अगतिक गति के समय अपरिचित मार्ग से आने की मूर्खता उसने क्यों की, सपादलक्ष का मार्ग कौन-सा है, सुर-सागर कहां और झालोर किस ओर?

अपने भोलानाथ में उसकी श्रद्धा अचल थी, अतएव इसका परिणाम शुभ ही होगा इस बात का उसे भरोसा था। घोघाबापा ने कितनी ही बार ऐसे संकट पार किये थे, और पुत्र-परिवार सहित वे अब शांत और गौरवशील अपनी वृद्धावस्था के किनारे, बैठे-बैठे निज पराक्रमों का कीर्ति-गान किया करते, उसी प्रकार वह भी स्वयं किसी दिन घोघागढ मे बैठकर अपने परिवार को इस पद्मडी की कीर्ति-गाथा सुनायगा और उस समय के वीर मान भी न सकेंगे कि ऐसा पराक्रम कोई कर

सकता है। उसने मूंछों पर गर्व से हाथ फेरा, घोघाबापा की युवावस्था के पराक्रमो को जिस प्रकार राजस्थान के चारण गाते थे वैसा ही उसका आज का पराक्रम था।

सामन्त तो झालोर जा पहुंचा होगा, सज्जन के पहुंचने के आठ दिन बाद वह भी घोघागढ आजायगा,और उस पितृ-भक्त पुत्र का हृदय कितना उल्लसित होगा? और सामन्त की माता के पास बैठकर पिता-पुत्र एक दूसरे के स्नेह मे निमग्न हो बार-बार इस प्रसंग की चर्चा करेंगे। और सामन्त की माता भी सच्ची चौहान-वधू है, इससे कम पराक्रम करने पर तो वह खुश भी न होगी।

और घोघाबापा का तो वह लाडला पौत्र था। वे हमेशा कहा करते थे कि सज्जन की आयु में वे ठीक सज्जन जैसे ही दिखाई पडते थे और वह भी स्वयं कहा करता था कि घोघाबापा की आयु मे मैं भी उन जैसा ही दिखूंगा।

यूं सज्जन की विचार-माला चल रही थी और पदमड़ी नज़र में आने वाले रास्ते से रेगिस्तान पार करने लगी। वह सैकत-भूमि अब सौम्य बन गई थी।

आठवें दिन वृक्ष वाली एक टेकड़ी दिखाई दी, सज्जन ने हुंकार किया और पदमडी बिना कहे उस ओर आगे बढी। टेकडी निर्जन थी, किन्तु सद्भाग्य से वहां एक गहरे कुएं में खूब पानी देखकर सज्जन की थकावट दूर हो गई। उसने जल निकाला, स्वयं पिया और पदमडी को पेट भरके पिलाया। कई दिन बाद वह स्वयं आराम से नहाया और अपनी ऊंटनी को नहलाया। पदमडी को कई दिनो बाद हरे पत्ते खाने को मिले। यह सब विधि पूरी हो जाने पर प्रेम पूर्वक एक दूसरे का सहारा ले वृक्ष की छाया में दोनो ने स्वस्थता से निद्रा ली।

आकाश से तारागण ने इस नर एवं पशु की मैत्री पर किरण-पुष्पों की वर्षा की और प्रातःकाल जब सूर्य-नारायण उदय हुए तब सज्जन चौंक कर उठा। मातृ-स्नेह से उसकी रक्षा करती हुई पदमड़ी अपनी

तरह हर्ष प्रकट कर रही थी।

"पद्मडी बहू ! अभी मंज़िल तो काफ़ी पार करनी है।" सज्जन ने पाखाल में ताज़ा पानी भर लिया और पद्मड़ी को ही मार्ग ढूंढ निकालने का काम सौंपकर यात्रा शुरू की।

नवां दिन तो अच्छी तरह पूरा हुआ किन्तु उस रात को सज्जन को यह भान हुआ कि उत्तर की ओर जाने की बजाय वह पश्चिम की ओर जा रहा है और घोघागढ से दूर-ही-दूर होता जा रहा है। उसने ऊंटनी को उत्तर की ओर जाने का संकेत किया किन्तु वह टस-से-मस न हुई और महादेव जी का स्मरण कर सज्जन ने अपना भाग्य उन्हीं को सौंपा। स्वयं हार चुका था इसकी तीव्र भावना तो उसे कभी की हो चुकी थी; अब तो किसी भी प्रकार कोई सीधा मार्ग मिल जाय यही उसकी एक-मात्र इच्छा थी।

मरुस्थल की यात्रा का यह दसवां दिन था, अब तो किसी-किसी स्थान पर विश्राम की टेकडियां आने लगीं, अतएव सीधा रास्ता निकट आता दिखाई दिया, उसे अपने जीवन की अब चिन्ता न थी। गज़नी का अमीर न जाने कहां होगा, घोघाबापा से मुठभेड करना कोई सरल बात न थी। उसने रास्ते में अन्य राजाओं को भी चेतावनी देते हुए जाने की ठानी। भगवान् सोमनाथ से द्वेष करने वाला इस रेतीले मरूस्थल को पार कर किस प्रकार आ सकता था ?

रेगिस्तान में प्रवेश किए ग्यारहवां दिन हुआ, और प्रभास से निकले अट्ठारवां दिन शुरू हुआ तब कहीं रेतीले मैदान में आने वाले वृक्ष दिखाई पडने लगे। उसे भान होने लगा कि वह सपादलक्ष की ओर जा रहा है। इस मार्ग से जाते हुए पद्मडी ने अस्वाभाविक और अकल्पित चीख़ मारी। सज्जन ने ध्यानपूर्वक चारों ओर देखा तो एक के बाद एक तीन छोटे काले बादल आगे बढते नज़र आने लगे। देखते-देखते यह मालूम हुआ कि वे बादल न थे। ऐसा लगा कि काले पक्षियों का बडा झुण्ड था, किन्तु क्षण-भर में ही जब सहस्रों गृद्धों के तीन

झुण्ड भयानक चीखें मारते हुए उसे पार कर पूर्व की ओर चले गए तब तो उसके क्षोभ का पार न रहा। उसके हृदय मे बडा भय बैठ गया। केवल रण-क्षेत्र मे युद्ध के दूसरे दिन इतने गिद्ध उसने उडते देखे थे, अन्यथा इतना बडा गिद्धों का झुण्ड देखने का अवसर उसे कभी नहीं आया था। अवश्य ही किसी स्थान पर रण खेला जा चुका था? क्या गज़नी का अमीर मुलतान पार कर घोघागढ से भी आगे बढ सपादलक्ष के निकट युद्ध कर चुका है? कुछ दूर जाते ही गीदड़ो के व्यूह की चीखों की भयङ्कर गूंज उसके कानों मे पडी और उसे अपशकुन होने लगे।

"पदमडी बहू! प्राण-हर युद्ध चल रहा है।" पदमडी समझ गई। उसने त्वरा गति से जिस ओर गिद्ध गये थे उसी ओर जाना शुरू कर दिया।

: ४ :

कुछ समय बीता और पदमडी ने फिर ऐसी चीख मारी जिसमे भय का अर्थ-सूचक कम्प था। "क्या है, क्या है? पदमडी, घबराती क्यों हो?" सज्जन ने उसे पुचकारा। थोडी ही देर मे सडते हुए मुर्दों-जैसी उग्र दुर्गन्ध सज्जन की नाक मे आई और चीख़ का तात्पर्य उसकी समझ मे आया।

पदमडी एक टेकडी पर चढकर अटक गई और थर-थर कांपने लगी। वहां से कुछ दूर पर टेकडी के नीचे गीदडों की एक बडी टोली जमा थी और वहां से उत्तर से दक्षिण जहां तक दृष्टि जाती थी वहां तक बीच-बीच मे गिद्ध बैठे थे या उड रहे थे। सज्जन को इसका मतलब समझ मे आया और उसे चक्कर आने लगे।

उत्तर क्षितिज से दक्षिण क्षितिज पर्यन्त रेत मे आधे, पूरे ढके हुए सडते हुए मुर्दों की एक सीधी कतार बंध गई थी जो कि इस राह पर जाने वाली किसी सेना द्वारा ही रची जा सकती थी।

पदमडी ने आगे जाने से इन्कार किया अतएव सज्जन नीचे उतरा और उसकी नाथ पकड़कर पैदल चलने लगा। कुछ समीप जाकर

सामने बैठे हुए गिद्धों को उड़ाने का उसने प्रयत्न किया । कुछ धृष्ट तो वहां से सरके भी नहीं और कुछ उड़कर ऊपर चक्कर काटने लगे। वहां पहुंच कर सज्जन को मुर्दों की क़िस्म का अनुमान होने लगा। हाथी, ऊंट, घोड़े और मनुष्यों के शव वहां थे। उसकी कल्पना ठीक निकली, वे युद्ध के अवशेष न थे किन्तु चली जाने वाली किसी महा-सेना के थे, किन्तु इतना अवशेष छोड जाने वाली सेना कितनी बडी हो सकती है इसकी तो वह कल्पना भी न कर सका।

दिल मिचलाने वाली दुर्गन्ध की परवाह न करते हुए बडी कठिनाई के साथ हिम्मत बांध, जिस दिशा की ओर वह मार्ग जाता था, उसी दिशा में वह भी जाने लगा। इतना लश्कर किसका होगा, न सपाद-लक्ष का हो सकता है न झालोर का और न चित्तौड का ही, क्या यह सेना उस गज़नी के अमीर की है?

इस हृदय-द्रावक मार्ग को बडी देर तक देखने में असमर्थ सज्जन वहां से आगे बढा, किन्तु जाने की दिशा उसने वही रखी। पद्मडी का चित्त तो वहां से दूर भाग जाने में संलग्न था। सांझ के समय दूर एक गांव दिखाई पडा। इस भयंकर यात्रा का अन्त आया ऐसा जानकर सज्जन उस ओर बढा। वहां बीस-पच्चीस वृक्षों की छांह के नीचे एक छोटा-सा गांव बसा हुआ नज़र आया। किसी भी स्थान पर निश्चिन्त हो विश्राम लेने की उत्सुकता से वह उस गांव के पास आया, किन्तु उसमें किसी जीव या जानवर का निशान भी न था। सब दरवाज़े खुले पड़े थे, कितने ही छप्पर गिर चुके थे, मन्दिर टूट-फूट कर खंडहर हो गया था, पेडों की पत्तियां जानवर चबा चुके थे। तालाब मे सिर्फ़ कीचड़ था और चारो ओर अनेक जानवर वहां नहा-कर चले गए थे, ऐसे चिन्ह थे। कुएं में नाम-मात्र जल था। वह विनाशक महासेना इसी रास्ते जाती हुई इस गांव को श्मशान-तुल्य बना गई थी।

निर्भीक सज्जन भी इस निश्चेतन विनाशकता को देख कम्पित

होगया। यन्त्र के समान उससे जितना पानी निकल सका उतना उसने निकाला, स्वयं नहाया, पदमडी को नहलाया, स्वयं खा न सका किन्तु वहां जितने पत्ते थे उन्हे चरने के लिए उसने पदमडी को छोडा। जब रात हुई तब इस रेतीले प्रदेश मे शून्य ग्राम की भीषण निर्जनता ने उसे घबडा दिया। केवल महादेव जी का नाम जिह्वा पर रखकर, भयभीत सज्जन ने सारी रात विताई।

दूसरे दिन प्रातःकाल जिस मार्ग में शव पडे थे उस मार्ग से वह जाने को तैयार हुआ। उसी समय इस सबको छोड किसी दूसरे रास्ते निकल भागने का विचार उसके मन मे आया, किन्तु ऐसी भयानक सेना किसकी हो सकती है यह जान लेने का मोह वह छोड न सका। घोघागढ या सपादलक्ष का क्या हुआ होगा यह तो विचार करने का भी साहस उसमे न था।

: ५ :

सज्जन चार-छः घडी आगे बढा होगा कि सामने उडते हुए रेत के स्तोम मे ऊंटनियां आती हुई नजर आईं। पदमड़ी को पीछे मोड़कर उसने भागने की सोची परन्तु देखते-देखते ही ऊंटनियां समीप आ पहुंचीं और मनुष्यो की पुकार सुनाई दी। सज्जन ने हुंकार के साथ जवाब दिया और पदमडीं को रोका। ऊंटनियां सात थी, पांच पर बड़ी और विकराल आंख और दाढी वाले और अपरिचित शस्त्र एवं चर्म के परिधान पहने हुए भयंकर यवन बैठे थे। दो ऊंटनियों पर चरवाहे बैठे थे। उसने कुछ कहा और उन सबो ने सज्जन को घेर लिया।

नायक की आज्ञा से एक चरवाहे ने सज्जन से पूछा "यह सब मार्ग तुझे परिचित हैं?"

सज्जन को चरवाहे की बोली तुच्छता को लिये हुए प्रतीत हुई तथापि उस अपमान को निगलकर उसने जवाब दिया "हां, मगर तुम कौन हो?"

चरवाहे ने सज्जन का उत्तर अपने नेता से कहा। वह खूब हंसा।

उसने चरवाहे से जवाब दिलवाया "हम कौन हैं, यह तो हम अभी बतलायेंगे, किन्तु गुजरात जाने का सीधा रास्ता कौन-सा है यह तो बतलाओ ?"

"किसे जाना है ?" सज्जन ने पूछा।

"हमें।"

सज्जन को एक प्रेरणा हुई। इस म्लेच्छ की सेना को गुजरात जाना था—सोमनाथ को तोडने—? इसीलिए महादेव जी उसे उस रास्ते से लाये थे। कारण वह अब समझा और हंसा। गजनी के म्लेच्छ को जिन्दा मार डालने की शंकर की आज्ञा को सिर चढाने का अहोभाग्य और कहां से मिलता ?

"चलो, मैं लिये चलता हूं।"

"तू ठीक जानता है ?"

"हां, मैं वहीं से चला आ रहा हूं।"

"कितने दिनों की मंजिल है ?"

"बारह, पन्द्रह दिन की" सज्जन ने कहा।

चरवाहे ने इस उत्तर का अनुवाद नायक को कह सुनाया, और नायक के हर्ष का पार न रहा।

"चल, हमारे साथ", चरवाहे ने नायक की आज्ञा सज्जन को कह सुनाई।

"तैयार हूं" सज्जन ने कहा और उनके साथ हो लिया। साथ होने के सिवाय कोई चारा न था।

उसके हृदय में आशा की तरङ्गें उठ रही थीं, कारण उस अकेले के हाथ में सोमनाथ भगवान् के वचन की सिद्धि करने का प्रसङ्ग आ गया था। वह स्वयं कैदी बना पर उसके साथी उसे धोखा देना चाहते थे यह स्पष्ट मालूम होता था। नायक तीव्र दृष्टि से उसकी चौकसी करता था, तथापि उसने पढमडी को पूरा पानी पिलाया और स्वयं जब भोजन के लिए बैठा तब उसने सज्जन को भी बिठाया। थोड़ी देर बाद वह

सज्जन के साथ कुछ सन्मान पूर्वक बात करने लगा। किन्तु जब सज्जन उससे कुछ समाचार पूछने लगता और तो चरवाहा म्लेच्छ नायक से कहता, तो उसका जवाब बात उडाने वाला ही मिलता।

अन्ततः सज्जन ने एक युक्ति सोची। भोजन कर चुकने पर उसने कहा, "आप आगे चलें, मैं अपने काम पर जाता हूं।"

"कहां जाना है?" चरवाहे ने म्लेच्छ से परामर्श करके पूछा।

"ग़ज़नी के सुल्तान के पास।"

सब म्लेच्छ हंस पडे। "उनके पास तुम्हे क्या काम है?"

"यह मैं आपसे कह नहीं सकता, किन्तु मेरे मिलने से उनका रास्ता आसान हो जायगा।

"आप कौन हैं?"

"मैं रेगिस्तान का भूमिया हूं और जाते हुए बटोही को रास्ता दिखाना मेरा काम है।"

जब चरवाहे ने इस उत्तर को यवनो के नायक को समझाया तब यवन लोग बड़ी देर तक आपस में बातचीत करते रहे और बाद में चरवाहे के मार्फत जवाब दिलवाया, "हम तुम्हें सुल्तान महमूद के पास ले जायंगे।"

सज्जन की युक्ति सिद्ध हुई, परन्तु जिस भय की कल्पना उसने की थी वह सत्य हुआ। सुल्तान ने मुलतान, नाडौल, सपादलक्ष पार किये ही होंगे। वहां के राजाओं का क्या हुआ होगा? वे मरे, हारे या रास्ता दे बैठे? घोघागढ उसकी राह में पडा या नहीं इतना ही निश्चित करना रहा, मगर यह सवाल साफ़-साफ़ पूछने की उसकी हिम्मत न पड़ी।

: ६ :

सारे दिन ऊंटनियों को दौडाते हुए वे लोग आगे बढते रहे और बिलकुल अंधेरा हो जाने पर एक विराट् सेना की छावनी उन्हें दिखाई दी। यह केवल छावनी न थी, किन्तु ऐसा महानगर था जो सज्जन ने

कभी न देखा था। वहां अंगीठियो का अस्थिर प्रकाश चमक रहा था। हजारों मशाले इधर-से-उधर फिरती हुई नज़र आती थीं। इस प्रकाश मे जहां तक नज़र जा सकती थी वहां तक छावनी का विस्तार मालूम होता था। असंख्य मनुष्य, हाथी, ऊंट, घोडे और अन्य जानवर वहां पडे हुए थे। दस हजार भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वजाएं फहरा रही थीं और हजारों तम्बुओं की कतारो पर कतारें तनी हुई थीं। मनुष्यो की गिड़गिडाहट, चौकीदारों का हल्ला, शहनाई और नगाड़ो का नाद आपस मे मिलकर एक तुमुल घोष गगन पर्यन्त फैला रहा था। यह देख-सुन सज्जन स्तब्ध हो गया। इतनी बड़ी सेना हो सकती है, यह उसने कभी कल्पना भी न की थी, और दुनिया के दूसरे पार से गज़नी का अमीर इस महासेना को लेकर, इतने राज्यों को पार कर, निर्जन, जलहीन, मरुस्थल के मध्य इतना बडा पड़ाव डालेगा इसका तो उसे स्वप्न में भी भान न था। उसकी हिम्मत और श्रद्धा क्षण-भर के लिए तो लुप्त हो गई किन्तु थोडी ही देर में सोमनाथ की आज्ञा फिर याद आई। देव जिसका घात करना चाहता हो, उसकी रक्षा कौन कर सकता है। राजा रावण जैसे भी नष्ट हो गये तो फिर अमीर किस खेत की मूली है। और क्या मालूम उस जैसे तिनके के हाथ ही प्रभु ने इस महमूद का विनाश निर्धारित किया हो।

जो यवन इस छोटे से काफ़िले का सत्ताधीश था वह किसी उच्च-श्रेणी का सरदार मालूम होता था, कारण ज्यों ही उसकी आवाज होती कि चौकीदार रास्ता दे देते थे। उसे आते देख सब नीचे झुककर अपना दाहिना हाथ अपने भाल पर रखते। सज्जन इस भयानक छावनी मे से जाते हुए चारो ओर देखने लगा। वहां म्लेच्छ थे, पंजाबी थे, राजपूत थे। उसने जो कभी नहीं देखे, ऐसे वहां अनेक यन्त्र भी थे। असंख्य मनुष्य खाने-पीने की कमी के बगैर मौज मे थे।

सज्जन के हृदय मे अकथ्य उच्चाटन हुआ, क्या राजस्थान के वीरो ने सिर झुका दिया। घोघागढ का क्या हुआ, घोघाबापा कहां

होगे ? प्रश्नों का उत्तर न मिलने से उसका चित्त विह्वल हो रहा था।

उस म्लेच्छ नायक ने सज्जन को ऊंटनी से उतरने का आदेश दिया। सज्जन ने तदनुसार किया किन्तु पदमडी से उसका वियोग होगा इस भय से उसने कहा, "इस ऊंटनी जैसी ऊंटनी सारे विश्व में दूसरी नही है, इसके बिना मुझसे मार्ग नही दिखाया जा सकेगा।

"आपकी ऊंटनी आपको वापस मिलेगी" यों चरवाहे ने नायक की इटरन कह सुनाई।

"चलो मेरे साथ" नायक ने सज्जन से कहा, और उसके कथनानुसार वह उसके पीछे हो लिया। दो व्यक्ति उसके पीछे चलने लगे। तीनो पुरुष उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते रहते थे। अगर उसने भागने या तलवार पर हाथ रखने का ज़रा भी इरादा दिखाया तो वहीं का वही उसका सिर धड़ से अलग हो जायगा—इस बात का उसे पूरा निश्चय हो गया था।

जिस ओर वे गये वहां एक विशाल सफ़ेद चर्म का तम्बू लगा था और उसके आस-पास नंगी तलवार वाले सैनिकों की एक क़तार द्वारा एक मेड रच दी गयी थी। इस मेड से घुसने के लिए एक ही प्रवेश था जिसमें सैनिको की पंक्ति के मध्य से होकर जाना पड़ता था। इसी रास्ते से नायक उसे ले गया। वह इतना विशेष प्रसिद्ध था कि उसे देख सब नीचे झुक कर सलाम करते थे। थोडी देर मे वे तम्बू के सामने आ खड़े हुए और वहां पर उपस्थित एक सरदार ने दौड कर उनके भीतर आने की ख़बर की।

भीतर से कुछ जवाब आया जिसे नायक ने बहुमान पूर्वक सलाम के साथ स्वीकृत किया। दो राक्षस सरीखे हब्शियों ने क़नात उठाई और वे तम्बू मे दाखिल हुए।

सज्जन ने अनजाने अपनी आंखें मलीं। आज देखे हुए भयजनक और असंभाव्य दृश्यों में सबसे अद्भुत दृश्य उसकी नज़र में आया। तीस मशालची—लकडी के बडे पीत स्तम्भ के समान निश्चल—चांदी

की छोटी मशालों को ले उस स्थान को प्रकाशित कर रहे थे। दरवाजे मे घुसते ही दोनो ओर दो-दो राक्षसी हब्शी चौड़े अर्धचन्द्राकार खड्ग लेकर काले सङ्गमर्मर के पुतले के समान खड़े थे। मध्य में सुगन्धित तेल की एक बड़ी बत्ती जल रही थी।

वहीं दूसरे सिरे पर बाघ और हरिण इत्यादि जानवरों के चमड़े के ग़लीचे पर एक बड़े तकिये के सहारे लेटा हुआ एक शक्तिशाली मनुष्य अपनी लाल लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेर रहा था। उसकी लाल घनी भ्रुकुटियों के नीचे बड़ी विकराल आंखें इधर-उधर चमक कर घूम रही थीं। उसका भारी बायां हाथ गोद मे रखी हुई एक बड़ी नंगी तलवार की मूठ के साथ खेल रहा था।

उसने चर्म चीवर का विचित्र वेष पहना हुआ था, उसके सिर पर एक अजीब-सी पगड़ी थी जिसमें नीलम झूल रहे थे। इस महापुरुष के दाहिनी ओर एक अधेड़ उम्र का म्लेच्छ बैठा था जिसने अपनी कमर में एक बड़ा कलमदान खोंस रखा था और कान में कलम खोंस रखी थी। उसकी बगल में कोई नीचे ओहदे वाला किन्तु मज़बूत आकृति का योद्धा बैठा था। उसके पास एक जवान सरदार बैठा था, और यह दोनों पुरुष म्लेच्छ नहीं किन्तु राजपूत लगते थे। तकिये के सहारे टिके हुए पुरुष की बाईं ओर म्लेच्छ योद्धा बैठा था जिसका पहनावा उसी सरदार के समान था जो उसे वहां लिवा लाया था।। सज्जन को आते हुए देख बीच में लेटा हुआ महापुरुष सीधा बैठ गया और बादल की गर्जना के समान भयङ्कर स्वर से अपने साथी नायक को सम्बोधित करने लगा, और वह नायक झुकता हुआ नम्रता पूर्वक आगे बढ़ा। सज्जन को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसी नायक का नाम सालार मसूद था।

सज्जन को विश्वास हुआ। यही था वह म्लेच्छ जिसने कन्नौज, कालिञ्जर, नगरकोट और मथुरा को ज़मीदोस्त कर दिया था। वह ग़ज़नी का भीषण अमीर महमूद था जिसने मथुरा के विप्रवरों को ग़ज़नी के बाज़ार में साढ़े तीन रुपये में बेचा था, वही था जिसने इस मरु-

भूमि को पार कर देवाधिदेव भगवान् सोमनाथ के विध्वंस का व्रत लिया था। सज्जन की रग-रग आवेश से कम्पित हो रही थी और यदि सम्भव होता तो वह शार्दूल के समान उछल कर उसके प्राण हरण कर गुरुदेव गङ्ग सर्वज्ञ की आज्ञा का पालन वहीं कर देता।

: ७ :

बीच में बैठे हुए पुरुष के सम्बन्ध मे सज्जन का तर्क शुद्ध था। वह था गज़नी का सुल्तान—यमिनुद्दौला महमूद निज़ामुद्दीन क़ासिम महमूद। चौदह वर्ष तक उसने गज़नी के भयङ्कर वीरो में कीर्ति-सम्पादन किया था। ग़रीब होते हुए उसने धन, सत्ताहीन होते हुए उसने सत्ता, हस्तगत की थी। खुरासान की हुकूमत पाई और देखते-देखते गज़नी की सत्ता भी भाई के पास से हड़प ली। उसने अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति और अतुल शौर्य के द्वारा सल्तनत मिलाई थी। जिस पर वह हाथ मारता वही शरणागत हो जाता था। जो वह चाहता वही उसे मिलता। उसने अपने पिता की राह पर चलकर हिन्दुओं का अटूट धन लूटना शुरू किया था। हारा थका लाहौर तो सरलता से ही शरण हो गया था, पलक मारते मुल्तान गिर गया था। हिन्दू राजा तो उसकी कृपा की याचना करते थे। ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली और सपादलक्ष के संयुक्त सैन्य उसके प्रखर प्रताप के सामने अनेक वार हार चुके थे। धन के सञ्चय के साथ नगरकोट उसके हाथ आया। मूर्ति-भञ्जक की अमर कीर्ति प्राप्त करने का मोह लगा और वह इस्लाम का विजयी शमशेर हुआ। युगों की महिमा के कारण भव्य बने हुए मथुरा के मन्दिरों को उसने भस्मसात कर दिया था। देवों के मुकुट कुण्डल उसके अन्तःपुर की शोभा बढाते थे। भावुक जनता जिन पण्डितों को पूज्य मानती थी वे गज़नी में गुलाम होकर बिके थे। उसके शौर्य की सीमा न थी, उसका हृदय उदार था, उसकी प्रतिभा कवि की थी, उसे कुछ ऐसा काम करना था, कुछ ऐसी रचना रचनी थी कि जिसका तेज कालान्त तक उज्ज्वल रहे। मुस्लिमों मे श्रेष्ठ ख़लीफा उमर ने जैसा

किया वैसा ही उसे भी करना था : इस्लाम का डंका जगत् भर में बजाना था। साथ-ही-साथ ईरानी माता के कलात्मक संस्कारों की तो वह निधि था। उसे कविता का शौक़ था, स्थापना के द्वारा उसे गज़नी का श्रृङ्गार करना था, समृद्धि से उसे अपना सिंहासन देदीप्यमान करना था। वह दूसरे के दिल को खींचना जानता था और उसे वीरता की क़द्र करना मालूम था। समस्त जाति के प्रति उसके हृदय में स्थान था—यदि वह उसका सामना न करे तो। मूर्ति-पूजन का कट्टर द्वेषी होते हुए भी वह मूर्ति-पूजकों का प्रशंसक था। जिन राजपूतों का वह संहार करता उनके अटल शौर्य को देख वह मुग्ध हो जाता था। उसने अपने अद्वितीय नेतृत्व के बल से महान् सेना का व्यूह खड़ा किया था जिसमें काकेशस से लगाकर राजपूताना तक के शमशेर बहादुरों का समावेश था। वह स्वयं भी प्रचण्ड शस्त्र धारण करता और प्रवीण तलवार-बाजों के समान तलवार चला सकता था। इसी दुर्धर्ष शस्त्र को लेकर आज वह मूर्ति-पूजकों के परम इष्ट महादेव जो मरुस्थल के उस पार विराजमान थे उन्हें तोड़ने और उनके अमित धन-सञ्चय को लूटने के लिए आया था। अपने छोटे-छोटे राज्यों की स्वल्प महत्ता में सदियों से सुरक्षित गर्व के अधिष्ठाता राजपूत न तो उसकी बुद्धि को ही समझ सकते थे और न उसके प्राबल्य को रोक सकते थे। वे थे सरल और अटल, हठी और शूर किन्तु स्वाभिमान में मदान्ध हो वे प्रतिपक्षी के बल को परखने में अशक्त थे। रण के रसिक होते हुए भी एकता के साथ युद्ध करने में थे कातर और वे थे एक देश की लगन अथवा एक धर्म की भावना की अपेक्षा संकुचित सत्तास्वाद की शिक्षा देने में सविशेष तत्पर।

: ८ :

सालार मसूद अमीर के क़दमों में बैठकर कुछ निवेदन कर रहा था। उसका कथन समाप्त होने पर सब उपस्थित सरदार आपस में चर्चा करने लगे, उसमें अमीर की गर्जना बीच-बीच में सबसे स्पष्ट

सुनाई पड़ती थी।

अन्त मे अमीर की दाहिनी ओर बैठा हुआ कलमदान वाला सरदार और उसके पास बैठा हुआ राजपूत सरदार उसकी ओर आगे बढे। अपने निकट राजपूत को आते देख सज्जन के रोम-रोम मे आग लग गई और उसके हाथ उस राजपूत का गला घोटने के लिए तड़फड़ाने लगे। यदि देव की आज्ञा पालन करने का सरल उपाय उसे स्पष्ट न मालूम होता तो जीवन की परवाह न करते हुए वह इस देश-द्रोही राजपूत नरपिशाच के तो प्राण अवश्य ही ले लेता। निस्सन्देह वह राजपूत था, अमीर की गर्जना से उसका नाम सेवन्दराय जैसा मालूम हुआ।

सेवन्दराय हंसता-हंसता आया तो सही, किन्तु वह तलवार की धार के समान तीक्ष्ण आंखों से सज्जन की नाप तोल कर रहा था। उसके पीछे धीरे-धीरे कलमदान वाला भी आया।

"आप कौन से गांव के हैं" सेवन्दराय ने पूछा।

"मैं", सज्जन ने जवाब दिया "भम्भरिया का हूं।"

"कहां मिले ?"

"सपादलक्ष और घोघागढ के बीच मे"।

सेवन्दराय और कलमदान वाला जिसका नाम अल-उत्बी था दोनों ने सज्जन को समझ मे न आने वाली भाषा में थोड़ी बात-चीत की। सुल्तान ने दूर बैठे हुए ही कुछ सवाल पूछा जिसका उत्तर अल-उत्बी ने दिया।

"कहां से आये हो ?" सेवन्दराय ने पूछा।

"अनहिलवाड पाटन से।"

"कितने दिन पहले रवाना हुए थे ?"

"पन्द्रह दिन हुए।"

"क्यो ?" सेवन्दराय ने विस्मय से पूछा।

"......हां"

"कौन से रास्ते से ?"

"रेतीले रास्ते से, जो मुझे मालूम है।"

"रास्ते में कौन-सा गढ पडता है ?"

"गढ होकर जाया जाय तो दो महीने लगेंगे, मेरा रास्ता तो आबू पर्वत से सीधे अनहिलवाड।"

"रास्ते मे विश्राम है ?"

"नहीं तो मैं अकेला यहां-कैसे आया।"

"अभी हम लोग कहां हैं?"

"आप लोग सोधे रास्ते से बहुत दूर हैं, राज-मार्ग छोडकर आप यहां क्यो आये मेरी समझ में नही आया।"

"राज-मार्ग यहां से कितनी दूर है ?"

"इस सारे लश्कर को जाते तो आठ दस दिन सहज लग जायंगे और मेवाड झालोर, गुजरात और मालव के राजा लोग सामने मिलेंगे वह अलग।"

"कैसे मालूम ?"

"मुझे सब मालूम है, सवा लाख राजपूत तुम्हारा रास्ता रोके खडे हैं।"

"तुम जिस रास्ते आये वह रास्ता हमे बतलाओगे ?" सेवन्दराय ने पूछा।

"हां, यदि मेरी ऊंटनी मुझे मिल जाय तो।"

"कहां है ?"

"वह ले गया", यह कह सज्जन ने मसूद की ओर निर्देश किया। बाद मे सेवन्दराय और अल-उत्बी सुल्तान के पास गये और सब उपस्थित सरदारो ने धीरे-धीरे कितनी ही देर तक बातचीत की।

: ६ :

दूसरे दिन सालार मसूद ने सज्जन को अपने तम्बू मे नज़र कैद रखा। तीसरे दिन पौ फटने से पहले गज़नी का सुल्तान महमूद सीधे

रास्ते पर जमी हुई राजपूत सेना से व्यर्थ उलझने की अपेक्षा रेगिस्तान के मार्ग को ढूंढ निकालने की उत्सुकता से पूर्व दिशा में प्रयाण के सङ्कल्प को छोड़ पश्चिम की ओर पदमडो के पीछे-पीछे कूच करने लगा। और घोघा चौहान का पौत्र देव की आज्ञा पालन करने में अपने आप को भाग्यशाली मानता, जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते से आंधी से मिलने के लिए तरसता, पदमडो बहू को मधुर गीतों से प्रोत्साहित करता, आगे-आगे राह बताने लगा।

छठा प्रकरण

सामन्त का मित्र

: १ :

चौला के स्मरणों की प्रेरणा से प्रफुल्ल सामन्त ने पिता को हरा देने का निश्चय कभी से कर लिया था, और उसे परिपूर्ण करने मे ज़रा भी बाधा नहीं होगी यह उसके बाल-हृदय में विश्वास था। ऊँटनियो के घुंघरुओं की झंकार में आबू और चन्द्रावती को एक ओर छोड़ श्रीमाल मे थोडी ही देर ठहरता हुआ वह त्वरा के साथ परमारों की राजधानी झालोर जा पहुँचा। झालोर के वाक्पतिराज बोघाबापा के सम्बन्धी होते थे।

सामन्त जब झालोर की तलहटी के पास पहुँचा तो उसने ऊँटनियों का एक बड़ा क़ाफिला पड़ा हुआ देखा, और वह ज्योंही अपनी ऊँटनी से उतरा त्योंही सामने से एक शस्त्र सज्जित स्वरूपवान युवक आता हुआ दिखाई दिया। सामन्त को उसकी मुख-मुद्रा परिचित मालूम हुई, कहां और कब उसे देखा था यह तो उसे तत्काल याद न आया।

"कहां से आये हो" आने वाले पुरुष ने मधुर स्वर से पूछा।

सामन्त की स्मरण शक्ति जागृत हुई। सोमनाथ के मन्दिर में जब चौला नृत्य कर रही थी तब वह पुरुष वहां उपस्थित था। सामन्त ने उन्मनस्क हो उत्तर दिया "जहां से आप"।

"पाटण से ?" नवागन्तुक ने आश्चर्य से पूछा।

"नहीं, प्रभास से, आप गङ्ग सर्वज्ञ और पाटण के भीमदेव के पास बैठे थे ?"

"आप भी वहां थे ?"

"हां," चञ्चल सामन्त ने उस पुरुष के आगमन का कारण भी अनुमान कर लिया, "और आप भी मेरी तरह सोमनाथ की आज्ञानुसार आये प्रतीत होते हैं। आपका नाम ?"

"मैं, भीमदेव का मन्त्री विमल," ऐसा कह वह सामन्त को सब सैनिको से दूर ले गया।

"और आप ?"

"मैं घोघाराणा के पुत्र का पुत्र हूं, मेरा नाम है सामन्त", हँसते हुए सामन्त ने कहा "आप भी उसी म्लेच्छ के लिए आये हैं ?"

"और आप ?" अनुभवी विमल ने पूछा।

"मैं घोघाबापा की ख़बर करने जा रहा हूं, मुझे गुरुदेव ने भेजा है—और आप ?"

"अच्छा हुआ आपसे भेंट होगई" विमल ने कहा, "यहां के रावल तो तुम्हारे सम्बन्धी होते हैं, आप भी मेरे साथ प्रस्ताव का अनुमोदन करें तो शायद वे मान जायं।"

"क्या कहना है ?"

"झालोर मदद करे तो पाटण यहां आ जाय और सब इकट्ठे होकर अपनी सेना जमाकर गज़नी के सुल्तान को पूरा कर दें।"

"ओह !" खिलखिला कर सामन्त ने कहा "मगर इस ओर वह आवे तब तो, बीच में बैठे हैं मेरे घोघाबापा–रेगिस्तान के राजा; और सपादलक्ष के वीर वालम, हज़ार गढ के मालिक; नांदोल और कन्नौज और सुरसागर तो गिने ही नहीं।"

"यह बात तो सही है, मगर जितनी तैयारी की जाय उतनी ही कम है, सोमनाथ महादेव का काम है।"

"ज़रा भी न घबराओ, कारण घोघाबापा उसे हाथ में से खिसकने दें ऐसे नहीं हैं।"

"यह क्या मैं नहीं जानता ?" मुतसद्दी विमल ने कुमार का उत्साह बढ़ाया।

जब ये दोनो बातचीत कर रहे थे और उनकी थकी ऊँटनियां सास ले रही थीं उस समय गढ के दरवाज़े से कुछ ऊँटनियों का क़ाफ़िला बाहर निकला। देखते-देखते वह क़ाफिला गढ़ उतरकर उत्तर की ओर चला गया और विमल एकाग्र नयनों से उसे देखता रहा।

रात को वाक्पतिराज गद्दी पर लेटे हुए पगचंपी करवा रहे थे। वृद्ध एवं विशाल बाहु उस वीर के ओजस्वी नयन सत्तर वर्ष की आयु होने पर भी तेजोहीन न हुए थे। उनके निकट सामन्त बैठा हुआ था और उसकी पीठ पर कभी-कभी अपार स्नेह के साथ वाक्पतिराज हाथ फेरते थे। गद्दी के नीचे वणिक् मन्त्री के अनुरूप नम्रता के साथ विमलमन्त्री बैठे थे। आसपास पांच सात भाई-बन्द बैठे थे।

"बापू!" विमल बोला "गुरुदेव गङ्ग सर्वज्ञ और अपने स्वामी का भेजा हुआ मैं यहां आया हूँ, सामंतसिंह जी भी इसी कारण पधारे हैं। श्रीमान् अगतिक सहायता का काम पड़ गया है।"

भाई-बन्द और चरण संवाहक सब उठकर चले गए।

"क्या है, कहो" रावल ने पूछा।

"श्रीमान् को विदित होगा कि गज़नी का सुल्तान सोमनाथ के मन्दिर को भङ्ग करने आ रहा है।"

"हां हां, हां हां" वृद्ध राजा खिलखिला कर हँस पड़े "यह बात तो मेरा सारा राजगढ जानता है।"

"क्योंकर" सामन्त ने पूछा, उसकी आंखें उन वृद्ध के परिहास को देख ज्वलित हो उठी थीं।

"मुल्तान का अजयपाल मुखिया आया था—वह म्लेच्छ का सन्देश लेकर अभी गया।"

"म्लेच्छ का सन्देश?" सामन्त और विमल युगपत् बोल उठे।

"तो यों कहो न कि यह बात तो तुमसे मुझे कहनी है—सुल्तान ने मुल्तान से मुझे प्राभृत भेजा है।"

"प्राभृत?"

"हां, मुझसे मदद मांगी है—झालोर से होकर जाने का मार्ग मांगा है। सोनगिरि चौहान से तो वह थरथर कांपता है", यों कह रावल ने मूंछों पर ताव दिया।

"फिर ? जो मांगा सो आपने दिया ?" विमल ने सांस रोक कर पूछा।

"मैंने उपहार लेकर भण्डार में डाल दिया"—

"और आपने मदद देने का अभिवचन दिया ?" क्रोध को रोककर सामन्त ने कहा।

"मैंने साफ़ कह दिया गुजरात जाना हो तो जा—तेरी बात तू जान—केवल परमारों के राज्य में पैर न रखना वरना भागते भूमि भारी लगेगी।"

"परन्तु मामा" सामन्त बीच में बोल उठा, "विमलमन्त्री तो आपसे मदद लेने आये हैं, आप और भीमदेव एक हो जायं तो रेगिस्तान के बीच में ही म्लेच्छ को समाप्त कर दिया जाय।"

"ऊँह, भीम को मेरी ग़रज़ ज़रूर हुई।" रावल ने शठता से कहा, "और गतवर्ष मारवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए जब मैंने एक हज़ार घोड़े और दो सौ ऊँटनियां मांगी थीं तब तो वह उसका सगा होता था। हां हां हां हा भीमदेव से जाकर कहना कि अपने कर्मों को तू ही भोग, मुझे क्या मतलब ?"

"परन्तु महाराज !" विमल ने कहा "यह तो केवल गुजरात का ही संकट नहीं, म्लेच्छ तो सोमनाथ को तोड़ने आ रहा है, यह तो धर्म का काम है।"

"ये तो मेरे भीमदेव की बातें हैं, मथुरा का विध्वंस किया तब भीमदेव क्यों न पहुंचा उसे बचाने ?"

"परन्तु महाराज ! म्लेच्छ सपादलक्ष, नांदौल, झालोर, आबू और पाटण पार कर प्रभास जाय यह कहां तक ठीक होगा ?"

"परमार के जीते-जी म्लेच्छ की क्या औकात है कि वह झालोर

मे पैर भी रक्खे।"

"परन्तु यहां से नही जायगा तो कोई दूसरा रास्ता लेगा, और फिर भी विजय तो उसी की होगी न ?"

"देखा, देखा उस विजय करने वाले को" वाक्पतिराज ने कहा।

"देव का धाम टूटेगा तो कलंक क्षत्रिय-मात्र को लगेगा।"

"यह तो भीमदेव का धाम है, उसमे इतना भी वल नहीं कि अपने इष्ट-देव को बचा सके।"

"परन्तु काका, यह विदेशी म्लेच्छ अपने राज्यो में से जाय और अपने देवस्थानों को तोड़े तो अपने से देखा कैसे जाय ? यह तो गौ, ब्राह्मण का विद्वेषी, यह तो अपने देवो को तोड़ने वाला, इसे अपनी भूमि से जाने का मार्ग किस तरह दिया जाय ?"

"इसीलिए मैंने कहा कि ख़बरदार अगर तूने झालोर मे पैर भी रक्खा तो।"

"दूसरी ठौर पैर रखकर जाय, महाराज"—विमल ने फिर उकसाया "तो भी जनता तुम्हारी ही नष्ट करेगा और मन्दिर तुम्हारे ही भ्रष्ट करेगा।"

"तू तो अपने दामोदर मेहता ही की शाला में पढ़ा है, मै यों मधुर वचनों के पीछे मरू' ऐसा नही हूं।"

"तो फिर आप इस विद्रोही म्लेच्छ का प्रतिरोध करने मे सहायक न होगे?" सामन्त आपे से बाहर हो गया, और बोला "क्या यह वाक्पति-राज को शोभा देगा ?"

"छोकरे !" वाक्पतिराज ने तिरस्कार के साथ कहा "मैं तेरे घोघा-बापा जैसा नहीं हूं कि दूसरे की लड़ाई अपने सिर ओढ लूं।"

"मामा !" अधीर सामान्त बोल उठा "घोघाबापा ने अपना सारा अवतार सबकी भलाई के लिये न्योछावर कर दिया है, उनके लिए परकीय और स्वकीय कुछ भी नही है।"

"महाराज !" विमल ने ठण्डा पानी छिड़का, "परन्तु मेरे स्वामी

तो जो मांगो सो देने को तैयार हूं।"

"अब, अब क्यों ? उसे तो मालवा और आबूगढ़ जीतना जो है।"

"महाराज ! परन्तु अभी तो वे आपके हाथ में हैं, उन्हें देवधाम का संरक्षण करना है, जो आप मांगे सो दिये बगैर कोई उपाय नहीं है।"

"पहले आते तो बात कुछ दूसरी थी, परन्तु अब तो वाक्पतिराज का वचन टल नहीं सकता। म्लेच्छ को मैं रास्ता न दूंगा, परन्तु भीमदेव की भी मदद न करूंगा।"

"और हमें मारकर म्लेच्छ आप को मारेगा तब ?"

"देख ली उसकी सूरत।"

"जो प्रभास पर्यन्त दावानल लगाएगा उसे किससे भय होने वाला है?" विमल ने कहा।

"छोकरे ! सब तेरे मालिक जैसे नहीं होते, समझा ? परमारों का शौर्य तूने देखा नहीं; देखें वह म्लेच्छ इधर कदम तो रक्खे"—उसने क्रोध में भरकर कहा।

"आपकी शूरता तो म्लेच्छ को मार भगाने में है।"

"अरे बच्चे ! छोटे मुंह बड़ी बात करता है—जा, जाकर पूछ अपने घोघाबापा से कि वाक्पतिराज की शूरता किसमें है ?"

सामन्त उठ खड़ा हुआ "मेरे बापा को इतना कहना न पड़े। मरुस्थल के राजा के होते क्या मजाल कि म्लेच्छ आगे बढ़े ? आप भले मौज करो आप की मदान्धता में। यदि म्लेच्छ आ पहुंचा तो आप सब के प्राण ले लेगा।" सामन्त ने इतना कहा और इससे पहले ही कि रावल क्रोध में आकर गर्जना करे वह चल दिया।

"घोघा की सारी बेल ही अविचारी है" रावल बड़बड़ाये, और विमल से कहा "तू जा अपने मालिक के पास। मैं अपना वचन नहीं लौटाऊँगा।"

"कल सुबह मैं फिर आपसे मिलूंगा।"

"मैं एक से दो होने वाला नहीं हूं।"

"आप कर्ताहर्ता हो।" विमल ने नम्रता पूर्वक नमस्कार किया, और

रवाना हुआ। वाक्पतिराज ने अपने संवाहकों को फिर बुलवाया।

: २ :

रावल की स्वार्थपूर्ण आत्मनिष्ठा को देख सामन्त के क्रोध का पार न रहा। वह अधीर पैरों से स्वयं नीचे उतरा और अपने साथियो को तैयार होने की आज्ञा दी। थोडी देर बाद गम्भीर मुद्रा लिये जब विमल आया तब सामन्त नीची निगाह किये ज़मीन पर उग्रदृष्टि से देखता हुआ बैठा था।

"चौहान ! अधीर न होओ" विमल ने स्नेहपूर्वक उस वीर युवक को सांत्वना देने का प्रयत्न किया।

"वाक्पतिराज किस अधोगति को पहुंच चुके हैं। गो-ब्राह्मण का काल-स्वरूप वह म्लेच्छ खुले आम चला आये और झालोर राज्य घूस लेकर उसे आने दे। सूर्य और चांद की कीर्ति भी कलंकित होने लगी है। घोघाबापा इस समय यहां होते तो इसका सिर उडा देते।" सामन्त ने कहा

"भाई ! अभी हम उनके पाहुने है, ऐसा नहीं बोलना चाहिये।"

"मैं तो मुंह पर कहता। वाक्पतिराज ऐसे वचन बोलते हैं, यह पृथ्वी तो रसातल को जाने वाली है।"

"निराश न हो, कल फिर समझावेंगे।"

"वे नहीं समझेंगे, कभी भी नहीं समझेंगे, उनको तो सिर्फ़ झालोर की लगी है गौ ब्राह्मण का नाश हो, सोमनाथ की ध्वजा नीची हो जाय, उन्हे किसी की कुछ परवाह नहीं, उनको तो सिर्फ़ परवाह है म्लेच्छ से धन लेकर अपने वचन निबाहने की, कुल और धर्म की नहीं।"

"परन्तु चौहान ! व्याकुल होने से क्या लाभ ? झालोर होकर यदि म्लेच्छ न आया तो किधर से आ सकता है ?"

"अरे घोघाबापा मरुस्थल में घुसने किसे देंगे ?"

"परन्तु मान लो कि वह आवे, तो फिर वह मारवाड ही होकर आयगा, और दूसरा रास्ता कौनसा है ?" विचारशील मन्त्री ने कहा।

"अरे वे कभी रास्ता ही न ठगे", सामन्त बोला ।

"मुझे अब यहाँ से मारवाड़ जाना चाहिये, आप भी साथ चलेंगे ?"

"नहीं" सामन्त ने कहा "सोमनाथ की आज्ञा है कि मैं घोघागढ़ जाऊं और घोघाबापा को सूचना दूं ।"

"बापू ! म्लेच्छ को घोघागढ़ जाना होगा तो वह कभी का पहुंच गया होगा ।"

"तो फिर उसका कचूमर निकल गया होगा ।"

"फिर तो आफ़त टली ।" विमल ने फिर बात चलाई "आपको तो आज खूब नींद आ रही होगी ।"

"नहीं तो भाई, मुझे तो आज नींद आ ही नहीं रही है, उनके शब्द मेरे कानों में गूंज रहे हैं ।"

"तुम तो अभी बालक हो, ऐसे अनुभव तो नित्य होते ही रहते हैं, इससे क्या घबरा जाना चाहिये ? इसका रास्ता निकालेंगे, रात को आना ।"

"कहां ?" सामन्त ने चौंक कर पूछा ।

"उस मुलतान के मुखिया को मारवाड़ जाते हुए अटकाना चाहिये" अर्ध-गम्भीर दृष्टि से विमल ने कहा ।

"अभी, इसी दम । बराबर अभी जा पकड़ना चाहिये ।" सामन्त उठ खड़ा हुआ ।

"तो आप तैयार हो, मैं अपने आदमियों को भी तैयार होने को कहता हूं और रावल से अनुज्ञा लेकर आता हूं", मुस्कुराता हुआ विमल मन्त्री मन में अकल्पित घटना घड़ता हुआ रावल के पास पहुंचा ।

रावल भी ऐसे अरुचिकर पाहुने को दूर करने को उत्सुक थे और कुछ दिखाने के लिए आग्रह कर गढ़ के दरवाजे खुलवा दिये । सामन्त और विमलमन्त्री तेज़ी के साथ मुलतान के मुखिया के पीछे चले । रात अंधेरी थी, परन्तु सीधे रास्ते जाना था इसलिए कोई ख़ास तकलीफ़ न हुई ।

"चौहान! उसे झालोर से दूर जाने देना ही ठीक है" विमल ने कहा और मधुर वाणी से उसी प्रसंग को फिर चलाया "एक मेरी विनती है बापू!" यों कहते हुए विमल के सुरूप मुख पर दुर्जय हास्य छा रहा था। सामन्त तो कभी से मन्त्री के व्यक्तित्व में अंकित हो चुका था, अतएव उसे सानुकूल होने में देर न लगी।

"देखो" विमल ने बड़ी सफ़ाई के साथ कहना शुरू किया, "मुखिया बड़ा अनुभवी आदमी है, उसे पीछे हटाना या रोकना बड़ा कठिन काम है, आप ठहरे राजा लोग—उसके साथ बातचीत में आप कहीं न कहीं पकड़ जाओगे।"

"अरे! मैं तो एक अक्षर भी न बोलूंगा" सामन्त ने कहा "जिस सफ़ाई से आप रावल से बातचीत करते थे वह तो देख मैं दंग रह गया। घोघाबापा को आप जैसा मन्त्री मिला होता तो क्या ही मज़ा आता।"

"अरे बापू! आपने मेरे गुरु को तो देखा ही नहीं।"

"आपके भी गुरु हैं?"

"हमारे दामोदर मेहता के सामने तो मैं एक बालक हूं। वे मुंह खोलें और सामने बैठे हुए आदमी से चाहे जो करवा लें। और आप सच मानना मैंने उन्हें दस वर्ष में किसी भी दिन अपना मिज़ाज खोते नहीं देखा।"

"रहने भी दो जिसे मिज़ाज न हो वह भी क्या आदमी?"

"मेहता जी हमारे महाराज से सदा कहते हैं! जिसे क्रोध होय वह राजा श्रेष्ठ, जिसे क्रोध न होय वह मन्त्री श्रेष्ठ।"

"तो फिर आपको क्रोध नहीं आता?"

"किसी-किसी वक्त आ जाता है, इसीलिए मैं मेहता जी का समकोटि नहीं, यदि होता तो रावल ही न कहलाता?" इतना कह विमल खूब हंसा और सामन्त स्नेह से अपने अभिनव मित्र की ओर देखने लगा। पहला विश्राम जहां आया वहां वे दोनों ठहरे, वहां तलाश करने पर मालूम हुआ कि मुखिया ने दूसरे विश्राम पर ठहरने का विचार किया है। विमल को यह बात पसन्द आई कि मुखिया झालोर से दूर जा

पहुंचा।

कुछ ही घण्टों बाद वे दूसरे विश्रामपर पहुंचे। विलम्ब से चन्द्रोदय हुआ था और उसके मन्द प्रकाश में विश्राम पर ताड के पास खडी हुई ऊंटनियों को देख विमल को हर्ष हुआ। मुलतान के मुखिया के साथ बुद्धि लडाने का प्रसङ्ग उसे प्राप्त हुआ था और उसकी जीत में पाटण और सामनाथ महादेव दोनो की जीत थी। तेज़ी के साथ वह उस विश्राम पर जा पहुंचा और मुखिया का काफ़िला जाने को तैयार हुआ ही था कि उसे रोका।

"मुलतान के मुखिया के पास मैं झालोर राज्य का सन्देश लाया हूँ।" वह वृद्ध एवं प्रचण्ड योद्धा ऊटनी पर सवार होने की तैयारी ही में था। वह आगे आया, उसकी आंखो मे शङ्का बैठ चुकी थी।

"तुम कौन हो, कहां से आये हो ?"

"मैं झालोर से आया हूं और यह कुंवर सामन्तसिह चौहान रावल के भान्जे होते हैं। आपसे मुझे कुछ खानगी बात करनी है" इतना कह विमल अपनी ऊंटनी से उतर सामने आया, और छटा के साथ नमस्कार किया "आपको मेरा विश्वास नहीं होता ?"

कठोरता के साथ, शङ्कित नयनो से मुखिया इस मधुरभाषी मन्त्री की ओर देखता रहा। विमल उसे दूसरे मनुष्यों से कुछ दूर ले गया और धीमे स्वर से कहा "मै सीधा रावल के पास से ही आ रहा हूं। आप उनसे मिले, आपने नज़र भेंट की, और रावल ने रास्ता देना अस्वीकार किया, किन्तु स्वयं लडाई में भाग न लेने का अभिवचन दिया—है सच बात ? अब विश्वास हुआ ? मैं यदि झूठ कहता हूं तो पूछो इन चौहान कुंवर से।

मुखिया को कुछ विश्वास हुआ और उसने पूछा "किस काम से रावल ने आपको मेरे पास भेजा है ?"

"रावल को ऐसा भान हुआ कि संभव है मारवाड का रणमल्ल राजा आपका कहना न माने अतएव हमे भेजा है कि हम रावल की ओर

से आपको विश्वास दिलाना चाहते है कि झालोर लड़ाई न करेगा।"

"विश्वास दिलाने का कारण ?" मुखिया ने सशङ्क होकर पूछा।

"कारण केवल इतना ही कि अर्नाहिलवाड पाटन के राजा भीम ने राठौर को युद्ध मे साथ देने के लिए सन्देश भेजा है" विमल ने साहस पूर्वक पासा फेंका।

"ऐसा ?" मुखिया ने पूछा।

"जी हां ! चलो" ऐसा कहकर विमल ने साथ चलने की आतुरता दिखाई "हम राठौर को कहने जा रहे हैं कि भीमदेव के प्रस्ताव से सहमत न हो।"

"ऐसा ?" इतना कह मितभाषी मुखिया ऊंटनी पर सवार हुआ और दोनों क़ाफ़िले साथ-साथ चलने लगे।

मुखिया को ज़रा भी विश्वास हुआ ऐसा प्रतीत न होता था। ऊंघती हुई दिखाई देने वाली आंखो से वह विमल की ओर देखता रहता था। वह स्वयं बातचीत तो न करता था और विमल के बातचीत करने के प्रयत्न को भी प्रोत्साहन न देता था।

कुछ देर तक ऊंटनियो के डग के सिवा कोई ध्वनि नहीं सुनाई दी। सामन्त तो अपने अभिवचन के अनुसार मूक ही रहा परन्तु विमल ने अपनी ऊंटनी को मुखिया की ऊंटनी के साथ-ही-साथ रखा और उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखता रहा। दोनो आपस में एक दूसरे की चौकसी करते थे। ज्यो-ज्यो समय निकलता गया त्यो-त्यो विमल अधीर होता गया।

गुम-सुम वे आगे बढ रहे थे, घड़ियां बीतने लगीं, पिछली रात प्रभात में परिणत होने लगी और विमल का हृदय अधीरता के कारण अधिक धड़कने लगा।

जब पौ फटने लगी तब विमल की आकुलता की सीमा न रही। आख़िरी मौका हाथ से निकला जा रहा है ऐसा मालूम होने लगा। अपनी ऊंटनी पर मुखिया शीतल पवन मे नींद के झोंके खाता हुआ

बैठा था। विमल अब अधिक समय तक धैर्य धारण न कर सका। उसने अपनी ऊंटनी को मुखिया की ऊंटनी के बराबर बढ़ाया, पीछे फिरकर अपने आदमियों को संकेत किया और तुरन्त तलवार निकाल मुखिया पर वार किया।

विमल के अचम्भे का पार न रहा, कारण मुखिया झोंके नहीं ले रहा था किन्तु दबी आंखों से उसकी ओर देख रहा था। उसकी तलवार की नोक विमल की छाती से टिक गई थी। वह वृद्ध बाघ तैयार ही था ऐसा विमल को जान पड़ा और तलवार की नोक उसके शरीर में घुसे उससे पहले समय की आवश्यकता के अनुसार वह अपनी ऊंटनी पर से छूट गया। उस पर तुरन्त ही मुखिया भी अपनी ऊंटनी पर से लपका।

दोनों पक्ष एक दूसरे की ओर देखते ही रहे और ज्योंही विमल की तलवार चमकी त्योंही ऊंटनी पर बैठे हुए सैनिक अपने पास चलने वाले दुश्मनों पर टूट पडे। कुछ शमशेर चमके, कुछ बाण छूटे, कुछ ऊंटनिया भड़क कर भागीं और कुछ चीख़ें सुनाई पड़ीं। चारों तरफ़ मारकाट होने लगी।

मुखिया विमल के पीछे नंगी तलवार ले दौड़ा; और उसकी लम्बी भयङ्कर शमशेर उठते ही विमल पर झूमी उधर सामन्त का खञ्जर बिजली के सदृश चमका, गिरा और मुखिया की गर्दन में घुस गया। उसका उठा हुआ हाथ नीचे गिरा, उसमें पकडी हुई तलवार दूर जा गिरी और मुखिया पृथ्वी पर गिर गया। विमल खड़ा हुआ, मुखिया के तीन आदमियों ने उसे घेर लिया। भयङ्कर गर्जना के साथ खड्ग फिराता हुआ सामन्त अपनी ऊंटनी से उतर बीच में आ धमका। मुखिया के गिरे हुए शरीर के आस-पास तुमुल युद्ध होने लगा। सब वहां दौड आये। मुखिया के साथी मुखिया को बचाने और विमल और सामन्त के आदमी अपने मालिक को बचाने। पल, पांच पल चिगारियां उडी, चार-पांच आदमी घायल हुए और गिरे। दिखने में सुकुमार विमल अद्भुत चपलता के साथ वार करता था, और चौहान वीर सिंह के समान

गर्जना करता, रुधिर के प्रवाह को बढ़ाता चारों ओर घूम रहा था। मुखिया ने आंखें खोली और विमल को पास ही खडे लड़ते देखा। यद्यपि उसकी आंखों में अंधेरा छा रहा था तथापि अद्भुत शक्ति एकत्रित कर उसने अपने पास पड़ी तलवार उठाई और होंठ भीचकर एक हाथ के सहारे बैठ तलवार चलाने के लिए दूसरा हाथ उठाया।

सामन्त की दृष्टि पड़ी। भयङ्कर गर्जना करता हुआ वह मुखिया पर टूट पडा और तीव्रता के साथ उसके शरीर को बेध दिया। मुखिया के मुंह से लहू बहने लगा और उसने अपने प्राण त्याग दिए।

सामन्त की गर्जना से सबका ध्यान मुखिया की ओर आकृष्ट हुआ। सबने उसे देह छोड़ते देखा और उसके आदमी हताश हो मुट्ठी खोल भाग गये।

"शाबाश, चौहान, शाबाश ...... " विमल ने दो बार अपने प्राण बचाने वाले से कहा।

सामन्त एकाग्र नयनों से मुखिया की ओर देखता रहा। "सोमनाथ के सभी द्वेषी ऐसी ही मौत मरेंगे" इन शब्दों के साथ उसने विजेता के अधिकार से मुखिया की कमर में खुंसे हुए रत्नजटित खंजर को निकाल कर अपनी भेंट मे ले लिया।

"और झालोर के रावल का सन्देश अब यहीं रहने वाला है" हंस कर विमल ने कहा।

मुखिया के नौ मनुष्य मारे गए और तीन पकडे गए। सामन्त और विमल के सात साथी काम आये, चार घायल हुए और उन दोनो समेत चार जने अक्षीशुद्ध रहे। सामन्त ने अब अपनी राह पर जाने की अधीरता प्रकट की।

"चौहान" विमल मन्त्री ने कहा "तुमने दो बार मुझे जीवनदान दिया है, मै तुम्हारा दास हूं, अपनी चाम के जूते भी आपको पहनाऊं तो भी थोडा होगा।"

"मन्त्री!" स्नेहालु सामन्त बोला "तुम मेरे दास नही परम मित्र

हो, घोघागढ़ अपना ही घर समझो।"

"और गुजरात पधारो तो मुझे कृपाकर भूलना मत।" दोनों गले लगे और अपने-अपने रास्ते हो लिए। मुखिया के पकड़े हुए मनुष्यों को ऊंटनी पर बांध विमल ने मारवाड़ का रास्ता लिया और ज्यों-ज्यों उन लोगों से उसे ग़ज़नी के सेनानी के हालात मालूम हुए त्यों-त्यों उसकी चिन्ता अधिक बढ़ने लगी।

ग़ज़नी की सेना में तीस हज़ार घुड़-सवार, पचास हजार तीरन्दाज़, पैदल और हाथी तीन-तीन हज़ार थे। तीस हजार ऊंटनियों पर पानी साथ रक्खा था। इसके उपरान्त हज़ारों मनुष्य सेवा में साथ थे। प्रयाण पर प्रस्थित किसी देश के समान वह सेना थी। उसकी चाल से धरा कम्पित होती और उसके दुन्दुभिनाद से गगन विदीर्ण होता था। विमल इस वर्णन को सुनकर दंग रह गया। कुछ समय बाद उसे यह विचार कल्पित ही प्रतीत हुए और वह हंस पड़ा, परन्तु उसके हृदय में बसा हुआ भय गम्भीर और, और गम्भीर होता गया।

सातवां प्रकरण

घोघाराणा की यशोगाथा

: १ :

बिलगाने पर सामन्त का हृदय प्रफुल्लित हुआ। गज़नवी के साथ पहिले दाव में तो उसकी जीत हुई। "पहली चोट तो राणा की" वह अस्फुट शब्दों में बोला।

उसके साथ दो मनुष्य थे, उनमें से एक कुछ घायल था; और दूसरे घायलो और कैदियों को तो उसने विमल के साथ विदा कर दिया थे, कारण उसेतो जितनाहोसके उतनी त्वरासे घोघागढ पहुंचना था।

सीधे मार्ग पर विश्राम तो अनेक आते थे, अतएव वह आसानी से आगे बढता गया।

चौथे दिन उसे कुछ आदमी सामने मिलने लगे : कुछ उंटनी पर, कुछ घोडे पर, तो कुछ पैदल ही। जांच करने से ज्ञात हुआ कि आते हुए म्लेच्छ की विजय की बातें सुन वे भागकर मारवाड की ओर जा रहे थे। सामन्त ने उनसे पूछताछ की। कोई कहता कि वह सपाद-लक्ष तक आ पहुंचा, कोई कहता कि वह यहां से दो ही दिन की यात्रा की दूरी पर है, कोई बताता था कि उसके पास उडती हुई ऊँटनियाँ हैं, और कोई सुनाता था कि उसके प्रताप से मरुस्थल में नवीन नदियाँ बह निकली हैं।

आरहा है—आरहा है—आरहा है—इतना ही केवल वे जानते थे और इतना ही उन्हें वहां से भगा देने के लिए पर्याप्त होता था। दो दिन सामन्त और आगे चला और सामने आता हुआ समूह अधि-

काधिक होने लगा। गांव के गाँव भागकर आते हुए लगते थे—स्त्री, पुरुष, बालक, घोडे, ढोर ढँकर के सहित, हो सका उतना सामान लेकर भागने वाले उस जनसमूह के मगज़ मे दिशा का भान न था। बात धीरे धीरे फैलने लगी। किसी ने उस विकराल गज़नी के अमीर की तीन आँखें और आठ हाथ बताए और उसके पास छः हाथ लम्बी तलवार थी यह कह सुनाया। किसी ने उसकी अगणित सेना का सर्वाङ्ग सम्पूर्ण वर्णन किया, किसी ने उसके पास उडते हुए हाथी देखे थे, किसी ने पंख वाले घोड़े देखे थे और किसी ने काले, कच्चे मांस को खाते दो-दो मुंह के राक्षसों को देखे थे। अमीर जहां पहुंचता वहां बादल घिर जाते, ऐसा भी किसी ने देखा था। वह जब खड्ग निकालता तब आकाश से बिजली टपकती हुई भी किसी ने देखी थी।

सामन्त ने वस्तुस्थिति का ठीक पता निकालने का पुष्कल प्रयास किया, किन्तु वास्तविकता से किसी का भी परिचय था ऐसा प्रतीत न हुआ। केवल इतना ही विदित हुआ कि सुलतान सपादलक्ष तक आ पहुँचा था। इसका सारांश यह हुआ कि वह घोघागढ पार कर चुका था अथवा वहाँ से उसने किनारा किया। उसके हृदय मे भय का सञ्चार होने लगा। चारो ओर से आते हुए जनसमुदाय के हृदय में बैठा हुआ डर उसके हृदय में भी स्थान करने लगा। ज्यो ही यह भय हृदय में बैठा त्यो ही आवेश के साथ उसकी चाल तेज़ होने लगी। भम्भरिया में उसके पिता उसकी बाट जोहते होंगे, गङ्ग सर्वज्ञ को आदेशानुसार उसे सोमनाथ भगवान् का आदेश घोघाबापा को निवेदन करना था, परन्तु क्या होगा, क्या हो चुका होगा यह उसकी समझ मे न आया।

आठ दिन तक उसे भागते हुए लोग मिलते रहे। गाँव उजडे हुए दिखाई पडे, विश्रामों पर बटोही भी कम संख्या में दिखलाई देते। उस प्रदेश में भय मूर्तिमान् हो शासन कर रहा था। सामन्त का हृदय कांपने लगा। परन्तु वह होंठ पीस कर आगे बढने लगा। सामने यम भी उपस्थित होता हो तो भी आपत्ति नही, कारण वह भी स्वयं

चौहान था।

दो दिन वह और आगे चला—चारों ओर शमश्माकार था, श्मशान भी कम निर्जन प्रतीत हो ऐसा एकान्त वहां छाया था। पन्द्रहवें दिन उसका साथी घायल सैनिक अचानक अधिक बीमार होगया और उसे आगे ले जाना असम्भव सा होने के कारण उसकी देख-भाल लिए दूसरे सैनिक को छोड़ सामन्त अकेला ही आगे बढ़ा। उसके साथियों ने उसे रुकने का बहुत आग्रह किया परन्तु वह एक से दो न हुआ। ज्यों-ज्यों उसकी समझ न आने वाला महाभय उसे व्यग्र करता त्यों-त्यों शीघ्रता के साथ जाने की उत्कण्ठा उसके हृदय में बढ़ती जाती थी।

उस अनिश्चितता की भयङ्कर मनोदशा की अपेक्षा उसे भय की दाढ में लुप्त हो जाना अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होने लगा।

और अब भम्भरिया दूर न था—दो दिन में आ जायगा। उसके पिता वहां उसकी राह देखते ही होंगे। वहां से घोघागढ का रास्ता पार करने में आखिर कितनी देर?

: २ :

उसके साथी उसे आकर मिला लेंगे इस आशा से एक दिन तो वह धीरे-धीरे आगे बढा कितनी बार तो उसे ऊँटनियों की पदध्वनि सुनाई दी और कितनी ही बार मुँह फिराकर उसने क्षितिज तक नज़र दौडाई, परन्तु उसके आदमियोका नामोनिशान भी उसे दिखाई नदिया।

परिस्थिति भयंकर थी। जहां तक दृष्टि की सीमा थी वहां तक निर्जनता का साम्राज्य था। उडती रेती. कहीं डोलता हुआ ताड़, कहीं विश्राम की निर्जन झोंपड़ी, और कहीं किसी वीर की शय्या बनी हुई एकमात्र देहली के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु ध्यान खींचती न थी। यह सीधा रास्ता था। जब वह जा रहा था तब उधर से कई काफिले निकले। दोनों ओर गांव के कुत्ते भोंक देते थे। विश्रामों पर चरवाहों की टोलियां गप्प लड़ाते बैठी थीं। उस समय किसी जन या जानवर का नाम या

निशान भी वहा न था। वह एकान्त निर्जनता उसे विह्वल करने लगी। उसका हृदय ज़ोर से धडकने लगा। कोई न मिले तो उसका मस्तिष्क काम करेगा या नहीं—इसका अन्देशा उसे होने लगा।

भयङ्कर शमशमाकार चारो ओर व्याप्त था। मानो दिशाएं पास-पास आकर उसका गला घोट रही हों ऐसा भान उसे क्षणभर हुआ।

वह बालक था उसे इतनी इकलाई का अनुभव न था। ज़ोर से चिल्लाने का एकबार उसका मन हुआ—उसने एकबार हुङ्कार किया—जैसे-तैसे, डरते। अपना प्रतिशब्द उसके कानो में पडा, भयभीत हृदय से उसने चारों ओर देखा और सोमनाथ भगवान् का स्मरण कर उसने अपनी ऊँटनी आगे बढाई। वह आगे बढ न रहा था, किन्तु हृदय में बसी हुई भीति के कारण दूर भाग रहा था।

एक बडा विश्राम आया। वहां उसे कोई मिलेगा, ऐसी आशा थी। भम्भरिया अब दूर न था और सम्भव था कि उसके पिता भी स्यात् वहां आ पहुंचे हों। परन्तु वे आगए हों और जल्दी से ही घोघाबापा के पास चले गए हों तो वह ज़रूर हारा और उसके पिता जीते। वहां उसके सगे सम्बन्धी सब उसकी राह देखते होगे और वे सब उसकी भीषण यात्रा की कथा श्रवण कर गर्वनिष्ठ होंगे।

सब लोग गज़नी के म्लेच्छ से डरकर भागते थे, परन्तु वह था क्या? लोग तो मूर्ख थे। घोघाबापा को निपटा कर वह आ ही कहाँ से सकता था, चाहे वह स्वयं रावण क्यों न हो। मान लो कि वह घोघागढ पार भी कर चुका हो तो आख़िर उसका नाम-निशान तो हो?

ऐसे सङ्कल्प विकल्प करते हुए उसने एक विश्रामस्थान पर झोपडी में दोपहर बिताई। उसने छुटपन में बातें सुनी थीं जिसमें किसी राक्षस के कोप से निर्जनता को प्राप्त हुए एक नगर का वर्णन था। यह विश्राम भी ठीक वैसा ही था। कूप में जल था स्थिर, बावडियां थीं सूखी; और मन्दिर में माताजी की मूर्ति थी, परन्तु कुछ दिन से अपूज्य; तीन झोपडियां थीं, सही सलामत किन्तु निर्जन।

एक झोपड़ी मे चूल्हे पर कुछ ढंका हुआ पड़ा था, किन्तु चूल्हेमे कुछ दिनो से बुझी हुई लकडियां थीं। देग मे सूखी हुई खिचडी चीटियों की पङ्क्ति ले जारही थी। किसी देवकोप के कारण मानवीय सञ्चार विलकुल अदृश्य हो गया था।

थोडी देर बाद उसका भय कम होने लगा। उसे अपने कायरपन पर क्रोध आया। वह स्वयं चौहान—घोघाबापा का प्रपौत्र—सोमनाथ का आज्ञावाहक—इस तरह ढीला पडे—हिम्मत हारे ! उसने होंठ भीड कर क्षोभ को दबाया और खडे होकर आगे प्रस्थान करने की ठानी।

और वह घोघागढ ही पहुंचेगा—चाहे बीच में हज़ार गज़नी के म्लेच्छ क्यों न खड़े हों। उसने ऊँटनी रवाना की और कुछ ही देर बाद उसे दूर से रेती उडकर आती हुई दिखाई दी। अवश्य ही कोई आ रहा था। कितने दिनों बाद उसे मनुष्य से भेंट होगी; चाहे वैरी क्यों न हो, किन्तु मनुष्यतो सही। मारेगा तो नहीं,सामने हुङ्कार तो करेगा,उसका लहू वहेगा तो वह भी किसी-न-किसी का लहू बहावेगा। निर्जनता अमानुषी थी, युद्ध चाहे जैसा क्यो न हो किन्तु मनुष्य का सँसर्गतो हो।

उसने अपने धनुष और बाण को जांचा, कटिपर तलवार ढीली की, कमर से खंजर निकाल कर देखा और फिर यथास्थान रखा।

आकाशपट में दो ऊँटनियां चित्रित हुई और सामन्त का हर्ष न समाया। दो पुरुष बडी तेज़ी के साथ उसकी ओर आरहे थे। तृषित पुरुष जिस तरह जलाशय की ओर भागता है उसी तरह वह उन मानवों की ओर तेज़ी से दौडा। उसका भय नष्ट हो चुका था। उसने हुङ्कार किया और उन मनुष्यो ने प्रतिशब्द किया। मनुष्यों की आवाज़ सुन सामन्त के हर्ष का पार न हुआ और हृदय में फिर स्वस्थता ने आसन जमाया। अपनी क्षणिक दुर्बलता पर उपहास करता हुआ वह आगे बढ़ा।

: ३ :

वे दोनों आने वाले शस्त्र-सज्जित राजपूत वीर थे। एक अधेड़ उम्र का था, दूसरा जवान था। बडे ने बुलन्द आवाज़ से पुकार की,

"कौन है?" सामन्त ने देखा कि छोटे ने तो अपना तीर भी कमान पर चढाकर तैयार रक्खा था।

सामन्त ने भी प्रत्युत्तर में गर्जना की "जय सोमनाथ" और अपनी तलवार निकाल कर एक हाथ में रक्खी।

"कहां जा रहे हो ?" बड़े ने फिर पूछा।

"घोघागढ" सामन्त ने उत्तर दिया।

इतने ही में उनकी ऊँटनियाँ पास-पास आने लगी।

"कहां से आये हो ?"

"झालोर से, आख़िर है क्या ?" उसकी प्रश्न-परम्परा से अधीर हो सामन्त ने पूछा।

उन आगन्तुको ने सामन्त की पगड़ी का पेंच पहिचाना और पूछा।

"चौहान ! रास्ते मे म्लेच्छ की सेना कहां देखी थी ?"

सामन्त चौंक उठा, "नहीं, भाई ! मगर आप हैं कौन ?"

"हम घोरविटली से आरहे हैं" बड़े योद्धा ने कहा।

"तुम्हें उसकी सेना मिली ही नहीं, अजीब-सी बात है, आख़िर कहां गई ?"

"मुझे क्या पता, रास्ते में उजडे हुए गाँव और निर्जन विश्राम के स्थान अलबत्ता मुझे मिले हैं।"

"परन्तु वह म्लेच्छ कहां गया" बड़े योद्धा ने छोटे से पूछा।

"आपको म्लेच्छ कहां मिला ?" सामन्त ने प्रश्न किया।

"इन्हें," बडे योद्धा ने क्रूरता के साथ उपहास किया और कहा "कहीं भी नहीं मिला।"

"मुलतान से वह रवाना हो चुका।"

वे दोनो वीर रस-विहीन हास्य से हँस रहे थे, सामन्त को उसका रहस्य न समझ आया। बड़ा योद्धा निकट आकर सामन्त की ओर ममता के साथ देखने लगा।

"भाई !" उसने स्नेह के साथ दयार्द्र ध्वनि से कहा, "किस काम से घोघागढ जा रहे हैं ?"

"किस काम के लिये !" गर्व के साथ सामन्त हँस पड़ा। "वह तो मेरा घर है, मैं घोघाबापा का प्रपौत्र हूं। यदि मैं वहां न जाऊं तो कहां जाऊं ?"

उन दोनो योद्धाओं ने ऐसी दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखा जिसका आशय सामन्त की समझ न आया और बड़े योद्धा ने अपनी ऊँटनी सामन्त की ऊँटनी के पास लाकर अपना हाथ स्नेह पूर्वक सामन्त के ऊपर रक्खा।

"चौहान ! घोघागढ कब छोड़ा ?"

"मैंने ?" अरे, मुझे तो लगभग तीन महीने होने आये हैं।"

"बापू !" बड़े योद्धा ने आर्द्र नयनों से सामन्त की ओर देखकर कहा :

"तीन महीने मे तो तीन युग बह गए। बापू ! तुम तो हमारे साथ चलो।"

"क्यों, क्या हुआ ?" योद्धा के शब्दों मे सामन्त को अवर्णित भय का अनुभव हुआ। "आप कौन हैं ?"

"बापू ! न जानने में नौ गुण हैं, तुम यह रास्ता तो छोड़ो और वापिस लौट जाओ; नहीं तो चलो हमारे साथ। चौहान ! तीन माह मे तो धरती रसातल में धँस गई है।"

"परन्तु हुआ क्या ?"

"होना क्या था ? हमारा तेज हत हुआ" बड़े योद्धा के आंख में आंसू आये। "चौहान वीर बालमदेव निहत हुए। साथ पचास हज़ार बत्तीस योद्ध ओं ने प्राण दे दिए। सपादलक्ष गिरकर पादाक्रान्त हुआ।"

"और म्लेच्छ ?"

"म्लेच्छ व जयी हुआ। राजपूतो को भागना पड़ा, और कुँवर सारङ्गदेव और रावलक्खन घोरबिरली में बैठे हुए हैं।"

"फिर म्लेच्छ कहां गया ?"

"घोरविटलो को नष्ट करने का उसको हिम्मत न पडो, वह मरुस्थल मे भाग गया हैं, कहा चला गया, यही तो पता नहो चलता ।"

"और आप उसे ढूंढने रवाना हुए हैं ?" सामन्त ने पूछा ।

"हा उसको सेना घबरा उठो हैं, उसका पता चले तो फिर राजपूतो का हाथ उसे दिखावें ।

"तो राजाजो मै यह निश्चित बताता हू कि इस राह पर म्लेच्छ नहीं है । मै झालोर से सोधा चला आ रहा हू ।"

"हाथ से सटक गया मालूम होता हैं" बडे योद्धा ने धोरे से कहा और फिर उसने सामन्त को सम्बोधित किया, "बापू ! तुम हमारे साथ चलो, सारंगदेव बापा स्नेह से तुम्हारा स्वागत करेंगे ।"

"नहीं ! मुझे तो घोघाबापा के पास सत्वर पहुंचना हैं ।"

"भाई रहने दो, अभी तो हमारे साथ चलो," युवक योद्धा ने पुनः सामन्त को विनती की ।

"यह कैसे हो सकता है, मुझे तो सोधे घोघागढ जाने का आदेश हैं। मैं तो यह चला । रात पडने से पहिले तो मै भम्भरिया जा पहुंचूंगा ।"

"अरे भाई ! यह नहीं हो सकता ।"

"मुझे तो जाना ही चाहिये ।"

"किसका आदेश है ?" युवक योद्धा ने प्रश्न किया ।

"किसका, भगवान् सोमनाथ का ।"

"कौनसा, कोनसा ?" बडे योद्धा ने सामन्त की ऊँटनी को रोकने का प्रयत्न किया ।

सामन्त सशङ्क हुआ । ये राजपूत रोकने के लिए इतना आग्रह क्यो कर रहे हैं । किसो प्रकार का छल तो न हो, वे म्लेच्छ के दास तो न हों ?

"यह आदेश तो घोघाबापा के लिए है, अन्य के लिए नही", यो कहकर सामन्त ने हुङ्कार के साथ अपनी ऊँटनी आगे बढाई । उसके

हृदय में एकदम उत्साह की बाढ आगई थी, अब घोघागढ तो बिलकुल समीप ही था, फिर भी वह पीछे लौट जाय!" बड़े योद्धा की आंखो मे आंसू भर आये, उसने निःश्वास लिया और युवक योद्धा की ओर निहारा। उसकी आंखों में भी आंसू थे। वहीं बड़ी देर तक मूक वदन से दोनों जने उत्साह के साथ जाते हुए सामन्त की ओर देखते रहे।

भम्भरिया दिखाई पड़ा तब तक सामन्त को रास्ते में कोई न मिला, अतएव सारी वस्तुस्थिति को एकत्रित कर विचार करनेका सामन्तको खूब समय मिला। मुलतान तो म्लेच्छ के हाथ में चला गया था। सपादलक्ष हार चुका था, चौहान के सिरताज वीर बालमदेव मर चुके थे। म्लेच्छ घोरबिटली छोड मरुभूमि के किसी मार्ग पर आगे बढ रहा था और रास्ते में गांवों का नाश होता जा रहा था। परन्तु घोघाघढ का क्या हुआ? वह तो मुलतान से सपादलक्ष आते हुए आडे रास्ते पड़ता था, म्लेच्छ ने क्या उसे भी धराशायी बना दिया या उसे छोड़ वह सीधे ही सपादलक्ष जा पहुँचा? घोघाबापा का क्या हुआ और पिताजी का क्या हुआ? सामन्त की छाती पर कोई घाव लग रहा हो उस तरह वेदना होने लगी, परन्तु उसने दृष्टि क्षितिज पर गडा रक्खी थी और रसना पर सोमनाथ का रटन सतत हो रहा था। जीते जी महादेव जी की आज्ञा उठाते उठाते उसे और उसके कुल को क्या होने वाला था!

उसका उत्साह मन्द हुआ, निराशा छाने लगी। दूर से भम्भरिया का गढ़ दिखाई देने लगा और उसे फिर कुछ उत्साह होने लगा—किन्तु वह था केवल पल भर के लिए—भम्भरिया के गढ से उड़ते हुए गिद्धों का झुण्ड उड़ता दिखाई पड़ा और मन्दोत्साह हो वह गहरी हाय पुकारने लगा।

रेतीले अरण्य में—विशाल एकान्त में—छः सौ हाथ उँची टेकरी पर भम्भरिया का गढ भयङ्कर शान्ति के मध्य खडा था। गिद्धो का समूह जिसने उसे पलभर सचिन्त बना दिया, उड चुका था, और जहां तक दृष्टि जा सकती थी वहां निश्चेतनता ही व्याप्त थी।

भम्भरिया घोघागढ़ का थाना था, वहां दुर्गपाल रहता था, कुछ पैदल सिपाही रहते थे और चरवाहों की बस्ती थी। वहां घोघाबापा का छोटा-सा महल था और एक महादेव जी का मन्दिर था। आते-जाते काफिले वहां विश्राम के लिए ठहरते और घोघाबापा के आतिथ्य का सत्कार करते। जाते आते बटोही और ऊँटनियों का प्रिय वह विश्राम-स्थान सदैव लोगों के आवागमन से भरा हुआ रहता था। उस समय वह अपने खुले द्वार के कारण दन्तहीन वदन के समान भयावह हो रहा था। दरवाजे के सामने न था कोई बटोही और न थी वहां एक भी ऊँटनी। सामन्त की छाती भर आई। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से ऊँचा देखा। भम्भरिया महादेव की ध्वजा जहा सदा उडती थी वहा अब कोई न था। घोघाबापा के गर्व का वह चिह्न गायब था। सामन्त की आंखो के सामने अन्धेरा छा गया था; उसने आंखों को पोछकर फिरसे देखा। सौभाग्य चिह्नों से विहीन युवती के समान भम्भरिया विना ध्वजा के छविहीन सा प्रतीत हो रहा था। उसे कम्प हुआ और उसने ऊँटनी दौडाई।

बात यथार्थ थी। सारे निश्चेष्ट चित्रपट पर उसकी ऊँटनी ही जीवन का प्रतीक थी। दरवाज़ा जैसा था वैसा ही रहा—काल की गुफा के समान भयावह। गढ के कंगूरे जैसे थे वैसे ही रहे—मानवीय पदरव से विहीन। ऊँटनी वेग से गढ़ पर जा चढी, परन्तु वहां उसके श्वासोच्छ्वास के सिवा कोई दूसरी ध्वनि न थी। वह द्वार के समीप आया। किसी से तोडे हुए द्वार से वह भीतर गया और उसकी शून्य शालाओं को देखा। एक चमगीदड अवश्य फर-फर कर रहा था जो उसके आसपास उडा और फिर उड गया—भयङ्कर !

पिछला विश्राम जितना शून्य था वैसा ही यह गढ भी था, किसी भयङ्कर राक्षस के कोप के कारण चेतनहीन। सब जैसा-का-जैसा ही था केवल प्राणी के स्पर्श की सञ्जीवनी से विहीन, सूने साज के समान सङ्गीत करने वाली अङ्गुलि के विना। सामन्त को वह निर्जनता भयङ्कर

लगी, वह ऊँटनी से उतरा और उसे बांधने लगा।

दुर्गपाल का घर खुला था, वह द्वार में जा खड़ा हुआ और चौंक उठा। शून्यता में एक भयावह आवाज़ हुई। एक बड़ा चूहा दिन-दिहाड़े स्वस्थता से कुछ करड़ रहा था। वह निडर चूहा कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा और पास ही एक बिल में जा घुसा। आकुल हो सामन्त वहां से आगे बढ़ा, दुर्गपाल को हाँक मारने की होश भी उसे न थी। घबराहट के कारण आगे-पीछे घूमता रहा। मानों कोई घातक उसके पीछे हो पड़ा हो। थोड़ी-थोड़ी देर में वह अपने और अपनी ऊँटनी के पदरव के कारण कांपने लगता और आगे बढ़ने में असमर्थ हो वह वहीं रह जाता। उसके हृदय की धड़कन घन की चोट के समान उसके मस्तिष्क पर आघात कर रही थी।

एक बार वृक्ष की पत्तियां फरफराईं और वह चौंका। भय के कारण उसके मुंह से आवाज़ निकल ही पड़ी "कौन हो ?" मानों वह जीवित ही दब गया हो, उस तरह आस-पास के शून्य मकानों से प्रतिशब्द उसे सुनाई दिया "कौन हो ?"

उसके हृदय मे हिम जम गया 'गढवई—गढवई—गढवई'। प्रतिध्वनी ने गढ़वई शब्द का आन्दोलन कर मानों सारे गढ को ही भर दिया था। उसको अपने पिता का स्मरण हुआ—यहीं से उसकी राह देखने वाले थे। यही उनकी गोद में बैठने की वह आशा लगाए था। "बापा! बापा! बापा! बापा!" उसने रोते स्वर से आवाज़ें लगाईं। फिर प्रतिशब्द ने क्रूरता के साथ विडम्बना की "बापा! बापा! बापा!" शून्यता में उस नाद का लय हुआ और वह ऊँटनी की नाथ खोल मन्दिर की ओर भागा। उसके दांत कडकडा रहे थे और रगरग कांप रही थी। अकेला—अकेला उस सनसनाते एकान्त मे—वह दौड़ा मानो कोई प्रेत-सेना उसका पीछा कर रही हो और वह श्वास लेने मे भी असमर्थ। भम्मरिया महादेव का मन्दिर सामने ही था वह उसने देखा—न देखा ध्वजदण्ड भग्न था—कलश किसी ने तोड़ डाला था—काले सँगमरमर

के सुन्दर नन्दी के दो टुकडे पड़े थे। सारी सृष्टि विप्लवकारी ताण्डव करते हुए दीख पडी और उसकी आखे लाल, भयभीत और अमानुषी बन गईं। उसका सांस कटने लगा और उसकी कनपटियां फटने लगी। वह मन्दिर मे बैठ गया और पुकारने लगा, "शम्भो ! शम्भो ! शम्भो !" मन्दिर के गुम्बज से हृदय-भेदी प्रतिशब्द सुनाई दिया, "शम्भो ! शम्भो ! शम्भो !"

वह महादेव जी के पास पहुंचा। अन्धेरा छाई हुई आंखों से कुछ दिखाई नही दिया—किन्तु उसने प्रणिपात किया। वह अपने इष्टदेव, अपने पिता, अपने नाथ की शरण पहुंचा। खिसकता हुआ, पथरीली भूमिपर अपना सिर टिकाकर वह कुछ देर तक पडा रहा।

फिर वह उठा। आधे अन्धेरे मे उसकी आंखे स्थिर हो चुकी थीं अतएव उसे कुछ इधर-उधर सूझने लगा। कोई भूतावलि ही मानो दृष्टिगोचर हुई हो इस तरह उसने भयङ्कर चीख मारी, पीछे हटा, और दोनो हाथों से उसने अपनी आंखें मींच लीं।

वहां कुलदेवता भम्भरिया महादेव के बाण के दो टुकडे अलग-अलग पडे हुए थे और पागल मनुष्य की तरह फटी आंखों से वह चीख मारने लगा—एक—दो—तीन। वह बेसुध होता जा रहा था। पीछे हटकर वह दीवार का सहारा लेने लगा—और सरका—गिर पडा—देवालय चक्कर काटता नज़र आया और बाण के पीछे उसने एक वृद्ध को हाथ में दीपक लेकर खडा हुआ देखा। उस वृद्ध को वह पहिचानता था—कहां और किस अवस्था मे उसका परिचय हुआ था यह उसे याद न आया।

एक चमगीदड के साथ उसकी टक्कर हुई—उसने गगनभेदी चीख मारी और उसकी आंखों के सामने चारो ओर अन्धेरा छा गया।

: ४ :

सामन्त के मस्तिष्क मे एक सुन्दर छोटी-सी स्त्री समा रही थी। वह उसकी ओर देख हँस रही थी। एक सुकोमल हाथ से उसके

भाल पर भस्म लगाती वह दिखाई दी—मानों वह कोकिलकण्ठ से कहती हो—"वीर ! जल्दी ही वापिस होना " परन्तु उसका सिर ठनक रहा था—पहिले जितना नहीं, कुछ कम । एक हाथ उसे कुछ पिला रहा था—उसीका ही ? हां, उस शान्तिदायी हाथ के बिना उस की धधकती रगों मे शान्ति कौन प्रवाहित करता ! उसने हाथ पकडा । हां—वही हाथ—उसने ज़ोर से हाथ पकडा । इस जन्म, जन्म-जन्मान्तर, यह हाथ वह कभी नही छोडेगा । दूसरा हाथ उसके भालपर फिरा, किस मृदुता के साथ ? उसने अपनी आंखे खोलने का प्रयत्न किया, परन्तु निष्फल हुआ । उसे वही मुख फिर से देखना था—सुकुमार सुरेख, तेजस्वी । किन्तु वह कुछ अजीब ही घटना थी कि जब वह आंख उठा कर देखने लगता तो उसे उसके बदले एक दाढ़ीवाला वृद्ध मुँह दिखलाई देता । वह उसका मुख न था, वह किस वृद्ध परिचित पुरुष का था । उसने वही सुकुमार मुख फिर से देखने का प्रयत्न किया परन्तु उसकी आंख के सामने एक वृद्ध, सूखे मनुष्य का मुंह दिखता रहता । छोटी आंखें स्नेहार्द्र हो उसे देख रही थी और उनमें अश्रु विद्यमान थे ।

उसने प्रयत्नपूर्वक आंख खोली और चेहरे को पहिचाना । बालपन से उसने उसे देखा था, उसी मुख से उसने गायत्री सीखी थी, उसी हाथ ने उसे कलम पकड़नी सिखाई थी । किसका—किसका हाथ ? उसे स्मरण हुआ—वह था राजगुरु नन्दिदत्त का ।

"राजगुरु !" उसने स्थिर हो बैठने का प्रयत्न किया, परन्तु उसकी कमर टूटी जारही थी अतएव वह एकदम संभल न सका । नन्दिदत्त ने उसे मदद की और वह भयाकुल हो चारों ओर निहारने लगा ।

यही है भम्भरियाका गढ जहां वह आया था, यही है वह शिवालय जिसमें मूर्ति के टुकडे पडे हुए उसने देखे थे । वृद्ध राजगुरु उसकी ओर देखते रहे । इसके अतिरिक्त सब पूर्ववत् निश्चेतन ही था ।

ऐसा करने से काम किस तरह चल सकेगा ?"

"राजगुरु ! यह क्या है ? यह गढ ऐसा क्यों है ? यह मन्दिर इस अवस्था मे कैसे हुआ ? देव की मूर्ति भग्न क्योंकर हुई और घोघा-बापा..." उसका गला भर आया और वह अधिक बोल न सका ।

"बेटा ! शान्ति रखे बिना कोई उपाय नही। सृष्टि पर प्रलयकाल आ घिरा है।

: ५ :

"इस प्रणष्ट सृष्टि पर तू और मैं केवल दो ही व्यक्ति रहे हैं।"

"परन्तु कहो तो सही घोघाबापा कहा हैं ?"

"मेरे यजमान, अक्षय कीर्ति के स्वामी, कैलाशवासी हुए हैं।"

"और बाकी दूसरे लोग कहां हैं ? भम्भरिया यों निर्जन क्यों है ? कहो, कहो, जल्दी कहो।"

"कहता हू" नन्दिदत्त ने सचेत किया "परन्तु सुनने की सामर्थ्य है ?"

"है, है, जो बीता है वह मुझे सब सुनना है।"

"तो फिर कभी जिसकी कल्पना न की हो ऐसी घटनाएं सुन ले। ले यह मात्रा तैयार रक्खी है पी जा, इससे तुझे शान्ति होगी। और साथ ही यह राब तैयार की है सो उसे भी पीले।"

सामन्त ने मात्रा चाट ली और राब पी ली। तब तक नन्दिदत्त उसकी ओर स्नेह से देखता रहा।

"कहता हू भाई ! कहता हूं। कहते हुए मेरा हृदय भर जाता है, कारण ऐसी कथा इतिहास अथवा पुराण ने कभी लिखी ही नही है। सूर्य-वंशियों की कीर्ति तो सूर्य के समान उज्ज्वल है परन्तु घोघाबापा की यशोगाथा के सामने उस उज्ज्वलता की कहीं गणना न रही। मैं महादेवजी का ऋणी हूं कि मुझे उस गाथा को रचनावस्था में देखने का और आज वर्णन करने का प्रसङ्ग मिला है", वृद्ध ने धीमे-धीमे स्वर से कहना शुरू किया।

अधीर सामन्त ने कहा, "कहिए राजगुरु कहिए। मैं यहां से गया तब से शृङ्खलाबद्ध सब बात कहिए।"

"स्मरण है? तुझे और तेरे पिता को विदा कर मैं लौट गया था। मैं घोघाबापा के पास गया और बड़ी देर तक तुम दोनों के शौर्य की चर्चा की। बापा की श्रद्धा थी कि तुम दोनो ही उनके कुल को तिराने वाले हो।"

"फिर?"

"कुछ दिन बाद समाचार मिले कि गज़नी का अमीर अगणित सैन्य को लेकर भगवान् सोमनाथ को तोड़ने चढ़कर आ रहा है। हम इस बात को सुन खूब हँसे" राजगुरु ने निःश्वास छोड़ा।

"घोघाबापा ने मूंछ पर ताव दिया और अट्टहास के साथ कहा 'आवे तो सही, मेरा लड़का भीमपाल लोहकोट मे बैठा है, मुलतान मे अजयसिह की पक्की रोक है, मरुस्थली के सिरे पर मैं हूं, और सपादलच में है मेरा वीर वालमदेव। आ तो सही मैं तुझे कुछ स्वाद चखाऊं।"

"फिर?" सामन्त ने प्रश्न किया।

"कुछ ही दिन पीछे और दुःखद समाचार मिलने लगे। जयपाल के पुत्र भीमपाल ने अपनी कीर्ति पर पानी फेर दिया। उस कायर ने म्लेच्छ को मार्ग दे दिया—जान बचा कर जगत् बेच दिया।"वृद्ध ने सिर घुमाया। सामन्त गुम-सुम बैठा रहा, कारण, जान बचाकर जगत् बेचने के एक-दो नमूने वह देख चुका था।

"और फिर?" नन्दिदत्त ने आगे कहा, "मुलतान ने म्लेच्छ का स्वागत किया। सूर्य और चन्द्र के वंशजों ने मुख में तिनका ले उसकी शरण ली। दिन और रात मुलतान में गजनो ने मौज की। राजपूतों ने गौ ब्राह्मण की रक्षा छोड़ी और भगवान् के साथ द्रोह करने में उसके साथी हुए। वहां से म्लेच्छ ने बापा को सन्देश भेजा।"

"कैसा?"

"हम सब राजगढ में बैठे थे और म्लेच्छ की सन्धि की चर्चा सुनते

थे। जिस दिन से मुलतान मे म्लेच्छ आया उसी दिन से घोघाबापा ने बोलना बन्द कर दिया था। तुझे मालूम है, जब उन्हे क्रोध आता था तब वे कैसे दिखाई देते थे। उनकी आंखें बिजली के समान चमकने लगीं, उनके होठ लोहे के चिमटे के समान बन्द होगए और उनकी मूंछ कोप के कारण खडी होगई। जब उनको इस प्रकार का गुस्सा आजाता था तो मेरे सिवा उनसे कोई बोल भी न सकता था। उस समय मुझसे भी कुछ कहा न गया।"

"फिर जब वह सन्धि का प्रस्ताव लेकर आया तब क्या हुआ ?"

"सन्धि का प्रस्ताव लेकर दो पुरुष आये—एक था युवक—सालार मसूद—ऊँचा, तेजस्वी और अभिमानी, और दूसरा था एक अधेड़ उम्र का देशद्रोही—धर्म द्रोही।"

"क्या राजपूत ?"

"नहीं, वह जन्म से हजाम था, किन्तु म्लेच्छ की सेवा कर उसने प्रतिष्ठा पाई थी। वह दुभाषिया का काम करता था। उसका नाम तिलक था। हम बैठे थे। वहा वह आया और उसने घोघाबापाके चरणों में पूरा भरा हुआ हीरे मोती का थाल लाकर रक्खा। घोघा-बापा मूक वदन से देखते रहे और मैंने पूछा 'बोलो किस काम आये हो और इस भेंट का क्या मतलब है?' तिलकने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहा 'घोघाराणा! आपकी शूर वीरता की प्रशंसा से मुग्ध हो गज़नी के यमीनुद्दोला महमूद ने यह भेंट भेजी है।' इन शब्दो को सुन बापा की मूंछ ज़ोर से फडफडाने लगी, परन्तु बन्द किये हुए होठो से एक भी शब्द न निकला।

"मैंने आगे बढकर फिर पूछा, 'वह क्या मांगता है ?' तिलक ने विनय भाव से हाथ जोडकर कहा, 'मरुस्थल के महाराज घोघागढ़ के स्वामी से अमीर विनती करता है कि मुझे रेगिस्तान होकर प्रभास जाने का मार्ग मिले।"

"ज्योंही वह यों बोला कि घोघाबापा ने मूंछ पर हाथ फेरा

और उनकी जाज्वल्यमान आंखों के प्रकाश से सूर्य का तेज फीका पड़ने लगा। मुझे प्रतीत हुआकि अब बिजली तड़पने वाली है। अस्सीवर्षतक जिसने किसी से झुकता हुआ व्यवहार न किया वह म्लेच्छ के साथ कैसे कर सकता है। बापा का हाथ मूंछ पर बल पर बल देता था और सामने तिलक हाथ जोडकर जवाब की राह देखता खड़ा था।"

"थोडी देर तक कोई नही बोला। फिर जैसे वज्रपात होने से पहले घनघोर गर्जना होती है उसी तरह घोघाबापा की आवाज़ सुनाई दी।"

"तेरा अमीर मुझसे मार्ग याचना करता है—यहां से जाकर भगवान् सोमनाथ के मन्दिर को तोडने को और उसके बदले मे यह भेंट !"

"तिलक ने उत्तर दिया, 'जी हां'। सालार मसूद मूंछ पर ताव देता ही रहा। और जिस तरह आकाश फटता हो और बिजली गिरती हो उसी तरह कूदकर खडे हुए घोघाबापा की भयङ्कर गर्जना से गढ कम्पितहो उठा।'जा,अपने मालिक से जाकर कहना कि उसको हिम्मतहो तो मरुभूमि में पैर रखे—विशेष कर घोघाबापा का एक भी रुधिर बिन्दु सलामत है तब तक।' इतना कह जैसे वज्राघात से पहाड फटता हो वैसे एक लात से हीरे मोती के थाल को बाहर तक घोघाबापा ने उछाल फेंका।"

"धन्य बापा !" सामन्त बोल उठा।

"धन्य ? उस क्षण तो घोघाबापा तो रुद्र के अवतार हो रहे थे, उनकी आंखो में सहस्र सूर्य उतर आये थे, उनके स्वर में रुद्रों का निःश्वास था और बाहु में परशुराम का शौर्य। और एक भी शब्द अधिक न बोलते हुए बापा वहां से चल पडे। वे दूत फ़ीके चेहरो से एक दूसरे की ओर देखते रहे।

: ६ :

"पन्द्रह दिन तक हमने तैयारी की—गढ को सम्हाला, हथियार तैयार किये, चारणों के गायन सुने। तिलक लगाकर सूर्यवंशी राजन्य

तैयार हुए। भांति-भांति के वादित्र बजने लगे। चौहान वधूजन ने अपने स्वामियों के लिए प्रार्थना की। मैंने शतचण्डी का पाठ आरम्भ किया।"

"एक दिन हम गढ पर खडे-खडे टकटकी लगाकर देख रहे थे। उसी समय मानो शेषनाग सरकता-सरकता आरहा हो, गज़नी के अमीर की महासेना क्षितिज से आती हुई नज़र आई। मैं तो भय व्याकुल हो उठा—सैन्य इतना होगा ऐसी तो मैंने कभी कल्पना भी न की थी। घोघाबापा की ओर देखा, उनकी आंखे विकराल बन रही थीं, उनका दाहिना हाथ खञ्जर के साथ खेल रहा था। 'बापा!,' मैंने कहा, 'यह तो कभी ध्यान में न आया था कि यह सेना इतनी ज़बरदस्त होगी।"

"घोघाबापा खिलखिला कर हँसे, 'नन्दिदत्त! त्रिशूल का धारण करने वाला जिसके साथ है उसका बाल भी बांका कौन कर सकता है', इतना कहकर वे थोडी देर तक आती हुई सेना को देखते रहे। उन्होंने एकदम पीछे फिरकर मेरा हाथ पकड़ा और कहा, 'ब्रह्मदेव! आप हमारे कुलगुरु—आपके ही आर्शीवाद से हमारा तेज तपता है—कृपाकर एक वचन दो।"

"मैंने वचन दिया और घोघाबापा धीमे स्वर से बोले, 'घोघाराणा का सङ्कल्प पूरा हो ऐसी तो आशा नहीं—प्राण जायं तो भले जायं, किन्तु एक गिरह भी जमीन मैं उसे न दूंगा, परन्तु यदि मेरा कैलाशवास हो जाय तो मेरा अग्नि-संस्कार आप स्वयं करना और मेरे सज्जन और सामन्त से कहना कि गया जाकर मेरा श्राद्ध करे।' पहले तो मुझे वचन देते हुए सङ्कोच हुआ। मेरे यजमान का रुधिर न रहे तो मुझे भूभार होकर रहने में लाभ? तथापि मुझसे बापा की आज्ञा की अवहेलना न हुई। मैंने वचन दिया और उत्साहपूर्ण हाथों से तथा हर्षित हृदय से उस नरशार्दूल ने रणशङ्ख बजाया और सैन्य एकत्रित करने में वे उद्यत हुए।"

"फिर क्या हुआ ?"

"कर्म की गति कौन टाल सकता है; घोघागढ में आठसौ राजपूत, तीनसौ दूसरे, और सातसौ स्त्रियां थी। और विपक्ष में तो मानवों का महासागर। यवनोंने फिर से दूत भेजे। तिलक पुनः आया और हाथजोड़ कर विनय करने लगा 'क्यों नाहक मौत के मुंह मे घुस रहे हो ?' किन्तु घोघाबापा कभी भी एक से दो हुए ? वे बोले, "मौत ! अरे मौत तो जिस दिन से मैं जन्मा उसी दिन से मेरे पंजे मे आकर बैठी है। चल जल्दी कर, छोकरे ! हिम्मत हो तो लड़ डाल।' फिर तो गढ़ के दरवाज़े बन्द हुए। दीवारों पर बाणावली वीर तनकर खड़े हुए। नीचे मैदान में खडा हुआ अमीर तो दांत पीसने लगा। अठारह अक्षौहिणी यवन सेना गिरिश्रृङ्ग पर विराजमान गरुडराज के समान घोघाबापा की प्रशंसा कर रही थी। सांझ हुई कि हम सब ध्यान से नीचे देखने लगे अब अमीर क्या करेगा ? भारी घोघागढ को कौन तोड सकता है ? उसके गहरे, सीधे परकोट पर न तो चढ सकते थे हाथी और न कभी चढ़ पायं घोड़े। उसकी गगन स्पर्शी दीवारोंको कुदाकर किस मां के जाये मे बाण फेकने की हिम्मत है ?"

आतुर सामन्त तो वृद्ध की बाते दत्तचित्त हो सुन रहा था।

"हमने देखा कि अमीर घबराया। घोघागढ़ सर करने में उसे बरसों बीत जायं और सोमनाथ को भ्रष्ट करने का मनोरथ तो मन में ही रह जाय। सारी रात उसकी सेना में कुछ दौड़ा-दौडी होती हुई मालूम हुई। मशालें दौड़ीं, कुछ घोडे दौड़े और कुछ डंके बजे और पौ फटते शेषनाग के समान वह प्रचण्ड सेना गढ के किनारे हो मरुभूमि की ओर आगे बढने लगी। यवन ने हार खाई। घोघागढ रहा सदा के समान दुर्धर्ष और दुर्जय हमारे कण्ठो से निकली हुई हरहर-महादेव की विजय ध्वनि यवनसेना को व्याकुल कर रही थी।

: ७ :

घोघाबापा के क्रोध का पार न रहा। उनका हाथ तलवार की मूठ पर

था और मूंछ क्रोध में फरफराती थी, आंखें चमकती थीं। भूले पड़े हुए भूखे बाघ के समान उन्होंने गर्जना की, 'कायर मेरे हाथ से छूटना चाहते है ?' हम लोग उनके आशय को समझ गए, उन्होंने तो पीछे पड़कर यवन सेना का संहार करना था। रानियां कांप उठी। चौहान वीरों की छाती न हुई, कारण वे तो थे गिने-गिनाये और यवन थे शतसहस्त्र। महादेव जी ने रक्षा की तो भी फिर यम की दाढ में घुसना ? मेरी कल्पना तो स्तब्ध हो गई। मूक वदन से मै शिवकवच का पाठ करने लगा।"

"फिर घोघाबापा बोले, नब्बे वर्ष के परम वार्धक्य की अपनी शोभा से सबको परास्त करते, मानो भगवान सोमनाथ ही ने प्रेरणा की हो इस तरह उन्होंने कहा 'मैने नब्बे वर्ष तक सोमनाथ की पूजा की है। सत्तर वर्ष तक मैं मरुस्थल का अधिकारी रहा—मेरी आज्ञा के बिना पक्षी भी इधर से उडा नही और अब मैं म्लेच्छ को मार्ग दूं, और वह भी सोमनाथ को भ्रष्ट करने ? कुल-कलङ्को ! तुम यहां रहो और अपनी कायरता के कारण उपर्जित कीर्त्ति का उपभोग करो। मैने अपने जीवन भर सोमनाथ का जयघोष किया है और मेरे जीते जी सदा सोमनाथ की जय ही रहेगी।"

"गढवई ने लडखडाती हुई जीभ से हाथ जोडकर कहा 'बापा ! दुश्मन इतने अधिक हैं कि हमारा चुटकी मे चूरा हो जायगा' —और यह बात भी सत्य थी। परन्तु घोघाबापा बिल्कुल होगए, उनका सिर आकाश से स्पर्श करने लगा और मुझे भय हुआ कि वे तत्काल ही गढवई पर वार करदें।"

"सिह के सदृश उन्होंने गर्जना की, 'मूर्ख ! रिपुगण तो संख्यातीत और हम अल्पसख्यक, यों तो भीरू जन कहते हैं। आज मेरी चौकी को लांघकर यवन भाग रहा —अब तो मुझे और तुम्हे जीने का क्या अधिकार है ? सोमनाथ का सौंपा हुआ काम पूरा न हो सका, अतएव श्वास लेना भी पातक है। देव ने हमें यहां भेजा है और आज देव ही हमें बुला रहे हैं—तैयार हो जाओ।' इन वचनों के साथ बापा ने अपना

खड्ग खींच लिया और वह अन्धकार से आक्रान्त गगन विद्युत के समान चमक उठा। 'धन्य है, धन्य है' पुकारते क्षणभर मुझे मूर्छा आगई। घोघाबापा जैसे वचन कौन कह सकता था? सब पुत्र-परिवार ने खड्ग खींच लिए। समस्त नारीगण ने कङ्कण का नाद किया और मैं शिवकवच के द्वारा सबकी सुरक्षा कर रहा था।"

"दौड़ा-दौड़ मचने लगी। तैयारी के वादित्र बजने लगे। घोड़े और ऊँटों ने हर्षनाद किया। केसर और कुङ्कुम का स्तोम उठ गया था। सामन्त! देवताओं को भी देखने के लिए दुर्लभ ऐसे चौहान वीरों के उस उत्सव को मैंने देखा। मेरे नयनो मे तो हर्ष के अश्रु भरे थे और उनके अन्तराल में मैंने ईश्वर और पार्वती को विमान से पुष्प-वृष्टि करते देखा।"

घोघाबापा ने ज़रीन बागे पहिने, सिरपर केसरिया पगडी रक्खी और गले मे लाल फूलों का हार पहना। चौहान वंश के वीरों ने कमर कसी, मैंने पूजा का थाल तैयार कर देवार्चन किया। केसरिया वीरो को कुङ्कुम का तिलक किया और आशीर्वचन का उच्चारण किया 'यावच्चन्द्र दिवाकर घोघाराणा का यश उज्ज्वल रहे'। द्वार के पास घोघाबापा ने मुझे बुलाया और सब लोग सुन लें इस प्रकार कहा 'नन्दिदत्त जी! आपके पिता ने मुझे राज्यतिलक कर गद्दी पर बिठाया और आज आपने स्वर्ग जाते हुए मुझे विजयमाला पहिनाई। ब्रह्मदेव! मुझे अभिवचन दीजिये! ज्योंही चौहानवीर गिरे उनकी सती स्त्रियो को अग्निदेव के अर्पण करना। क्यों छोकरियो! 'बापा ने इस तरह झरोखे में कुङ्कुम अक्षत लेकर खडी हुई वीराङ्गनाओं को सम्बोधित किया, 'हमारे साथ कैलाश चलने की हिम्मत है?' इतना कहकर वे हंसे मानों वे विवाह-मण्डप में कुटुम्बीजनों को निमन्त्रण ही दे रहे हों। कमल समान सुन्दर मुखों पर निमन्त्रण का सुमधुर स्वीकार सुशोभित हो रहा था। सभी आंखो में हर्ष के अश्रु विद्यमान थे और वीरो ने भीषण गर्जना की 'जय सोमनाथ!"

"दरवाज़े खुले और उद्दीप्त सूर्यकी सुनहली किरणों में देदीप्यमान

चौहान वीर जगमगाते बागे केसरी पगडी और चमकते हुए खड्गों से वैरी-गण को अन्धित करते हुए-घूंघरूदार घोडे और ऊँटो को नचाते हुए गढ़ से उतरे । सबसे पहिले चार-चार गज आगे चौहान शिरोमणि बापा नीचे उतरे । गढ पर से मैं इन वृद्ध नेत्रों के द्वारा उस भव्य विजय प्रस्थान को देख रहा था । मरुस्थल का नरेश अपनी टेक निवाहने के लिए अपने समस्त परिवार का बलिदान देने को उद्यत था । धन्य हो, घोघाबापा ! धन्य हो ! देवताओं ने चन्दन वृष्टि की, केसरिया छींटो से घोघागढ शक्तिमान हो रहा था । जब चन्दन के छींटे उनपर गिरे तब घोघाबापा ने पुनः मेरी ओर देखा । वयोमान के गौरव से रेखाङ्कित उनका भव्य आनन मेरी ओर,अपने गुरू की ओर,आत्म-सन्तोष के कारण उल्लसित मृदु हास्य से देख रहा था । उन्होंने मुझसे पूछा 'अबतक मैं जीवित रहा, और अब मैं स्वयं ही वीरगति को प्राप्त करता हूं' । 'नहीं मैंने गद्गद् स्वर से कहा, 'धन्य हैं,घोघाराणा ! धन्य हैं" ।

"नीचे यवन सेना स्तब्ध हो देखती रही और इस दिव्य दर्शन से मुग्ध हो तुरन्त ही धन्यवाद का नाद करने लगी । पहले तो कोई न समझ पाया कि किस कारण बचे-बचाये घोघाबापा किनारा काटकर चढी जाती हुई सेना से मुठभेड करने दौड रहे थे । कुछ देर बाद उनकी समझ में आया । काल के समान विकराल चौहान वीर मरने-मारने को पीछे धावा कर रहे थे । यवन सेना में 'अल्ला हो अकबर' की गर्जना होने लगी । हरी पगडी और लाल दाढी के द्वारा पहिचान में आने वाला अमीर हाथी पर झूमता हुआ आदेश दे रहा था । सेना ने लक्ष शस्त्रों के द्वारा चौहान वीरों का सत्कार किया । घोघाबापा झूम पडे । कोई नाव समुद्र तरङ्गों को जिस प्रकार चारों ओर लहराती हुई आगे बढती हो उसी तरह घोघाबापा आगे बढे । उनकी गर्जना गढ तक श्रुतिगोचर होती थी । जहां उनका हाथ फिरता वहां मनुष्य समूह में संहार होने लगता । उनकी केसरिया पगडी उस भीड में भी चमकती हुई आगे बढती दिखाई दी—फिर कुछ अदृश्य हुई—फिर चमकी—"

—और नन्दिदत्त रो पड़ा। सामन्त तो पागल जैसा देखता ही रह गया।

"—और चमकी—और गिरपड़ी—सहस्त्र वैरियों ने अपनी तलवारों से उनकी मृत्यु शय्या पर छत्र किया—समाप्ति हुई— घोघाबापा कैलाशवासी हुए और उनका निशान झुका। मुझे अपना कर्त्तव्य करना था। सो मैं कोट से नीचे उतरा और सोमनाथ के मन्दिर मे पहुंचा। वहां सब एकत्रित हो चुके थे कुछ दुकानदार और सेवकगण थरथर कांपते थे। उन्हे जाकर मैं पिछले द्वार से बाहर छोड़ आया। जो स्वयं मरना न जानता हो उस मनुष्य जन्तु को मारने से क्या गौरव?"

"मेरा पुत्र शस्त्रविद्या से अनभिज्ञ था तथापि मैंने उसे घोघाबापा के साथ भेजा। जीवित अवस्था में जबहम मोक्ष दिलाते हैं तो मरने में साथ क्यों न दें? गढ मे केवल मैं ही एकाकी पुरुष था। अपने कलेजे पर पत्थर रखकर मुझे अपना कर्तव्य निबाहना था। बेटा, बेटा! मुझे यह सब परिणाम प्रत्यक्ष था।" इन शब्दों के साथ नन्दिदत्त निःश्वास ले रोने लगा। दुःख के महान् पर्वत के नीचे दबे हुए सामन्त को अश्रु का भी सहारा न रहा।

"फिर, भाई! मैंने इन बेयमान हाथों से अपना कर्तव्य किया। मन्दिर के चौक मे चन्दन-काष्ठ की चिताऐं रची और भाई! जिन बालिकाओं का विवाह करवाया, जिनका सीमन्त संस्कार करवाया, जिन की सन्तति को मैंने विद्यारम्भ करवाया वे सब सुकुमार लाडली स्त्रियां वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो बाहर आईं। मन्दिर के चबूतरे पर जहां मैं बैठा था वहां वे नूपुर के ताल के साथ ठुमकती हुई आईं और मेरे पैरों में गिरी। अश्रुधारा ने मुझे अन्धित कर दिया था तथापि कुङ्कम-चन्दन के द्वारा मैंने उनके भाल कपोलों को सुवासित किया। उन्होंने सूर्यनारायण की अक्षत एवं प्रसूनों के द्वारा पूजन की, कुलदेवता की आराधना की, और सहर्ष वदनों से अपने-अपने पति के समागम के हेतु

अभिसारिका के समान सोत्साह हो वीराङ्गनाओं ने मेरा सत्कार किया। मेरी सती पुत्रवधू मेरे पैरों में गिरी"—कहते कहते नन्दीदत्त ने गहरी साँस ली।

"और अपने मधुर कण्ठ से लावण्य छटकाती हुई वे देवियां चिता पर आरूढ हुईं—और हे शम्भु! मैंने—उनके गुरु ने—उनके पिता ने—उनका अग्नि-संस्कार किया। मैं अङ्ग-प्रत्यङ्ग से कांपता रहा, मेरा मुख शम्भु का शुभ नाम रटता रहा, मेरी आंखों के सामने मेरे सोमनाथ और मेरा कर्तव्य—केवल दो ही वस्तुएँ थीं।"

"भाई! अग्नि भड-भड चेत उठी।"

"और, हे मेरे प्रभु! वह वीरता, और वह सौन्दर्य ज्वाला में भस्म होने लगा। उनकी वेदनापूर्ण ध्वनियों का श्रवण करने में असमर्थ हो मैं मन्दिर जा भागा और मैंने अपने सोमनाथ पर अपना सिर पटका। मैंने वहीं प्राण त्यागने की सोची······परन्तु, भाई? बापा ने मुझे वचन-बद्ध कर लिया था। तुझे और तेरे पिता से मुझे सब बात कह सुनानी थी। दयानिधि, भगवान्! तूने मुझे उसी पल क्यों न उठा लिया"—फिर नन्दिदत्त चबूतरे पर सिर पटक कर रोने लगा।

थोड़ी देर बाद वह कुछ स्वस्थ हुआ और उसने फिर कहना शुरू किया। "भाई! फिर मैं गढ पर गया और नीचे देखा तो सात घडी में घोघाबापा के वीरों का तो नामो-निशान भी न रहा। एक-एक कल्पनातीत पराक्रम कर शम्भु के शरण पहुँचा था। यवनों की एक टोली गढ चढ़ने की तैयारी कर रही थी।"

"मुझे भान होने लगा कि मेरा भी काम तमाम होने वाला है। तब अपने गढ की भींत में जो ओसारी है, जिससे बाहर निकल कर पिछले दरवाजे का रास्ता है उसका स्मरण कर मैं उसमें जा घुसा। नाचते, कूदते "अल्लाहो अकबर" के नारे लगाते यवन आ पहुँचे। उन्होंने सोचा था कि भीतर से कोई बचाव करेगा—परन्तु द्वार खुले थे तथापि छिपे सैनिक स्यात् बाण छोड़ेंगे इस भय से, वे धीमे-धीमे डग रखते आगे बढ़े, परन्तु

गढ की निर्जन विथियों को देख विस्मित हो रहे। वे चारो दिशाओं में हुङ्कार करते हुए फैल गए और फिर वे मन्दिर के चौक में जा पहुँचे। मैं छिद्रो में से देख रहा था। उन्होंने जलती हुई चिताएं देखीं। छः सौ वीराङ्गनाओ के शव देखे और वे दम छोड कर भागे। परन्तु उनमें से दो व्यक्ति टिके रहे, वे मन्दिर में घुसे। उनमें से एक ने शिखर पर चढ कर ध्वजा तोडी और दूसरे नरपिशाच ने मेरे देव का बाण भग्न किया। हे भगवन्, उस दृश्य को दिखाने के लिए तूने मुझे क्यो जीवित रक्खा?" और राजगुरु रो पडे। "कुछ देर बाद वे चले गए। सर्पाकार हो वह सेना भी सरक गई। कांपता, कलपता, केवल कर्त्तव्य करने के लिए ही प्राण धारण करता हुआ मैं बाहर आया। भाई! अपना घोघा-गढ—मेरे घोघाबापा का कीर्त्तिस्तम्भ श्मशान होकर रहा। जो प्राणसम प्रिय था-भस्मसात हो गया। परन्तु—परन्तु" नन्दिदत्त की आवाज़ रुकी "परन्तु अपने बापा का मुझे अग्नि-संस्कार करना था, भगवान के काम पर मरना उनका अधिकार था—मरने वाले को मोक्ष देना ये मेरा कर्तव्य था। धीरे-धीरे लडखडाते पैरों से मै गढ से नीचे उतरा। गिद्ध गढ पर मण्डराते थे और नीचे रणमें पडे हुए शवो पर गिद्धो की टोली झूम रही थी। मैं बडी कठिनाई से नीचे पहुंचा। मेरे राजपूत वीरो ने तो हद कर दी थी—प्रत्येक ने मरने से पहिले पांच-पांच वैरियों का हनन किया था। बडी कठिनाई से मैंने घोघाबापा के शव का शोध किया और किसी तरह मैं उसे सबसे दूर लाया। फिर गढ पर वापिस आया और चन्दन काष्ठ लेकर नीचे उतरा। और भाई! मैंने घोघाबापा का अग्निदाह किया। तत्पश्चात मैं वहां अधिक समय तक रह न सका; मेरे शरीर मे ज्वर था और मेरी जीभ सूखती थी। दो दिनो में गिद्धों ने कितने मुर्दे चूस डाले थे और उनमें से दुर्गन्धि उड रही थी।"

"इस भयङ्कर प्रेतलोक में मैं ही एक प्राणवान था और अपने प्राण मुझे त्यागने न थे। मैं वहां से भागा। रास्ते मे दो-चार भाग-कर आते हुए बटोहियों ने मुझे गरीब ब्राह्मण जानकर दयाभाव से भम्भ-

रिया लाकर छोड़ा।

"और यवन सेना ? "सामन्त ने पूछा।

"यवन सेना तो भम्भरिया की ओर नहीं आई परन्तु सपादलक्ष हो सीधे रास्ते चली गई। यहां कुछ आये ज़रूर, नहीं तो देव को भग्न कौन करता ? आख़िर मैं यहीं रह गया, मुझे भरोसा था कि यहां तुम कोई आ मिलोगे।"

"तो फिर घोघाबापा के कुल में अब"— सामन्त ने गहरी सांस लेते हुए कहा।

"तू मेरे बेटे ! और तेरा पिता"—

"शम्भु जाने उन्हें क्या हुआ होगा ?" दोनों एक दूसरे से लिपट कर हृदय फाड़ कर रोये।

सारी रात सामन्त भग्न-मन्दिर के सामने घूमता रहा। उसका पितृ-प्रेम, उसका शोक, क्रोध और वैर चुकाने की व्याकुलता सब एकत्र हो उस की आत्मा को हड़हड़ाता विष पिलाने को उद्यत कर रहे थे। दुःख में डूबे हुए एकाकी वीर पर सोमनाथ ने करुणा की। अनेक भावों की उर्मियों का अनुभव करने की उसकी शान्ति नष्ट हो गई और साथ-ही-साथ उसका बालकपन भी जाता रहा। भोर हुई और प्रेतसमान शुष्क सामन्त एकाग्र एवं विह्वल नेत्रों से भूमि की ओर देखता रहा।

"बेटा ! " नन्दिदत्त ने कहा " अब क्या विचार कर रहे हो ?"

"मैं ! क्रूर रसविहीन हास्य के साथ एकदम वृद्ध बने हुए सामन्त ने कहा "मुझे क्या विचार करना है, मैं तो अपने पिता की खोज में जाता हूँ—और आप ?"

"तू ले जाय तो तेरे साथ। तू मिल गया सो मेरा जीवन सार्थक हुआ। अब यदि शरीर रह जाय तो प्रभास पहुंच कर सोमनाथ के चरणों में प्राण त्यागना है।"

"तो फिर चलो, अपना रास्ता एक ही है। सोमनाथ जाते तो पहले गज़नी मिलेगा ? वह नहीं या मैं नहीं।"

और दो घड़ी वहां रहकर सामन्त नन्दिदत्त को ले भम्भरिया से वापिस अपने पिता और यवन की सेना की खोज करता हुआ चला, परन्तु जिस रास्ते आया था उस रास्ते नहीं। कारण, उसके पिता ने कहा था कि रणथम्भी माता के मन्दिर से वह सीधे होकर भम्भरिया आयेंगे। अतएव उसी राह पर उन्हें खोजने का निश्चय सामन्त ने किया। नन्दिदत्त ने भी अनुमोदन किया। जब वह बालक था तब उसी मार्ग से घोघाबापा सामन्त के पिता को साथ ले सोमनाथ का बाण ले आये थे। रास्ता यदि था तो सज्जन चौहान क्यों नहीं लौटे ? दोनों की कल्पना के सामने एक ही भयङ्कर उत्तर उपस्थित हुआ।

आठवां प्रकरण

सङ्कल्प सिद्धि में एकस्थ

: १ :

गज़नी के अमीर महमूद की सेना सज्जन चौहान के पीछे-पीछे पश्चिमाभिमुख चलने लगी। एक दिन चली, दूसरे दिन चली और तीसरे दिन चली। चौथे दिन सेना के चरवाहों ने शोर मचाना शुरु किया,यह प्रभास की दिशा मालूम नहीं होती,इस रास्ते तो ऐसा रेगिस्तान पड़ता है जहां किसी को जाते कभी सुना ही नहीं। यह बात फैलते-फैलते सालार मसूद के पास पहुंची और उसने सज्जन को धमकाया। परन्तु सज्जन एक से दो न हुआ। उसने कहा यही रास्ता है,चलना हो तो चलो वरना तुम अपने रास्ते जाओ। उसकी दृढता पर मसूद को फिर विश्वास हुआ।

पांचवें दिन सूर्य तपने लगा। घोड़े मरणतुल्य हो गए। मनुष्य त्राहि त्राहि करने लगे। असन्तोष सर्वत्र फैला और पुकार सुल्तान के कानों तक पहुंची। सज्जन को सुल्तान के सामने पेश किया गया परन्तुवह टस-से मस न हुआ। सुल्तान ने होशियार भूमियों को बुलवाया, उन्होंने सज्जन के साथ कई रास्तों की चर्चा की और परीक्षा ली,परन्तु उन सबको मानना पड़ा कि जितनी सज्जन को रास्तों की जानकारी थी उतनी उनको न थी।

परन्तु छठे दिन सबकी श्रद्धा घट गई। ऊँटनियों ने आगे जाने से इन्कार किया। सेना में भूमियों की बन पड़ी—"क्या हम नहीं कहते थे कि आगे जाकर आंधी का प्रदेश आवेगा?" सेना में खलबलाहट शुरु हुई चरवाहों की बातें चारों ओर फैल गईं। उत्तर के सैनिकों ने आगे बढ़ना अस्वीकार किया। सेना में बलवा होने की तैयारी हुई।

पदमड़ो को पकड़ सज्जन स्वस्थ और अडिग खड़ा था—इसी रास्ते

अनहिलवाड़ आवेगा, परन्तु उसके वाक्यों से सबकी श्रद्धा उठ चुकी थी। केवल सालार मसूद ही श्रद्धावान् रहा था। सायंकालीन पवन बहा, और रेती उड़ने लगी हाथी बैठ गए और हांपने लगे। घोड़े खूब तड़पने लगे। ऊँटनियां मुँह मोड़कर वापिस भागने लगीं। आदमी पानी-पानी की पुकार करने लगे।

सुल्तान ने सेना को हौंसला दिया और मसूद को हुक्म दिया कि वह सज्जन और कुछ भूमियों को साथ ले एक दिन की मंजिल आगे जाय, बाकी की सेना तीन भाग मे बांटी जाय और थोड़े-थोड़े अन्तर से एक-एक टुकड़ी आगे बढे। जो निर्बल हों वे घोड़े और हाथियों के साथ तीसरी टुकडी मे सबसे पीछे आवें। यह आदेश सज्जन को पसन्द न आया, परन्तु दूसरा चारा न था। वह पश्चिम की ओर घिरते हुए बादल को देख प्रार्थना करने लगा, "हे भगवान् रुद्र! आपकी आंधियां कहां गईं? किस कारण विलम्ब कर रहे हो?"

: २ :

सालार मसूद के साथ सज्जन चल पड़ा, परन्तु घड़ी-दो-घड़ी भी आगे न बढ़ा होगा कि रेत का बवण्डर उठने लगा। एक दो बार तो जैसे तैसे ऊँटनियां रोक लीं और वे नष्ट होते हुए बचे। भूमियों की चेतावनी सच मालूम होने लगी। सामन्त अडिग था, मगर मसूद डग-मगाने लगा था।

पदमडी बहू समझ गई थी, सब ऊँटनियां जाने से घबराती, परन्तु वह झुमझुम करती आगे बढ़ती जा रही थी। सज्जन दूसरे भूमियों को कायर बतलाता था और कहता "मेरी ऊँटनी तो चलती है और तुम्हारी ऊँटनी के पेट में क्या दर्द होता है?"

परन्तु प्रतिपल पश्चिम दिशा में अधिकाधिक रेत उडती दिखाई देती थी। मसूद आंखें निकाल कर सज्जन की ओर देख रहा था, परन्तु सज्जन तो जैसा था वैसा ही रहा—स्वस्थ और हंसमुख।

"यह क्या है?" मसूद चिल्लाया।

"यह तूफान तो अभी चला जायगा।"

हवा गरम-गरम होने लगी, रेती के वर्तुलाकार स्तम्भ वायु के वेग से दौड कर आते हुए दिखाई दे रहे थे।

"कौन है तू शैतान ?" मसूद ने तलवार खींचकर पूछा। वह उस के पेंच को समझ गया था।

"कौन हूं ?" सज्जन ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, "मै ? अरे म्लेच्छ मै तो घोघाबापा का लडका, इस मरुभूमि का राजा। अब तू देख ले, मेरे सोमनाथ की तीसरी आंख खुली है" उसने आती हुई आँधी की ओर सङ्केत किया और उसका भयङ्कर हास्य गरज उठा।

मसूद को इन शब्दों का अर्थ उसके चरवाहो ने समझाया, परन्तु उसका क्रोध उस समय अपनी ऊँटनियों की अधीरता के कारण किसी काम का न था। वह तो पूंछ उठाकर भागने लगीं और दूसरे भूमियों की ऊंटनियां भी चारों पैरों से उछलती हुईं उसका साथ देने लगीं।

आती हुई आंधी की ओर से मुँह फेरकर पदमड़ी तो खडी रही। ज़रा भी वहां से न खिसकने की सज्जन की आज्ञा थी, सज्जन तिरस्कार-पूर्वक उन भागती हुईं ऊँटनियो की ओर देखता रहा। अब क्या करना चाहिए ? दोनों ओर मृत्यु थी, मसूद के साथ जाते हुए उसके हाथ, और आंधी के सामने जाते हुए उसके मुँह में। इतने ही में पदमडी ने भयङ्कर चीख से उसे चेतावनी दी। आंधी पचासों हाथ दूर थी और थोड़ी ही देर मे वह वहां से उड जाने वाली थी। पदमड़ी उसकी आज्ञा मांगने के लिए अधीर हो नाच रही थी।

वह भयङ्कर क्षण था जिसने उसकी कल्पना मे अनेक चित्र उपस्थित किये। उसने घोघाबापा को देखा—नव्वे वर्ष में भी सोटे के समान कड़क, हर्षित नयनों से अपने पुत्र की वीरता को निहारते, फिर देखी उसकी राह देखती हुई अपनी वीराङ्गना, फिर उसने देखा अपने प्राण से भी प्रिय सामन्त जो रास्ते भर उसके बिना मचलता, पिता की गोद में बैठने के लिए तरसता; और फिर देखा उसने गङ्ग सर्वज्ञ को

जो उसपर श्रद्धा रख सोमनाथ के मन्दिर में विराजमान थे···और उसकी आंख के सामने उपस्थित हुए भगवान् सोमनाथ, और अपने कुल-देवता का मन्दिर जिसकी रक्षा के हेतु उसने अपने प्राण अर्पण किये थे।

उस क्षण में उसका हृदय गर्व से फूला हुआ था। जो और कोई न कर पाया वह उसने अकेले हाथों से किया था—उसने यावनी सेना का संहार किया था। घोघाबापा को जब यह विदित होगा तो वे उसके पैरों की पूजा करवायंगे। जहां तक गगन मे भानुमण्डल तपेगा वहां तक और युग-युग में जहां वीरता की पूजा होती होगी वहां उसका पराक्रम गाया जायगा—उस चौहान शिरोमणि सज्जन का—जिसने अकेले हाथों यवनों से सोमनाथ को बचाया था।

आंधी के तेज ने उसे अन्धित कर दिया था—पद्मड़ी अधीर बन गई थी—"क्या यहीं खड़े-खड़े मरना है?"···और उसकी आंखो में लम्बी दाढी और हरी पगडी वाला विकराल अमीर दिखाई पड़ा, और आंधी मे लिपटी हुई रेत मे तड़फड़ाती हुई यवन सेना और उस सेना के असंख्य शवों पर गोल मँडराते हुए गिद्धों के व्यूह।

वह हँसा और नीचे झुककर पद्मड़ी की गर्दनसे लिपटा और उसका सस्नेह चुम्बन किया। "पद्मडी," उसने स्नेहपूर्वक कहा "बहू! वापिस हो मेरी लाडली। जय भगवान् सोमनाथ की, त्रिभुवन के नाथ की। हो जा तू तीसरी आंख!" इतना कहते हुए सज्जन ने उँटनी को घुमाया और वह पवन वेग से आंधी के सन्मुख आगे बढा।

मसूद और अन्य भूमिया जान लेकर भाग रहे थे, रास्ते में दो उँटनियां फिसल कर गिर पड़ी और उनपर लदे हुए भूमिया पीछे रह गए। मसूद को पीछे देखने की इच्छा तनिक भी न थी। उसे तो तुरन्त पहुँच कर सेना को वापिस भागने का आदेश देना था। सेना के पहिले विभाग ने उसे आते हुए देखा और उसकी आज्ञा सुनाई पडी। जिसमे जितना बन सका उतना तेज़ भागना शुरु किया।

मसूद नई और ताज़ी उँटनी पर बैठकर आगे बढा और थोडी दूर

जाकर आते हुए सैन्य के दूसरे भाग को भी लौट जाने की सूचना दी। सुल्तान स्वयं साथ था और मसूद ने पांच पल में सब बात उसे समझा दी। प्राण लेकर भाग जाने के सिवा कोई दूसराउपाय न था। उस महान् विजेता ने एक क्षण में उस भयङ्कर प्रसङ्ग के अन्तर्गत आपत्ति का अनुमान किया। उसने तुरन्त ही ऊँटनी हांकी, साथ बड़े-बड़े सरदार लिए, एक डंका और निशान साथ लिया और सैन्य की व्यवस्था जमाते वह चारों ओर घूमने लगा। जिस स्थान पर उसका निशान दीख पड़ता वहां हिम्मत आ जाती थी, जहां उसकी गर्जना सुनाई पड़ती वहां व्यवस्था हो जाती थी। दूसरा विभाग भी बड़े परिश्रम के साथ कुछ व्यवस्थित रूपमें आया और तेजी के साथ वापिस होने लगा।

तीसरे विभाग को भी व्यवस्थित हो वापिस ही जाना चाहिये ऐसा आदेश हुआ, और उसको कार्यान्वित करने के हेतु दो सरदार शीघ्रता के साथ चले गए।

पहिले विभाग में तो पलायन का ही शासन था। अतएव सुलतान और मसूद आदि सब वहां पहुंचे। वहां आदेश सुनने की स्वस्थता किसी में भी न थी। पश्चिम क्षितिज से रेती के चमकते गोटे भयङ्कर वेग से आगे बढ़े आ रहे थे। सुल्तान ने आती हुई आंधी देखी और व्यवस्था लगाने की अशक्यता का भान होने के कारण वह दूसरे विभाग की ओर एक दम बढ़ा। पहिला विभाग अब सैन्य नहीं रहा था किन्तु भागते, पड़ते, हाँपते, जन और जानवरों का केवल समूह ही था। गरम हवा बहने लगी थी, स्थान-स्थान पर बवण्डर छा रहे थे और पीछे देखते तो—

सब प्राण की रक्षा को भूल एकान्त नयनों से पश्चिम की ओर देखने लगे।

तेजोमय रजःकणों के चकचकाते प्रकाश में, स्वर्णमय क्रमेलक पर विराजमान हो उग्र एवं जाज्वल्यमान सूर्यनारायण प्रलय का प्रसार

करने के लिए आते हुए दिखाई दिए। मण्डलाकार घूमते हुए अग्नि के स्फुलिङ्गों से निर्मित निःसीम स्तम्भावलियों के आगे-ही-आगे आती हुई आंधी के वेग से प्रेरित ऊँटनी पर सवार हो लम्बी, खुली, चमकती हुई भयावह तलवार के साथ वह चले आ रहे थे। उनके नयनों से अग्नि की ज्वाला निकल रही थी, उनके मुख पर विराजमान भीषण हास्य यवन सेना की शक्ति की विडम्बना कर रहा था।

भागते हुए सैनिकों ने वह प्रतापी भयङ्कर मूर्ति देखी, और जो हिंदू थे उनके कण्ठ से एक ही ध्वनि निकली "सूरज बापा!" और जो मुसलमान थे उनके मुंह से आवाज़ निकलती थी "शैतान!" और सब ने भाग जाने की हिम्मत छोडी और ओंधे सिर भूमि पर गिरे—हिन्दू क्षमा मांगते थे, मुस्लिम अल्ला का आश्रय ढूंढते थे। आंधी के अधिष्ठाता देव विजयी हास्य से उस घबराहट को निहारते आगे-आगे बढे जा रहे थे।

पदमडी वहू कभी न दौडी थी वैसी दौडी आरही थी। उसके पैरों में विद्युत की गति थी। वहभी जान गई थी कि आज वह पार्थिव न थी किन्तु दैवी थी।

इस प्रकार सूर्य देवता ऊँटनी पर सवार हो आगे बढते थे और पीछे जलाते हुए सैकत कणों के गोले भयङ्कर सीतकार के साथ दौड़ते आरहे थे; वहां एक ही प्रचण्ड घोषणा सुनाई पडती थी 'जय सोमनाथ।'

वे आगे बढे—जहां हज़ारों सैनिक ओंधे सिरसे पडे हुए थे पंखवाली पदमडी वहू चामुण्डा के व्याघ्र सी विकराल हो देव-विनाशिनी सेना पर टूट रही थी। और अपनी टाप से खोपडियों का चूरा कर रही थी। वह आगे बढ़ती जाती और पीछे-पीछे फैलते हुए रेत के गोटे उनको दग्ध करते, व्याकुल करते, लपेट लेते और गाड देते। आंधी के निनाद से भी प्रचण्ड सज्जन की गर्जना सुनाई पडती; "जय सोमनाथ"।

किसी रेत के टीले पर चढकर सुल्तान महमूद ने आंधी पर सवार हो आते हुए इस राजपूत को देखा।

"यह कौन, शैतान?" सुल्तान महमूद ने पूछा।

"नहीं—यह तो वही धांधावापा का लडका।"

"क्या ?" कहकर वीरों में श्रेष्ठ गज़नी का अमीर मुग्ध हो रहा। कांपती काया और भयग्रस्त हृदय से उसने अपनी सेना के एक विभाग को आंधी में लुप्त होते देखा। उसने एक निःश्वास छोड़ा "अल्ला की मेहर है कि सेना के तीन टुकड़े किये। दो तो बच गए" इतना कहकर वह ऊँटनी पर से उतरा, पश्चिमाभिमुख हो घुटने के बल बैठकर अल्ला और पैगम्बर का आकार प्रकट किया।

आधी सेना के एक विभाग को लपेटकर घूम गई, उसे निष्प्राण कर टेकड़ी की तलहटी में शान्त हो गई। उसके शान्त होने पर हर सैनिक पर चार-चार हाथ ऊँचा रेत का ढेर जमा था। और वहीं सज्जन और पढ-मड़ी वहू एक दूसरे के कण्ठ मे अश्लिष्ट हो अनन्त शान्ति को प्राप्त कर गए।

: ३ :

सुल्तान की अद्भुत प्रतिभा के कारण यथा-कथा अवशिष्ट सैन्य कुछ मात्रा में व्यवस्थित कर लिया गया। दिन-ही-दिन में कुछ योजन चलना जलपान एवं भोजन में कमी करना, सारे दिन प्रार्थना करना सुल्तान के भयङ्कर खुरासानी सवारों की मदद से असन्तोषियों को आतङ्कित करना, इन उपायों से सैन्य तितर-बितर होने से बचा। ऐसी कठिनाई की परिस्थिति में सुल्तान का असली व्यक्तित्व प्रकाशित हुआ। किसी भी वस्तु से हताश न होता, किसी निरुत्साह से उसकी आत्मश्रद्धा विचलित न होती, किसी सलाह से भी उसका लक्ष्य बदला नहीं जाता। दिन-रात ऊँट पर या पैदल ही वह सारे शहर में घूमता रहता। किसी को उपहाससे, किसी को उग्रता से और किसी को धार्मिक प्रेरणा से वह उत्तेजित करता रहता। जहां वह पहुंचता वहां अनाथ भी सनाथ हो जाते और शिथिल भी शक्तिशाली बन जाते थे। केवल हिन्दू सैनिकों में ही उत्साह न था।

"जहां सूर्यनारायण रण चढ़े तो वहां मनुष्य क्या कर सकता है ?"

यह प्रश्न तो भीतर-ही-भीतर करते हुए लोग निराश से अपना सिर हिलाते। कई लूटके लोभ से और कई अपने निर्वीर्य राजाओं के शासन से इस सवारी मे शामिल हुए थे। परन्तु आज उन्हें भान हुआ कि वे मनुष्य के साथ लड़ाई नहीं लड़ रहे थे किन्तु वे देव का सामना करने को उद्यत हुए थे। उन्हें स्वधर्म का भान होने लगा, उनका असन्तोष बढ़ने लगा और उनकी घबराहट की सीमा न रही।

दूसरे दिन प्रातः काल सुल्तान के तम्बू मे मुख्य सरदार मिले। प्रत्येक को कुछ-न-कुछ शिकायत करनी थी। हाथी चल न सकते थे। घोड़े मरणतुल्य हो गए थे। पानी और चारा खतम होने आया था, हिन्दू हार खा चुके थे, मुसलमान निरुत्साह हो गए थे, भूमियों को रासता न सूझता था। पीछे राजपूतो की सेना मुठभेड़ के लिए राह देख रही थी—इस तरह की अनेक फ़रियाद सुल्तान तकिये के सहारे बैठा हुआ, विशाल भृकुटियों के नीचे अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से सबका नापतोल करता हुआ सुन रहा था। केवल मसूद ही उत्साह से उछलता बैठा था और प्रत्येक सम्मति का एक एक दृष्टान्त कुरान से निकाल कर जवाब देता था। इतने ही में बाहर से सूचना मिली कि मुलतान के मुखिया का संदेश ले दो मनुष्य आये हैं। इस खबर को सुन सबके मुंह पर विविध .व उपस्थित हुए। जो आशावान् थे वे हर्षित हुए, और जो निराश थे उन्होने निःश्वास छोडे। सुल्तान ने बैठकर आदेश दिया, "उन्हें भीतर ले आओ"। मसूद उत्साह से उठ खड़ा हुआ और नव आगन्तुकों को बुलाने गया। बाकी सब मूक वदन से नूतन समाचार की आशा लगाए द्वार की ओर देखते रहे।

थोडी देर बाद मसूद सामन्त और नन्दिदत्त को लेकर आए। ये दोनो ही मरुभूमि में गुजरात का छोटा रास्ता ढूंढते और सुल्तान की स्थिति को जानने की इच्छा से इस रास्ते आ पहुँचे थे जब उन्होंने यवन सेना का पडाव देखा। नन्दिदत्त ने सामन्त को भाग जाने की सम्मति दी, परन्तु उसने भयङ्कर विरोध के साथ उस सलाह की अवहेलना की और

सीधे पडाव पर जाकर सुलतान से साक्षात भेंट करने का आग्रह किया। चौकीदार पहिले तो चौंके। रास्ते जाते हिन्दू बटोहियों ने कभी भी सुल्तान से मिलने की इच्छा की ऐसा उन्होंने कभी सुना नहीं था। आखिरकार सामन्त ने कहा कि मैं झालोर से सुल्तान के मुखिया का सन्देश लेकर आया हूं। यह बात चौकीदारों ने नायक से कही, नायक ने अपने बडे अधिकारी से, और यों अधिकारियों की परम्परा द्वारा वह उस समय वहाँ पहुंच गया था।

इक्कीस वर्ष का सामन्त अब भयंकर दिखाई दे रहा था। उसकी आखे स्थिर एवं तेजस्वी थीं। मुख की सुकुमारता अदृष्ट हो उसपर दुःख की अनाकर्षक रेखाओं ने स्थान कर लिया था। गत थोडे ही दिनों मे उसने हृदयमन्थन कर जो विप निकाला था वह उसकी दृष्टि में, उसके मुंह पर और उसके स्वर मे प्रसृत हो रहा था। उसकी जिह्वा भाग्य से ही कभी खुलती थी और वहभी भयङ्करवाग्वाण छोडनेके लिए। उसके पीछे-पीछे नन्दिदत्त मन्द स्वर से शिवकवच बोलता हुआ नीची दृष्टि कर चला आ रहा था। सामन्त से जुदा न होने का उसने सङ्कल्प कर रखा था।

उसके आते ही सब ध्यानपूर्वक बात सुनने के लिए दत्तचित्त होकर बैठ गए। सुलतान ने ऊँचे स्वर से आज्ञा की "मसूद ! इसे यहा लाओ, तिलक ! इससे सवाल पूछ कि वह कहां से आया है ?" तिलक उठकर सामने आया और मसूद सामन्त तथा नन्दिदत्त को निकट ले आया।

तदनन्तर सुल्तान के किये हुए प्रश्नो और सामन्त के दिए हुए उत्तरों का भाषान्तर वह करता गया।

"तू कहां से आया ?"

"झालोर और मारवाड के रास्ते से।"

"किसने भेजा ?"

"सुलतान के मुखिया ने।"

"कौनसा सन्देश लाये हो ?"

"मुझे सिर्फ अमीर को ही कहने का आदेश है," एकाग्रता के साथ स्वस्थ दृष्टि सुलतान पर डालता हुआ सामन्त बोला।

"मुखिया कहां है ?" तिलक ने पूछा।

"इन सब के बीच में कहूं ?"

"हां ! जहांपनाह का फ़रमान है।"

"मुखिया इस लोक को छोड परलोक सिधार गए।"

"क्या, क्या ?" एक की अपेक्षा अनेक सरदार मर्यादा छोड़कर बोल उठे। सुल्तान ने कुछ आगे बढकर क्षुब्ध स्वर से प्रश्न किया। "कहां, कब और किसके हाथ ?"

"वह मरा झालोर के रास्ते—आज बीस दिन हुए–हिन्दू योद्धाओं के हाथ से", सामन्त ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"क्या सबूत कि तू सच कह रहा है ?"

सामन्त ने गांठ से मुखिया की ही रत्नजटित कटार निकालकर पास खड़े हुए मसूद को बताई "यह उसकी कटार—यह मेरा सबूत" उसने कहा।

मसूद नीचे झुका और तिलक के पास आया और दोनों ही कटार की जांच करने लगे। दोनों ने साथ ही उसे पहिचान ली "जहांपनाह ! यह उसीका खन्जर है जो आपने उसे भेंट दिया था।" सुल्तान स्तब्ध हो रहा और दूसरे तो चित्रवत् हो स्वस्थ एवं निर्भय सामन्त का मुख अवलोकन कर रहे थे। बडी देर तक कोई भी कुछ न बोला।

"तू कौन जात है ?" सुल्तान की प्रेरणा से तिलक ने पूछा।

"राजपूत।"

"मुखिया ने कटार दी तब कुछ सन्देश दिया था ?"

"कहूँ ? अभी—इन सब के सामने ?"

"हां, हां, हां, "सुल्तान ने व्याकुल होकर कहा, "बोल।"

सामन्त ने निश्चल नयनों द्वारा सुल्तान पर टकटकी लगा, धीमे किन्तु घातक के स्वर से उसे कहा, "झालोर और मारवाड़ को घूंस देने

के लिए आपने मुखिया को भेजा था।"

सब उपस्थित जन उस धृष्ट युवक की वाणी सुनकर सुल्तान पर उसका क्या प्रभाव होता है यह निरीक्षण करने मे एकाग्र थे। सामन्त तो कई दिनो से भय और क्षोभ के उस पार—जहां मृत्यु से भी भय नहीं—वहा पहुँच चुका था।

"फिर ?"

"झालोर और मारवाड ने घूंस खाने से इन्कार किया, इतना ही नहीं, किन्तु उन दोनों की सेना गुजरात की सेना के साथ आपसे जंग खेलने को तैयार खडी है।" मन्द स्पष्टता के साथ सामन्त बोला। उसका प्रत्येक शब्द मानो तलवार का ही आघात हो इस तरह सबके हृदय को बेध रहा था।

सुल्तान एक कदम अधीरता के साथ और आगे बढा। चारो ओर फैले हुए भय की रेखाओं को उसने प्रत्येक वदन पर देखा और उसने अपने नयन निमीलित किये।

सामन्त ने स्थिर स्वर से फिर कहा, "मरते हुए मुखिया ने मुझसे आपको निवेदन करने का आदेश दिया कि यदि आपको अपने जन और कीर्त्ति से प्रेम हो तो आप जहां से आये वही चले जायं।"

अभङ्ग शान्ति थोडी देर फिर फैल गई। आतङ्क फैलाते हुए महा-भय ने सबको अवाक् बना दिया था। इस स्थिति से सबसे पहिले सुल्तान जागृत हुआ, और आंखो के आगे हाथ धरकर वह बोल उठा, "या अल्लाह।" प्रत्येक व्यक्ति मूढ हो गया था—सिवाय सामन्त के। उसने व्यापक दृष्टि से सबका क्षोभ देखा और एक पलक के अवकाश मे उसने अपना खन्जर म्यान से निकाला और किसी का भी ध्यान आक-र्षित हो उससे पहिले वह लपक गया। दिङ्मूढ़ मसूदऔर तिलकको पार कर वह सुल्तान पर टूट पडा। खन्जर चमका, सुल्तान के गले से टकराया और हाहाकार के साथ सब खड़े हो गए। सुल्तान खडा था। उसने अपने दाहिने हाथ से सामन्त के दाहिने कधे को ऐसा पकडा कि खन्जर की

नोक उसकी गर्दन से अटकने पर भी भीतर घुस न सका, और जिस तरह कोई छोटे बच्चे को उठाले उस तरह उसने अपनी बाईं भुजा के बल से सामन्त को उचका दिया और उसे मरोड़ कर दबा दिया, उसका प्रचण्ड बल दबे हुए सामन्त पर, हाहाकार करते हुए सरदारों पर और तलवार लेकर पास आते हुए मित्रों पर, अपनी तेजस्विता के कारण सबका ध्यान आकर्षित कर रहा था। उसके चेहरे पर लाली छा गई, और उसके मुँह से अट्टहास के साथ शब्द निकले, "महमूद को मार डालना सहज नहीं,अल्ला हो अकबर।" तब उसके दोनों हाथो ने असीम बल से सामन्त को ऐसा दबाया कि उसका हाथ मुड़ गया, और उससे खंजर छूट पड़ा। फिर दोनो हाथों से सामन्त को उठाकर सुल्तान ने हँसते-हँसते दूर फेंका। पल-भर में सुल्तान ने अपनी सर्वोपरिता सिद्ध की और वहा पहिले हताश हुए पुरुषों के हृदयों में श्रद्धाशीलता का अनुभव होने लगा।

सामन्त गिरते ही सम्हला, परन्तु कई खून की प्यासी तलवारें उस पर टूटने लगीं।

"ख़बरदार!" सुल्तान ने आज्ञा दी, "तलवार म्यान में रक्खो।" आज्ञा का तुरन्त पालन हुआ और सामन्त खड़ा हुआ और उसने तनिक भी भयभीत हुए बिना अपनी स्वस्थता के कारण सारी सभा को प्रशंसा मुग्ध बनाया। उसने सुल्तान की ओर एकाग्र एवं क्रोधित नयनों से घूर कर देखा। प्रशंसामुग्ध हो सुल्तान भी उसकी ओर देखता रहा।

"किसी ने इसे मारना नही। अल्लाह अपने बन्दे को सलामत रखता है", सुल्तान ने कहा।

"जहांपनाह!" तिलक ने सिर ठोककर कहा। "मुझे अब स्मरण हुआ कि यह ब्राह्मण तो घोघाराणा का गुरु है। मै कबसे सोच रहा था कि मैंने इसे कहीं देखा है। घोघागढ जब मैं पहिली बार गया तब इसे वहां देखा था।"

नन्दिदत्त ने ऊपर देखा। उसने तिलक को कभी से पहिचान लिया

था। "घोघाराणा !" मसूद ने दंग होकर पूछा, "उसके एक लडके ने तो परसों ही हमारे हज़ारों सैनिक मार डाले।"

इस विदेशी भाषा में प्रस्तुत बात को सामन्त न समझ सका, परन्तु घोघाराणा का नाम और तिलक के द्वारा नन्दिदत्त के विषय में की हुई बात सुनकर उसे कुछ समझ पडा। "घोघाबापा !" उसने गर्व भरे स्वर में कहा, "हां, मै उसका प्रपौत्र ! मेरे सारे वंश का सर्वनाश किया, अब मै अकेला रह गया हूं। म्लेच्छ ! अपनी तलवार चला और मुझे भी अपने पूर्वजो के साथ मिला दे।"जो सामन्त की भाषा समझ सके वे उन सगर्व वचनों को सुनकर, उसकी निश्चल, स्वरूपवान् एवं क्रूर आकृति को देख मुग्ध हो रहे। मसूद होठ दबाकर तलवार की मूठ पर हाथ रखकर सामन्त को कत्ल करने की आज्ञा सुल्तान से मांग रहा था। तिलक ने सामन्त के शब्दों को सुल्तान को समझाया।

सुल्तान ने जन्म से वीरता की रङ्गभूमि पर नायक का पद योंही नही पाया था। नाजुक समय को परखने की, हृदय को वश में करने की और महत्वके प्रसङ्ग पर महान् होने की कला उसे सधीहुई थी। हँसते हुए मुँहसे और प्रशंसापूर्ण नयनो से वह आगे आया। एक हाथने मसूद और तिलक को पीछे हटने का सङ्केत किया और अपने दाहिने हाथ को सामन्त के कन्धे पर रख उसकी ओर देखता रहा।

वहा सब अवाक् हो देखते रह गए।

"तिलक ! घोघाराणा के लडके से कह कि घोघाराणा के कुल ने अपने शौर्यसे अबुलकासम महमूदकी कीर्ति कोभी फीका करदियाहै। घोघाराणा से मैने मैत्री की याचना की तो भी उसने मेरे सहस्रो सैनिको का संहार कर दिया। परसो घोघाराणा के छोकरे ने आंधी में ले जाकर मेरा सारा सैन्य अस्तव्यस्त कर डाला, और आज तूने अद्भुत साहस के साथ मेरी जान लेने का प्रयत्न किया।

तिलक ने इन वाक्यों का भाषान्तर कर सामन्त को सुनाया और सामन्त ने उत्सुकता के साथ पूछा, "घोघाराणा का बेटा कहां है कहां

वे तो मेरे पिता!" इतना कहते-कहते अभी तक स्वस्थ रहे हुए सामन्त के कण्ठ से स्नेह और वेदना से भरा हुआ स्वर बाहर आया।

"तिलक! इससे कह" सुल्तान ने जवाब दिया, "ऐसा योद्धा मैंने जन्म भर नहीं देखा। वह अकेला ही मुझे मरुभूमि में भुलावा देकर ले गया। आज मेरे दस हज़ार मरे हुए योद्धाओं के बीच में वह भी प्रतिशोध की मूर्ति बन कर डटा है।"

'धन्य है, धन्य है" नन्दिदत्त बडबडाया।

"मेरे दादा को मारा, मेरे कुल को समाप्त किया, और मेरे पिता की हत्या की"—सामन्त ने स्वस्थता से पूछा, "अब मुझे कब मारते हो?"

"महमूद जैसा शूर है वैसा शूरता का आदर भी करना जानता है। जा तुझे मैं मुक्त करता हूँ। परन्तु छोखरे! याद रख। अल्लाह तो मेरे पक्ष में है"

इन शब्दों का अनुवाद सुनते ही घोघाबापा के वंशज की आंखों मे क्रोध प्रकट हुआ और उसने उग्रता से कहा, "अमीर! मेरा देवाधिदेव जगत् का संहारकर्ता जब तक विद्यमान है तबतक तेरी महत्वाकाङ्क्षा किस पासंग मे है।"

उत्तर सुनकर सुल्तान हंस पडा। "मसूद! ले जा इस छोकरे को और इस बुड्ढे को। इन्हें अच्छी-से-अच्छीऊँटनी दे दो और दस दिन का खाना, पीना और चारा देदो। और इसे मुक्त कर दो ताकि यह जहां जाना चाहे वहां जाय।" और सरदारो की ओर फिर कर कहा, "जहां तक मेरा अल्लाह मेरे साथ है वहांतक तो मैं प्रतिदिन ऐसे वीर वैरियो की लालसा रखता हूँ।"

औरएक भव्य अभिनय केसाथ अपने दुर्जेय गौरव को सिद्ध करते हुए उसने मसूद को सख़्ती से कहा, "मसूद! इसके एक भी बाल बांका करने वाले के सिर को धड से अलग कर देना।"

मसूद सामन्त और नन्दिदत्त को बाहर ले गया, और सुल्तान सरदारो की तरफ फिरा। ऐसा सुन्दर अवसर वह खो दे इतना कच्चा न

था। "मेरे मित्रो!" उसने प्रेम से कहा, "अल्ला ने उसे फिर से जीवनदान दिया है—इसीसे यह प्रत्यक्ष है कि विजय सदा मेरी ही है। एक तरफ राव लखन और उसकी सेना है। इस लडके का कथन यदि सत्य हो तो सामने झालोर, मारवाड और गुजरात की सम्मिलित सेना है। मुझे चाहे जिससे लडा लो मै तो आगे जाऊंगा ही—जहां निर्धारित किया है वहां—मूर्तिपूजको के देवो को तोडने। तुममे से कोई भी न आय तो भी मै अकेला ही जाने वाला हूं। इच्छा हो तो मेरे साथ आओ, और मन हो तो दूसरे रास्ते जाओ। कहो क्या विचार है?"

अन्तिम घडी मे तो वातावरण बदल गया था। इस प्रश्न का उत्तर उस समय एक ही हो सकता था—और उत्साह नशे मे आकर सरदारो ने सुल्तान् के चरणों को स्पर्श कर अपना आशय प्रकट किया।

और उस भव्य परिवर्तन को देख सुल्तान के मुख पर हंसी छाई।

नवां प्रकरण

घोघाबापा का भूत

: १ :

खुले मैदान में अरजन गढवई अपनी खटिया पर खुर्राटे लेते हुए सो रहे थे। उस वृद्ध की नासिकाओं से निकलती हुई शान्त एवं नियमित घरघराहट गढ वासियों को उनकी उपस्थिति का ज्ञान नित्यवत् उस दिन भी करवा रही थी। आज मध्यरात्रि बीत गई थी और नीलमगढ के गिने-गिनाए स्त्री पुरुष भी सो रहे थे।

नीलमगढ से आगे पाटण के प्रभु के राज्य की सीमा पूरी होती थी। इससे आगे तीन गांव घना जङ्गल था और वहां से बहता हुआ पवन प्रतिदिन अनेक पुरुषों के रुदन के समान महारव करता था। अनेक वर्षों से प्रति रात्रि इस महारव के साथ अरजन गढ़वई घोर सुर भरता था। आज उस सुरसंवाद को मानों कोई ताल दे रहा हो ऐसी अज्ञात ध्वनि सुनाई दी, खलबल'''खलबल। सोते हुए गढवई को स्वप्न आ रहा था। उसमें भी वही ध्वनि सुनाई पड़ी और स्वप्न समाप्त हुआ। अर्ध जाग्रत अवस्थामें वे इस आवाज़को सुन रहा था''' खड़खड़—खडखड़—खडखड़— अद्भुत सी बात। गढ से दो योजन दूर एक सुन्दर विश्राम था उसे छोड रात को महारावी अरण्य मे कोई आने का साहस नहीं कर सकता था। किन्तु आज यहां कौन चला आ रहा है और वह भी इस तीव्र वेग से ?

गढपाल बैठ गए और कान लगा कर सुनने लगे। उँटनियां आरही थी—एक—दो—तीन—! भ्रम न था, ध्वनि निकट आरही थी, कोई दौड़ती

हुई उँटनियां भी आरही थीं। गढवई अपनी तलवार और तीर-कमान सुसज्जित करने लगे। खडखड़—खडखड...गढ़पाल गढ़ पर चढ मरु-स्थल की दिशा में देखने लगे। तारों के मन्द उजाले में स्पष्ट दिखाई नही पडता था, परन्तु ध्वनि अधिकाधिक स्पष्ट सुनाई देती थी। तीक्ष्ण और निमेषहीन नयनों द्वारा गढपाल अन्धकार का भेदन करने का प्रयत्न करने लगे। श्मशान भूमि में दुःखी मनुष्यों के महा रुदन के समान स्वर वन से आरहा था। तारागण जुगनू के समान उडते हुए दीख पडे। कुछ देर बाद तीन आकार दिखाई दिये—दूर से निकट आते हुए—मानो वे श्मशान में उँटनियों के प्रेत ही हो। गढ़पाल कांप उठा, उसने आवाज़ें लगाई और अपने आदमियों को जगाया। जब अपार्थिव प्रतीत होती हुई उँटनियां निकट आईं तब गढपर आठ तीरन्दाज़ तीर का निशाना लगा कर खडे अवश्य थे, किन्तु उनके हाथ थर-थर काप रहे थे।

"कौन हो ?"

"मैं प्रभास पाटण जारहा हूं, आवश्यक कार्य है" एक गंभीर ध्वनि सुनाई पडी।

'नाम क्या है ?"

"चौहान हूं। गढ खोलो और मुझे नई उँटनियां दो" गम्भीर किन्तु अधीर स्वर से वक्ता ने कहा। तुरन्त ही गढवई ने गढ के द्वार खोले और एक पुरुष पहली ऊँटनी से उतर कर भीतर आया। गढवई इतने घबराये हुए थे कि अब भी उन्हे उसकी ऊँटनी एक आभास मात्र प्रतीत होती थी।

"इस समय इतने क्या अधीर बने हो ?" अरजन गढवई ने पूछा, परन्तु फिर वे रुक गये। उनके रोमाञ्च खडे होगए। युवक शुष्क एवं क्षीण था और चिता से उठकर आये प्रेत के समान फीका था। उसकी स्थिर ओजस्वी आंखे भयानक थी।

"तीन बढ़िया उँटनियां दो, मुझे प्रभास पाटण जाना है। और तुम

सब गढ छोड़ कर चले जाओ।"

"मैं गढ़ छोड़कर चला जाऊँ ? हाथों मे मैने क्या चूड़ियां पहन ली हैं ? क्या वह जो गज़नवी आरहा है उसके भय से ?" अरजन गढवई हँसकर बोले।

"गढवई !" युवक ने कहा, "मूर्ख न बनो, गज़नी का अमीर कौन है इसकी कल्पना भी है ? वह तो दावानल है। दस दिन मे आ पहुंचेगा और सबको भस्म कर डालेगा। भाग जाओ–जङ्गलों मे–जिस तरह बने उस तरह…"

"लड़के !" गढ़वई ने तिरस्कार पूर्वक कहा, "हम लोग ठहरे गढपाल, तुम जैसे डरपोक हम नहीं।"

युवक कर्कशता लिये भयंकर हास्य हँसा। अरजन गढवई को कँप-कँपी हुई। यह मनुष्य है कि भूत ?

"मैं और भीरु !" युवक फिर हँसा और भयंकर स्वर से पूछने लगा "घोघाबापा का नाम सुना है ?"

अरजन गढवई तो घोघाबापा के परम भक्त थे। मरुभूमि के सीमान्त प्रदेश मे रहने वाले चौकीदारों ने उस मरुस्थल के नरेश की अनेक अद्भुत दन्त कथाएं कह सुनकर अपना जन्म बिताया था। और अनेक वर्ष पूर्व मूलराज देव के समय मे स्वयं भी उनसे मिले थे। अतएव वे उनके साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध का भी दावा रखते थे। उसी क्षण गढवई का स्मरण-पट निर्मल हुआ। युवा घोघाबापा का चित्र मानों पचास वर्ष पूर्व देखा हो वैसे ही उन पर अंकित हुआ। वही कपाल, वही आंख, और वही मूंछ—यह घोघाबापा का भूत।

"घोघाबापा !" हाथ जोडकर गढवई ने कहा, "बापा !"

"घोघाबापा की तो हत्या हुई—गज़नी के अमीर के हाथ। और वही आगे चढकर चला आरहा है, चारों ओर प्रलय का प्रसार कर रहा है, और उसका उद्देश्य सोमनाथ भगवान् को भङ्ग करने का है।"

"तुम मरकर भी उसे रोक न सकोगे। जङ्गल में फिलहाल

घुस जाओ और यदि जीवित रहो तो पीछे से उसे जितना हो सके उतना व्याकुल करना ।"

"बापा ! परन्तु आप कहां जारहे हो ?"

"प्रभास । सोमनाथ का रक्षण करने जा रहा हूं, चलो जल्दी करो।"

गढवई को भरोसा हुआ कि यह घोघावापा का भूत है। अतएव उन्हे अधिक वार्त्तालाप करने का साहस न हुआ। उन्होंने ताजी ऊँटनियां तुरन्त खोल दी और वह युवक अपने साथियों के साथ उडती हुई ऊँटनियों को लेकर अन्धकार में लुप्त होगया।

कांपते हुए अङ्गों से अरजन गढवई बडी देर तक देखते ही रहे।

"बापा!" उनके लडके ने गढ़वई से पूछा, "ये कौन थे ?"

गढवई ने पुनः कम्प का अनुभव किया।

"बेटा ! घोघावापा आये थे—भगवान् सोमनाथ की रक्षा करने।"

"घोघावापा!"

"हां ! बिलकुल पचास वर्ष पहले जैसे थे, वैसे के वैसे ही।"

लडके ने सचिन्त हो पिता की ओर देखा और सोचा 'क्या पिताजी अविचारी तो नहीं बन गये ?'

अरजन ने पुत्रके मुख विकार से उसके भाव को समझा।

"यमराज के घर से फिर लौट आये हैं—चल, जाने दो-यह तो सोमनाथ बापा ने स्वयं पूर्व सूचना दे दी है।

: २ :

मारवाड से पाटण जाने लिए सीधे मार्ग पर जितने भी ग्राम थे उन सब में पवन के वेग पर सवार हो यह बात फैल गई। गजनी का अमीर आ रहा है, यह बात तो उडती-उडती कई दिनों से चल रही थी। मारवाड़ के कई यात्री कुछ दिनों में आते-जाते रहते थे और वे गज़नवी की सेना का जैसा मनमें आये वैसा वर्णन करते थे। अमीर चढ़ा आरहा है यह कई लोग मानते थे, और कई ऐसा कहने वालों का उपहास करते और

कहते थे कि किसकी ऐसी आफ़त आई है कि वह सोमनाथ भगवान् पर आक्रमण करे ? परन्तु अब कुछ और ही बातें सब तरफ सुनाई पड़ीं, कारण अरजन गढवई के आदमी लौट आये थे । मरुस्थल के स्वामी घोघाबापा मर चुके थे और उन्होंने भूत हो गढवई को चेतावनी दी थी कि यहां से भाग जाओ नहीं तो जान से जाओगे । घोघाबापा का भूत ऊँटनी पर सवार होकर सोमनाथ की सरक्षण करने जा रहा था ।

किसी ने तो स्वयं गढवई के मुख से ही भूत की बात सुनी थी । दूसरो ने रास्ते से जाते हुए किसी ऐसे व्यक्ति से यह सब बात सुनी थी जिसने गढवई की बातें प्रत्यक्ष सुनी थीं । मूलराज देव के शासन-काल मे गढवई घोघाबापा को जानते थे—कोई पचास वर्ष की बात होगी—घोघाबापा तो जीवन से गये परन्तु उनका भूत पचास वर्ष पूर्व वे जैसे थे हूबहू वैसा ही था । उनकी आंखें डरावनी थी । जैसे चिता से उतर कर आये हो वैसी उनकी चमडी थी। परन्तु उनके कण्ठ मे घाव था जिस-से रक्त का प्रवाह हो रहा था । गढवई ने उन्हें तुरन्त पहिचाना—घोघा-बापा अर्थात् रणभूमि के राजा—उनका नाश हुआ इससे स्पष्ट है कि अमीर अब शीघ्र ही गुजरात आने वाला है—अब क्या बाकी रहा ?

दूसरे गांव के लोगों को इस बात का भरोसा हो गया । परसो मध्य-रात्रि मे मुखिया ने भी ऊंटनियो को उडते देखा । वे उसके घर के सामने से निकलीं । आगे-ही-आगे ऊंटनी पर घोघाबापा थे । उनकी आंखे भयङ्कर थीं और उनका स्वर जैसे पाताल ही से निकल रहा हो ऐसा था । घोघाबापा ने भी कहा, "गांव के लोगों को जंगलों में ले जाओ, गज़नी का अमीर आ रहा है—किसी को भी जिन्दा न जाने देगा । फिर यदि हिम्मत हो तो उसकी सेना को पीछे से हैरान करना ।"

किसी दूसरे गांव की स्त्री पानी लेकर लौट रही थी तो उसे रास्ते में घोघाबापा मिले थे । बापा ने स्त्री से पानी मांगा । स्त्री घबरा उठी, कारण, बापा की आंखो के पलक नहीं हिल रहे थे । कैसे हिलें ? मृतात्मा की आंखें भी कहीं पलक मारती हैं ? स्त्री पानी पिलाती ही रही

परन्तु घोघावापा की प्यास न बुझी—कैसे बुझे ? म्लेच्छ ने उन्हें मार डाला तो उनकी तृषा क्योंकर बुझे ? आखिर पनहारिन का पानी चुक गया परन्तु पीने वाले की प्यास न बुझी। फिर घोघावापा बोले "माँ जी ! अपने गांव के लोगों से जाकर कहना कि जङ्गलों में जाकर छिप जायं गज़नी का अमीर चढ़ा आ रहा है" —केवल वही बोल–वही आवाज़। बात बढ़ने लगी। किसी ने घोघावापा की छाती में लहू के फव्वारे उड़ते देखे, किसीने उनकी ऊंटनी के पैरों से अङ्गार निकलते देखे। किसीने घोघावापा को और उनके साथियों को भोजन दिया पर उन्होंने नहीं खाया–भूत और प्रेत भी नहीं खाते। ऐसी अनेक बातों से लोक-जनता में घबराहट का पार न रहा और जितना हो सका उतनी सामग्री लेकर गांव-के-गांव जङ्गलों में छिपने के लिए भागने लगे। अकथ्य,अकल्प्य भय उनके रोम-रोम में जा बसा और प्रत्येक ग्राम की जनता के कानों में घोघावापा की तीन ऊंटनियों के पैरों की झंकार बजने लगी। क्षितिज में किसी भी हिलती हुई आकृति का अनुमान कर कई लोग घोघावापा के भूत की कल्पना करते थे और साथ-ही-साथ घोघावापा के विषय में अनेक दन्त-कथाएं बढ़ने लगीं।

: २ :

प्रभासपाटण में गङ्गसर्वज्ञ पाठ पूजन समाप्त कर अपने धाम से भगवान् के मन्दिर में बिल्वपत्र चढाने जाते थे। उनका तेजस्वी और गौरवशील मुखमण्डल सदा के समान शान्त एवं स्वस्थ था। उनके एक हाथ में पञ्चपात्र और आचमनी थी, दूसरे हाथ में स्वयं तोडी हुई बिल्व की पत्तियां थीं।

प्रभास में गज़नी के म्लेच्छ की आती हुई सेना की कथाएं कुछ उडती थीं किन्तु जनता में उच्चाटन कर दे इतनी भीषण नहीं। कुछ योद्धा गप हांकते थे—मुलतान में म्लेच्छ काम आया—मरुभूमि में लुप्त हो गया। जब तक भगवान् विराजमान हैं तबतक किसका साहस है कि सौराष्ट्र में पैर रखे ? और भीमदेव सोलंकी तो म्लेच्छ को काट डालने

के लिए कटिबद्ध ही था, फिर क्या ? दामोदर की बातें सुनकर सर्वज्ञ के हृदय में पल भर क्षोभ का सञ्चार हुआ था, परन्तु कोई विशेष सूचना न होने के कारण उन्हें जैसे कुछ प्रतीत न हुआ। एक कथा तो यो सुनने में आई थी कि म्लेच्छ का सैन्य मरुस्थल में जल के अभाव से तडपडा कर समाप्त हो गया। भगवान् के साथ बांह भिडाने वाले का और क्या फल हो सकता है ?

और ऐसा कुछ भी विचार होता था तो केवल उनके अन्तःकरण में ही। भगवान् के आसपास तो अनादि एवं अनन्त तथा शान्त एवं नियमित वातावरण था। सृष्टिकाल मे यह विश्व उत्पन्न हुआ और प्रलयकाल में लीन होने वाला था। इस शान्ति और शक्ति की अनन्तता मे म्लेच्छ जैसे क्षणिक बुद्‌बुदां से कितना अन्तर हो सकता था ? पूजा होती थी, रुद्री होती थी, नर्तकियां नृत्य करती,आरती होती भावुकगण भक्ति करते, सूरज उगता और अस्त हो जाता—भगवान् सोमनाथ की ध्वजा समीर के साथ नृत्य करती थी।

मन्दिर मे प्रवेश करने के लिए सर्वज्ञ उद्यत हुए,पादुका धारण की और एक पैर आगे बढाया ही था कि एक शिष्य पहुंचा,"गुरुदेव कोई आया है।"

सर्वज्ञ अनुमति दे इतने मे ही आगन्तुक त्वरा के साथ भीतर आ घुसा—वह मेंह के तुल्य निस्तेज था और उसके विशाल नयन स्थिर एवं भयावह थे। वह सर्वज्ञ के पैरो मे लोट गया। उसने हांपते हुए कहा, "नमः शिवाय"।

"शिवाय नमः" सर्वज्ञ ने आशीर्वाद दिया "उठ बेटा ! तू कौन है ?' वह उठा उसके कपाल पर भयंकर रेखाएं थी।

"गुरुदेव ! मुझे नहीं पहिचाना ?" उसके श्वास में अश्रु भरे थे। सर्वज्ञ ने मूंछो को पहिचान कर विल्वपत्र और वह जलपात्र शिष्य के हाथ मे दे दिए।

"कौन, सज्जन चौहान का पुत्र ? यहां कैसे ?"

"गुरुदेव !" निश्वास को रोककर कांपते हुए होठों से उत्तर दिया।

अमेय ममता के साथ गंगसर्वज्ञ ने उस बालक के कन्धे पर हाथ रखा और उसे कमरे में ले आए।

"किसी को अन्दर न आने देना" सर्वज्ञ ने शिष्य को आदेश दिया। उन्होंने सामन्त को ले जाकर बिठाया और आप भी उसके सामने बैठे। "वत्स! सज्जन चौहान कहां है? घोघाराणा कहां हैं? तू लौटकर क्यों आया?" उन्होंने आतुरता से पूछा।

"गुरुदेव!" सामन्त टूटे हुए स्वर में कहने लगा—उसके नेत्रों से अश्रु धारा का प्रवाह होने लगा "आपने कहा था कि घोघाराणा के कुल में एक वीर भी जीवित हो तबतक सोमनाथ के द्रोही का प्राणहरण करना, सो गुरुदेव! मेरे सिवा सबने यह वचन"—सामन्त रो पड़ा—"यह वचन निभाया।"

"किस तरह?" गङ्गसर्वज्ञ ने अस्वस्थता के साथ पूछा।

"घोघाबापा और उनका सकल परिवार घोघागढ के सामने निहत हुआ। मेरे पिता"–फिर सामन्त को रोना आया, "मेरे पिता यवन सेना के दस हज़ार योद्धाओं को मरुस्थल में भूनकर कैलाशवासी हुए।" सामन्त निःश्वास डालने लगा और गङ्गसर्वज्ञ ने पास आकर उसको अपनी छाती से चिपका लिया।

"बेटा! रो नहीं—भगवान् की आज्ञा को सिर आंखों पर रखनेवाले को परलोक में कैलास ध्रुव है—और तू?"

"और मैं गज़नी अमीर के प्राण लेने उसके शिविर में पहुंचा, नंगी कटार से उसे मारने लपका परन्तु पकडा गया। देव की आज्ञा पूरी न कर सका। मैं हतभागी—मेरे समस्त कुल में हतभागी मैं अकेला ही जीवित रह गया—म्लेच्छ ने भी मेरे प्राण न लिये उसने भी मुझे छोड दिया।"

"बेटा! भगवान् त्रिशूल-पाणि तेरा रक्षण जब तक करते हैं तबतक म्लेच्छ की क्या ताकत कि वह तुझे मारे। शान्त हो! शान्त हो! स्वस्थता से बात कर—ले, पानी पी ले।"

अश्रु का प्रवाह यथा-कथञ्चित् रोककर सामन्त ने आप बीती सब

कह डाली और ज्यों-ज्यों वह सब विगत घटनाओं का वर्णन करता था त्यों-त्यों सर्वज्ञ के शान्त एवं गम्भीर मस्तिष्क में उनके श्वास के साथ "ॐ नमः शिवाय" की ध्वनि उठती थी।

"और अब गज़नी का अमीर कहां तक आ पहुँचा है?"

"गुरुदेव! पांच-सात दिन मे आबू के पास आ पहुँचेगा, पांच या दस दिन स्यात् विलम्ब भी हो जाय।"

"भीमदेव सोलंकी उसकी राह पाटण में बैठे देख रहे हैं, उसको हराना कठिन है", जैसे अपने हृदय से ही कहते हो इस तरह सर्वज्ञ ने कहा।

"गुरुदेव, यह तो मूर्खता है।"

"क्या?"

"गज़नवी का सामना बांधना तो..."

"तो फिर!"

"गुरुदेव! किसी को भी गज़नवी की और उसकी शक्ति की कल्पना भी नही है—वह भले दानव क्यों न हो परन्तु उसमें मनुष्यों को वश मे करने की शक्ति है, उसके पास कार्तिकेय के समान युद्धकला है, उसका सैन्य समुद्र के समान अगाध है। पाटण तो यों ही गिरकर ढेर हो जायगा।"

"छोकरे! तुझे पिनाकपाणि की कृपा मे विश्वास है?"

"विश्वास है", सामन्त ने कहा "परन्तु आपके इन वीरो की बुद्धिमानी मे नही। जब गज़नवी की चढाई की बात यहां पहले-पहल सुनी थी तब यहां सब लोगो ने यह सोचा कि वह तो चुटकी में नष्ट कर दिया जायगा। वाक्पतिराज ने भी ऐसा सोचा था। घोघाबापा की भी यही धारणा थी। और इसी कारण उनका कचूमर निकल गया। चौहान बालमदेव ने भी ऐसा ही माना था और वे भी रण में कुचले गए। मैं तो गज़नवी की सेना मे घूमा हूं। मैंने उससे बातचीत की है। मैंने उसका बाहुबल देखा है और उसकी प्रोत्साहन शक्ति का नापतोल किया

है—वह तो त्रिपुरासुर का अवतार है।"

"तो भगवान् शङ्कर उसे पूरा कर देंगे।"

"भगवान् शङ्कर पूरा तो करेंगे किन्तु भीमदेव के द्वारा नही।"

"तो फिर तेरा क्या अभिप्राय है?"

"मैं तो रास्ते भर सबसे कहता आया हूं और आपसे भी निवेदन कर देता हूं कि यदि गजनवी आवे तो रास्ता छोड दो। पाटण छोड कर सौराष्ट्र में आने दो और पीछे से ताले लगा दो। बाद मे थके-हारे सैन्य के साथ उसे लौटते हुए पूरा करो—दूसरा कोई उपाय नही है।"

"परन्तु वह यहा आ पहुंचे तो?" सर्वज्ञ ने पूछा।

"इसी वजह से तो मैं यहा आया हूं। गुरुदेव! भगवान्! आप प्रभास खाली कर पधारो, जब चाहे गजनवी आये और खाली प्रभास का दर्शन करे।"

थोडी देर तक सर्वज्ञ ने आंख मीचकर श्वास लिया।

"बेटा! तू यो कहता है कि म्लेच्छ सामने मुंह रोका नहीं जा सकता, इस हेतु उसे यहां आने दिया जाय, सन्दूक मे बन्द कर उसे दबा देना चाहिए—जैसे शुक्राचार्य का रूपधारण कर श्रीकृष्ण ने दैत्यो को दबा दिया था।"

"हां!" सामन्त ने स्वीकार किया।

"और" उन्होने दाढी पर धीमे-धीमे हाथ फिराते हुए विचार पूर्वक कहा, "प्रभास खाली कर मै चला जाऊं—मेरे भगवान् को किसी दूसरी जगह ले जाया जाय—दूसरी जगह!"

"हां।"

"और सकल जगत् के त्राता भगवान् सोमनाथ को म्लेच्छो के भय से छिपा दिया जाय?" गहन विचार मे अथवा अर्ध-निद्रा में बोलते हो, इस तरह सर्वज्ञ ने आंखे मूंद कर पूछा।"

"दूसरा कोई चारा नहीं।"

"और सृष्टि के प्रारम्भ में प्रादुर्भूत सैकड़ों ज्वालाओं से सुशोभित, प्रलय समुद्र के, अग्नि समुदाय के समान तेजस्वी, क्षय और वृद्धि से रहित अनिर्वचनीय और अव्यय,जगत् के मूलस्वरूप इस ज्योतिर्लिङ्ग को स्थान भ्रष्ट किया जाय ?" जैसे शिवपुराण ही कह रहे हों उस तरह सर्वज्ञ बोलते गए और उस विचार माला को समझने मे असमर्थ हो सामन्त तटस्थ हो देखता ही रहा। "और मै, शकर के अवतार भगवान् लकुलेश के मत का अधिष्ठाता शङ्कर की कृपा से सर्वज्ञ और दासानुदास स्वयं भगवान् चंद्रमा के हाथ से निर्मित मन्दिर को छोड भाग जाऊँ ?"

"गुरुदेव ।"

एक अंगुली उठा कर सर्वज्ञ ने उसे बोलने से निवारण किया । थोडी देर आंख मीच कर बैठे रहे, और सामन्त उनके चेहरे की ओर देखता ही रहा ।

सर्वज्ञ ने आंख खोली, उनके प्रफुल्ल नयनो मे दैवी तेज था ।

"बेटा ! भगवान् का ज्योतिर्लिङ्ग प्रलय काल मे भी खिसक नहीं सकता । और जहां वह वहां मै, म्लेच्छ को जो करना हो सो करे ।"

सामन्त थर-थर कॉपने लगा, अपने कुल देवता की मूर्त्ति के टुकडे उसकी आंखो में तिरने लगे । और अवश्यम्भावी की निश्चलता भी उस महात्मा के निर्णय के सामने शिथिल होती प्रतीत हुई ।

"परन्तु—"

"इसमे शका एवं तर्क को स्थान नही । देव और म्लेच्छ के मध्य में कोई मर्द का बच्चा खडा न रहे तो भी मैं वृद्ध ब्राह्मण अकेला ही खड़ा रहूँगा । मै देखूंगा क्या होता है ? पिनाकपाणी के प्राबल्य को कौन रोक सकता है ? इस वृद्ध के ललाट पर पूर्व मुनियों ने किये हुए पराक्रम करना ही लिखा हो तो तुम लोग क्या कर सकते हो ।"

इस तेजःपुन्ज तपोराशि को भला सामन्त क्या कह सकता था ?

"तो भीमदेव के सैन्य को तो यहां बुला लीजिये,पाटण में तो वह एक

दम कुचल दिया जायगा।"

"युद्ध के व्यूह रचने का काम मेरा नहीं। मैं पत्र देता हूं उसे लेकर कल सुबह पाटण जाओ। भीमदेव और दामोदर मेहता के साथ परामर्श करो। देखो वे क्या कहते हैं।"

"हां! आजकी रात यहां विश्रान्ति करूंगा और कल सुबह जाऊंगा।"

"ठीक है तो फिर मुझसे मिलना। मैं पुनः स्नान कर लेता हूं, मुझे भगवान् को जल चढ़ाने जाना है।"

पिछले चार महीनों में पड़े हुए दुःख और प्रत्यक्ष देखी हुई विपदा ने सामन्त के सिर पर अनेक वर्षों का भार खींच दिया था। पूज्य पूर्वजों, अग्रजों और माताओं, भाईयों और बहिनों को मरते, जलते, गिद्धों के भक्ष्य होते उसने देखा और अपने परम प्रिय पिता को देवों को भी दुर्लभ मृत्यु को आनन्द के साथ आलिङ्गन करते उसने देखा था। अखण्ड जगत् में गर्विष्ठ घोघाकुल में वह अकेला ही रह गया था। उसे घर न था, बाहर न था, स्वजन न थे और न स्वस्थता थी। भगवान् सोमनाथ की आज्ञा के निर्वाह के लिए ही वह जीवित था, म्लेच्छ के सिर छेदने के सिवा उसके जीवन में अन्य कोई प्रयोजन न था, अन्यथा सब तो निहत हो और वही केवल कैसे जीवित रहे ?

सर्वज्ञ के पास से निकला तब से वह यही विचार कर रहा था। सर्वज्ञ की आत्मश्रद्धा और अविचलता ने उसकी श्रद्धा को सहारा दिया। आबू और प्रभास के मध्य में क्या हो और क्या न हो ? कौन कह सकता था कि इन प्रतापी सर्वज्ञ की—जो भूत और भविष्य को जानते थे—दृष्टि भी असत् थी ?

वह मन्दिर की ओर मुड़ा और उसके विचारों में मानुषी तत्व आया। सोमनाथ के मन्दिर में ही अब उसका सर्वस्व था। उसके देव, उसके पिता के गुरुदेव और वह नर्तकी—जिसने उसे और उसके पिता को भस्म लगाई थी और उससे कहा था, "विजय कर शीघ्र ही लौटना"—जिसका स्मित, जिसके शब्द, उसे दिन-प्रतिदिन याद आते और उसके

जीवन के साथ सङ्कलित होते थे। वह तो जाने वाला था, घूमता फिरता, इधर-उधर गजनवी के प्राण लेने। पुनः भगवान् के मन्दिर में पैर रखने का प्रसङ्ग भी कदाचित् न आय ? यहां भाग्य उसे खींच लाया है तो क्यों वह अपने चार जीवन में एक मधुर बिन्दु को ही जिह्वा पर न रख ले ?

वह धीमे-धीमे मन्दिर पर आया और चारो ओर उसने नजर डाली। उसने आशा की थी कि वहीं-कहीं वह सुख, वह हास्य और वही अङ्गलालित्य होगा, परन्तु उसको आशा फलीभूत न हुई। भारवाही हृदय से उसने भगवान् को प्रणाम किया, बिल्वदल समर्पण किये और रोती हुई आंखो से प्रार्थना की। इतने दिनो के दुःख और परिश्रम के परिणाम का अनुभव उसे आज हुआ। थोडे दिन तक निर्जन अरण्य मे वह भयभीत चित्र-सा भटकता रहा—वह दृश्य उसके आसपास आ खडा हुआ—वह एकाकी, निराधार, व्याकुल हो गया—वह सरक न सका—सभामण्डप के एक कोने मे वह जा बैठा और मस्तक को पैरो मे गिरा· कर उसने हृदयहारक रोदन शुरू किया।

वह एक के बाद एक स्वजन का स्मरण कर क्रन्दन करने लगा। घोघाबापा—बहादुर और उसके गौरवशील दन्त कथाओं के देव; उसके पिता—गजनी के अमीर को अकेले हाथ थका देने वाले; रमणियो मे श्रेष्ठ उसकी माता—देवी के समान देदीप्यमान, जिसके शव का अर्धदग्ध हाथ उसने पहिचाना था; उसकी चार वर्ष की छोटी बहिन—फूल की कली के समान सुकुमार और कमनीय, उसका भी अर्धदग्ध पैर उसने देखा था—यह-वह और वे—इन दारुण दर्शनो का सृजन क्या उसीके भाग्य से हुआ था ?

धगधगाते अङ्गार के सदृश अश्रु बिन्दु उसकी आंखो से टपकने लगे। उसके विकल अन्त.करण मे कम्पन होने लगा।

कितनी देर तक वह रोता रहा इसका उसे भान भी न रहा। परन्तु एक स्त्री के मधुर स्वर ने उसे उद्वेग मूर्छा से जागृत किया। लगभग

पच्चीस वर्ष की एक नर्तकी उसकी ओर रहस्यपूर्ण दृष्टि से देख रही थी।

"नायक ! क्यों रो रहे हो ? जो शङ्कर करता है वह सब ही के लिए है।"

सामन्त को उस मुख का अवलोकन कर आघात पहुँचा। वह थी नर्तकी और वही नर्तकी। परन्तु वह तो काजल मे भरी हुई विषय-तृषित आंखे थी। उसकी कल्पना मे तो वे ही बालिका के निर्दोष नयन उपस्थित थे।

"नायक ! रोने से कभी किसी का उद्धार न हुआ। मेरे साथ चलो, मैं आपको हँसाऊंगी", आंखे नचाती हुई प्रगल्भ नर्तकी ने कहा।

"मुझे हँसाओगी ? बाई ! जगत् मे कोई भी मेरे आंसू को पोंछ नहीं सकता।"

"यह आपकी भूल है", कटाक्षपूर्ण नेत्रो से सामन्त को वश करने का प्रयत्न करती हुई नर्तकी बोली। त्रिपुरसुन्दरी की कृपा जहां हो वहां अश्रु तो ढूंढने पर भी नही मिलते—उठो, चलो मेरे साथ।"

"कहा ?" सामन्त उठा। सर्वज्ञ के आदमी उसकी राह तो ज़रूर देखते होगे, परन्तु उसे किसी भी प्रकार से अपने हृदय का भार क्षीण करना था।

वह नर्तकी नीचे झुककर बोली। "आज त्रिपुरसुन्दरी का उत्सव है। चलो मेरे साथ कोई नहीं है, जन्म जन्मातर के पाप से मोक्ष होगा।"

"त्रिपुरसुन्दरी का उत्सव !" जैसे शब्दो का अर्थ वह न समझता हो वैसे वह बोला। उसने सुना था कि मन्दिर के एक सुरक्षित भाग मे शङ्कर की अर्धाङ्गना महाशक्ति की पूजा होती थी। और उसका महोत्सव परम्परा से दीक्षित नर-नारियां भयावह अवर्णनीय विधि से करते थे। वे कौन सी विधियां थी यह भाग्य से ही कोई जानता था—उन्हे जानने की इच्छा भी उसे आज न थी। "परन्तु मैं कैसे आ सकता हूं—मै तो दीक्षित नहीं हूं।"

"आप तो हैं—कल रात को मुझे महाशक्ति ने स्वप्न दिया था—"

"कौनसा ?"

"रात को महामाया ने मुझे स्वप्न मे बतलाया था कि आप ही भगवती के परम भक्त हैं।"

"मैं ?" चौंककर सामन्त ने कहा।

"हां !" महामाया ने कहा "एक वीर मेरे भोले नाथ के मण्डप में बैठे-बैठे रो रहा है। वही यहां आयगा और मेरी और मेरे स्वामी की रक्षा करेगा।"

"क्या ? सच कह रही हो ?"

"हां। और आपको महामाया के चरणों में उपस्थित करने की आज्ञा हुई है।"

"सच बात है ? पार्वती जी ने स्वयं उसे अपना उद्धारक माना। क्या इन्ही हाथों से गज़नी के अमीर का संहार होगा ?" उद्वेग से संत्रस्त सामन्त का हृदय उछलने लगा। "क्या ये ही शम्भु और उसके भव्य मन्दिर के त्राता होंगे ?"

"तुम कौन हो ?"

"मैं कुण्डला—देवदासी। चलो।"

सामन्त उठा और नर्तकी के पीछे-पीछे जाने लगा। शनैः-शनैः उसका मन स्वस्थ होने लगा और वह उस नर्तकी के सुघटित विलास सूचक अङ्गो की ओर देखता रहा। यह उस छोटी-सी नर्तकी से कितनी विभिन्न थी ? उसके अङ्गों मे से तो मानों शिवभक्ति की निर्मलता ही झर रही थी, और यह थी स्थूल विलास में मग्न देवदासी। सामन्त के हृदय में आशा के अङ्कुर बढने लगे। "क्या सोमनाथ के सुमेरू सदृश प्रासाद का रक्षण उसके ही हाथ से होने वाला है ? इस नर्तकी ने यथार्थ कहा, अथवा यो ही केवल बात बना दी ? नहीं, नहीं—ऐसा कदाचित् न हो। घोघाबापा के सकल कुल मे वही अकेला क्योंकर जीवित रहता ?"

नर्तकी के पीछे सामन्त चल पड़ा। एक ओर स्थित द्वार से होकर

वह नर्तकियों के वर्ग में जा पहुँचा। इस नूतन अपरिचित परिस्थिति को देखकर सामन्त क्षणभर के लिए अपने उद्वेग एवं निराशा दोनों को ही भूल बैठा। वह तो अगम्य महाशक्ति त्रिपुरसुन्दरी के रहस्यपूर्ण मन्दिर मे जगज्जननी महामाया से निमन्त्रित हो जा रहा था।

आगे जाकर कुण्डला ने एक छोटे से द्वार की शृङ्खला बजाई। थोडी देर मे किसी ने भीतर से उसे खोला।

"कौन है ?"

"यह तो मैं कुण्डला।"

"क्या वह मिला ?" उसने पूछा। वह आधी सुध मे बोलती हुई आवाज़ थी।

"हां।"

"ले आओ।"

"उस पुरुष ने द्वार खोला। कुण्डला और सामन्त दोनो अन्दर घुसे। वहां एक चौगान में तीन साधू बैठे थे जिनके शरीर पर राख के सिवा और कुछ न था। उनकी आंखे लाल सुर्ख थीं, और वे कुछ अस्पष्ट मन्त्रो का उच्चारण कर रहे थे।

जिस साधू ने द्वार खोला था उसीने एक दीवार मे खोसी हुई मसाल निकाल कर सामन्त के सामने रखी और पूछा, "तू कौन है ?"

"चौहान हूं।"

"महाशक्ति का भक्त है ?"

"मै भगवान् सोमनाथ और जगदम्बा महाशक्ति दोनों का भक्त हूं।"

"यही—यही वह है जो मेरे स्वप्न में आया था—वही" कुण्डला ने कहा।

"तेरे हृदय में हिम्मत है ?" दूसरे साधू ने पूछा।

"किस बात की ?"

"जीते-जागते महाशक्ति की दीक्षा ग्रहण करने की।"

सामन्त ने चारो ओर देखा। कुण्डला उसके पास से हटकर किसी काम मे लग गई थी—मानो वह अपने परिधान को उतार रही थी। अस्थिर मशाल के द्वारा चञ्चल किए हुए अन्धकार मे चौगान की दूसरी बाजू पर एक द्वार से छाया कृतियो को बाहर जाते हुए उसने देखा। आकृति मनुष्य के शरीर की थी।

त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर मे ली जाने वाली दीक्षाओ के सम्बन्ध में अनेक कथाएं जो सामन्त ने सुन रखी थीं उसके मस्तिष्क मे ताज़ी हुईं। क्या इस मन्दिर मे भयानक कही जाने वाली विधियो के लिए उसे दीक्षा मिल रही थी? हे भगवन्! जिस समय गज़नवी दरमंज़िल इस मन्दिर का नाश करने चला आ रहा था—जिस समय उसका कर्तव्य पाटण की ओर दौड़ती हुई ऊटनी पर जाने मे था, उस समय वह इस भयङ्कर पंथ की वीभत्स दीक्षा लेने जा पहुंचा था!"

"बोल, है हिम्मत?" पहले साधू ने पूछा।

"हिम्मत? हिम्मत तो बिलकुल नही।"

"तीनों साधू एकदम उसकी ओर बढे और चिल्लाए, "क्या कहा?"

"त्रिपुरसुन्दरी की विधियों का निर्वाह करने के लिए मुझसे दीक्षा नहीं ली जा सकेगी—मैं इसके योग्य नहीं।"

"तो फिर तू यहां क्यों आया? पापी, अधम!" एक साधू ने सामन्त को गर्दन से पकड लिया, "महामाया का कोप होगा तो?"

"मै अपनी मर्ज़ी से नहीं आया, मुझे तो वह कुण्डला लाई, मुझे यहा नही रहना—मैं यह चला।"

"यह चला—चला किधर है?" एक साधू ने सामन्त की भुजा पकड कर कहा। "महामाया के मन्दिर को अपवित्र कर खिसक जाना चाहता है।"

"छोड़ दो मुझे।" सामन्त ने उस साधू के पंजे से छूटने का निष्फल प्रयत्न शुरु किया। उसे इस तरह विरोध करते हुए देख दूसरे साधू ने आकर उसके हाथ पीछे से पकड़ लिए। "छोड दें तुझे? अवश्य!" यो

उसके मुंह से शब्द निकले।

ताना मारते हुए साधू खिलखिला कर हँस पडे।

"छोडो—कुण्डला! क्या मुझे यहा इसलिए लाई थी?" सामन्त ने क्रन्दन किया।

"मूए!" क्रोधाविष्ट कुण्डला अन्धकार मे से बोली—जैसे वह भी मानो क्रन्दन ही कर रही हो "मुझे क्या मालूम था कि मेरा स्वप्न झूठा होगा—मुझे तो विश्वास था कि महामाया मुझ पर प्रसन्न होगी। पर तू तो ऐसा दाम्भिक निकला—तो तू अब मर।"

"महामाया के मन्दिर को भ्रष्ट कर कोई जीवित लौट ही नहीं सका।"

सामन्त को साधुओं ने एक खम्भे से जकड कर बांध दिया। उसने छूटने का प्रयत्न करना छोड दिया—उसे जीवित रहने की कोई लालसा न थी।

"तो महाराज!" सामन्त ने उससे कहा, "गुरुदेव सर्वज्ञ को तो सूचना दे दो कि वे मेरी राह न देखें।"

साधु चौंककर पीछे हटे, "सर्वज्ञ!"

"हां वे मेरी राह देख रहे होंगे।"

एक साधु ने बडे ध्यान से सामन्त की ओर देखा जैसे वह कुछ समझ ही गया हो। "ऐसा" उसने भयङ्कर आवाज़ से कहा, "तो फिर वे तेरी राह देखते ही रहेंगे।" इतना कहकर उसने भूमि पर पडे हुए त्रिशूल को उठाकर सामन्त के गले पर रखा।

दसवां प्रकरण

पुनर्मिलन

: १ :

सामन्त को प्रतीत हुआ कि अब उसकी आ लगी है। परन्तु उसे जीवित रहने का तनिक भी उत्साह न था। उसने आंखें मूंद लीं और सोमनाथ और घोघाबापा का स्मरण किया—वह जाकर अपने माता पिता से तत्काल ही मिलेगा...।

कुण्डला की व्याकुल चीख सुनाई पडी, "नही, नही, आज यहां पुरुष के रुधिर का बिन्दु भी नहीं पडना चाहिए।" साधू चौंककर पीछे खिसक गया। "पुरुष के रुधिर का बिन्दु महाशक्ति के मन्दिर मे उत्सव के दिन गिरे तो पृथ्वी रसातल चली जाय!"

"सर्वज्ञ ने ही इसे यहां भेजा है।" दांत पीसकर साधू धीरे से बोला।

"इसे मैं समझाऊँ?"

"नहीं। यह तो तुझे झूठा ही स्वप्न हुआ है।"

"राणी जी से पूछो कि क्या करना चाहिए।"

तीन साधुओं ने मन्द स्वर से कुछ बातचीत की और दो साधू और कुण्डला भीतर के द्वार से कही चले गए। सामन्त के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई मानो वह आधी स्वप्नावस्था में ही हो। इस भीतरी दरवाज़े में त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर मे कौन-कौन-सी विधियां चल रही होगी। बीभत्स, भयानक, और उद्दीपक! और इन मूर्खों को भान न था कि यम से भी अधिक विनाशक गज़नी का अमीर प्रतिपल निकट आरहा है और जिसके हाथ में उसे परास्त करने की कुन्जी थी उसे उन्होंने वहां बांध रखा है। क्या सारा ही विश्व विनाश की दाढ मे

घुम रहा था ?

कुण्डला की अकुलाहट का पार न रहा। वह नर्त्तकियों में महा-आकर्षक और महत्वाकांक्षी थी। किसी दिन किसी नूतन गुरुदेव की गङ्गा बनकर मन्दिर की अधिष्ठात्री हो जाने की उसे तीव्र लालसा थी। हर तीन माह में जब ऐसा उत्सव हो तब महाशक्ति उसके शरीर में प्रकट हो और वह स्वयं जीती-जागती त्रिपुर सुन्दरी-सी पूजित हो यह उसकी आकांक्षा थी। परन्तु पिछले वर्ष उत्सव के प्रसङ्ग पर त्रिपुर सुन्दरी उसके शरीर में अवतीर्ण हो, ऐसी योग्य वह न थी। किन्तु कल ही वह ऐसी बनी थी, कारण, महामाया ने उसे स्वप्न दिया था और आज स्वप्न के अनुसार निर्दिष्ट स्थान पर पुरुष भी मिला था—इतना सब होते हुए भी ठीक अवसर पर सब धूल में मिलने को ही था।

उसकी दूसरी इच्छा शिवराशि को वशीभूत करने की थी। सर्वज्ञ का शिष्य शिवराशि कुछ ही दिनों में गुरू की गद्दी पर विराजमान होंगे और यदि उनकी कृपा सम्पादन की जाय तो अवश्य कुण्डला जो धारे सो हो। शिवराशि का ध्यान आकृष्ट कर लेना तो एक सरल बात थी परन्तु उन्हें केवल अपना ही बनाए रखना कुण्डला को लगभग अशक्य ही प्रतीत होता था। वे उग्र सयमी न थे यह बात तो सही, परन्तु उनका चित्त चौला पर टिका हुआ था। कुण्डला के मन में आशा की एक ही किरण थी। कदाचित् उत्सव के प्रसङ्ग पर महाशक्ति कुण्डला में अवतीर्ण हो और आचार्य के सम्बन्ध से शिव-राशि उसकी एक बार आरती उतारे तो कहीं सम्भव हो कि उनका चित्त चौला पर से विचलित हो जाय। त्रिपुर सुन्दरी का उत्सव कोई वैसा न होता था। महाशक्ति किसी स्त्री में जीवित प्रकट होती थी और गुप्त विधि-विधान करते-कराते कई एक चमत्कार होते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों उत्सव की घड़ी पास आने लगी त्यों-त्यों उसके हृदय में विह्वलता बढ़ने लगी। स्वप्न असत्य ठहरा, और उस नायक के कारण मन्दिर

भ्रष्ट हुआ। यह तो सब ठीक, परन्तु जिसमें महाशक्ति उतरने वाली होती है उसे जैसी मूर्छा आती है, वैसी उसे नहीं आरही थी ? क्या यह मौका भी हाथ से निकल जाने वाला था ? उसने सुरा का पान भी पर्याप्त किया था, परन्तु अभी तक कुछ परिणाम न हुआ। हाथ में आई बाज़ी खिसकती जा रही थी।

दो साधुओं के साथ वह जैसे ही भीतर गई कि चौगान का अगला द्वार जिससे वह सामन्त को अन्दर ले आई थी, बजा। शिवराशि पधारे। हाथ से वह अवसर निकले जा रहा था—निकल जाय तो क्या होगा ?

उसने द्वार में से पीछे देखा। शिवराशि और सिद्धेश्वर आ रहे थे। मद्य माया पर कहां तक आधार रखे। वह स्वयं ही महामाया थी—वह चीख़ पड़ी। उसने जैसे चक्कर खा रही हो इस तरह सिर पर हाथ रखा और उसके साथी साधू अपने हाथ बढा कर उसे सहारा दें इससे पहले ही वह बेसुध हो गिर पड़ी।

त्रिपुरसुन्दरी कुण्डला में अवतीर्ण हुई हैं ऐसी धारणा रखने वाले साधुगण बहुमान पूर्वक "जय जगज्जननी" कहते हुए उसकी सम्भाल में गए। शिवराशि के क्रोध का पार न रहा। वह पैर पछाड़ते चौगान में चला आया। उसके साथ उसका विश्वस्त सिद्धेश्वर भी था। जीवन में यह प्रथम ही प्रसङ्ग था कि वह अपने गुरुदेव के प्रति सम्मान की भावना न रख सका। गुरुदेव ने जो आज किया था उससे दसों दिशाएं अपवित्र हुईं, ऐसा उसे विश्वास होने लगा। लकुलेश मत के अधिष्ठाता, ज्ञान के अम्भोधि और रुद्र के अवतार माने जानेवाले श्री गङ्गसर्वज्ञ ने आज धर्म का नाश कर डाला था। त्रिपुरसुन्दरी के उत्सव के दिन चौला सब तरह योग्य थी, और आज प्रातःकाल त्रिपुरसुन्दरी उसके शरीर में उतरी थी, तथापि गङ्गसर्वज्ञ ने उसकी पूजा करने की आज्ञा न दी थी।

चौला तो मूर्ख थी—बालिका थी—त्रिपुरसुन्दरी के लिए अपेक्षित वाममार्गीय विधियों से वह बहुत घबराती थी। गत एकादशी तक तो जब-जब उसे इस मन्दिर में लाने की कोशिष होती तब-तब उसकी माता

गङ्गा यह अभी बालिका है, विधियों में भाग लेने के योग्य नहीं है, यों कह बात उडा देती थी। परन्तु विगत एकादशी के दिन से ही उसे भगवान् के मन्दिर में नृत्य करने का अधिकार प्राप्त हुआ था। अब वह बालिका न थी। अब तो जागृत ज्योति के साथ जगदम्बा उसके शरीर में प्रकट हुई थीं—जिस अधिकार के लिए नर्त्तकियां मर मिटती थीं वह तो उसे अनायास ही प्राप्त हो गया। प्रातःकाल से वह अचेत हो गई थी और जिस तरह वह स्वयं शम्भु अर्धाङ्गना ही हो इस तरह वह बोलने-चलने लग गई थी। उसकी योग्यता सब तरह निर्धारित हो चुकी थी और शिवराशी की भी इच्छा थी कि चौला आज के उत्सव प्रसङ्ग पर त्रिपुरसुन्दरी के रूप में पूजित हो।

शिवराशी को चौला की मनोदशा अजीब सी मालूम होती थी। गत एकादशी के दिन से चौला कुछ और ही बनी थी। जब कभी वह मिलता तो चौला किसी काल्पनिक धुन में ही हो ऐसी दिखाई देती। उसकी आंखे मानों कुछ वस्तु निहारती हो ऐसा प्रतीत होता था। उसके स्वर मे और रीति भांति में एक प्रकार के पार्थक्य का प्रादुर्भाव हो गया था। उसके साथ किसी सामान्य प्रकार की स्त्री के साथ जैसा व्यवहार रखा जाय वैसा रखना शिवराशि को कठिन जान पडा, और ज्यों-ज्यो अशक्यता अधिक प्रकट होने लगी त्यों-त्यो राशि का मोह बढता गया। गङ्गा ने भी कुछ न समझाया। शिवराशि को चौला सर्वस्व अर्पण करे यह तो उसे पसन्द था, किन्तु चौला की मनोदशा इतनी विशुद्ध और भक्ति-पूर्ण होती जा रही थी कि उससे कुछ ज़बरदस्ती से करवा लिया जाय यह अशक्य सा हो गया था।

परन्तु शिवराशि को दो दिन से यह आशा लगी हुई थी कि उस उत्सव के प्रसङ्ग पर चौला की जब वह महामाया के रूप में पूजा करेगा तब वह अन्तर टूट जायगा। परन्तु वह आशा तो मन-ही-मनमें रह गई। कारण गुरुदेव ने परम्परा से चली आई पूजा की विधि की अवहेलना कर धर्म का खण्डन किया। शिवराशि विद्वान्, श्रद्धालु, और गुरुभक्त

अवश्य था परन्तु अपने गुरु जैसी विशाल दृष्टि उसमें न थी। एक नर्तकी के लिए इस तरह धर्म का खण्डन हुआ यह देख उसके हृदय मे धार्मिक ज्वाला दीप्त हुई। और निराश हुई विषय-लालसा ने उसमें घृत की आहुति डाल दी। जब वह वहां आया तब उसकी भृकुटि चढ़ी हुई थी। गुरुजी को क्या अधिकार कि वे देवी की पूजा विधि में हस्तक्षेप करे ? वे तो थे धर्म के सरक्षक, उन्हे धर्म के उच्छेद करने का क्या अधिकार ?

क्या गुरु भक्ति मे अन्ध श्रद्धा रख ऐसा धर्म का खण्डन सह लेना चाहिए? क्या सब शास्त्र मिथ्या है और केवल सर्वज्ञ ही यथार्थ है ? इस विधि के आचार्य रूप मे निजका कर्तव्य क्या था ? राशि के आते ही बेसुध कुण्डला को ले वे साधु आ पहुंचे।

"आचार्य ! आचार्य!" एक साधु ने कहा "जगज्जननी अवतीर्ण हुई, कुण्डला मे अवतीर्ण हुई है।"

शिवराशि ने भूखे व्याघ्र के समान गर्जना की, और कहा "छोड दो इसे, यह तो ढोग करती है—बिलकुल ढोंग। महामाया तो चौला मे उतरी हैं।"

"ऐसा क्या", यों कह साधुओ ने कुण्डला को पृथ्वी पर ढकेल दिया।

शिवराशि को किसी-न-किसी पर गुस्सा उतारना था। उसने जाकर कुण्डला को ठोकर दी, "उठ झूठी, नहीं तो, एक लात मारूंगा तो दांत टूट पडेगे।"

कुण्डला को भी कुछ ऐसा ही डर था, अतएव उसने आंख खोलकर "जय जगज्जननी"का घोष किया।

"मैने नही कहा था कि यह ढोंग कर रही है ? जगज्जननी चौला मे उतरी है।"

साधुओ ने कुण्डला को वही पडी रहने दिया और वे राशि के पास आये। कुण्डला अन्धेरे मे स्वयं बैठी हुई और हताश दृष्टि से चारों ओर देखने लगी। इसको अपने जीवन की आशा न रही। पास के खम्भे

से बंधा हुआ सामन्त बिना हंसे न रह सका।

इतने में कुछ बाबा आए—आठ, दस, बारह—नाममात्र के ही आच्छादन से ढके हुए। उनकी लाल आंखों और मुंह पर उग्रता थी।

"महाराज," एक वृद्ध चिल्ला उठा, "यह क्या? महात्मा की पूजा अनादिकाल से कभी रुकी नहीं तो वह आज क्यों कर रुकेगी? यहां तो प्रलय काल आसन्न प्रतीत होता है।"

जब बाबा हुङ्कार कर रहे थे तब द्वारकी दूसरी ओर अंधेरे में अनेक अनाच्छादित आकृतिया अधीरता के साथ राह देखती हुई सामन्त ने देखीं। कैसा एक नाटक इसकी दृष्टि के सामने हो रहा था। जैसे वह स्वयं स्वप्न में ही हो ऐसा उसे भान हो रहा था।

शिवराशि भी उग्र हो गया था, "मैं भी तो वही कह रहा हूं। यह कुण्डला ढोंग कर रही है, इसमें महाशक्ति नहीं उतरी है, और जिसमे उतरी हैं, उसे गुरुदेव आज पूजने नहीं देते।"

पल भर सबने इस वाक्य के अर्थ को समझाने का प्रयत्न किया, और वह वृद्ध साधु अङ्गार बरसाती हुई लाल आंखों से आगे बढ़ा।

"महामाया त्रिपुर सुन्दरी को अपूजित रखने की किसकी सामर्थ्य है? जो इस विधि का उल्लंघन करे उसे गुरुपद पर रहने का अधिकार नहीं।"

"हां।" सिद्धेश्वर ने राशि जी का समर्थन करते हुए उनकी ओर देखा।

शिवराशि के हृदय में दिनों से अन्तर्निहित द्रोह उसके मुख पर प्रकट हुआ। गुरुभक्ति या विधि सेवा—संयम अथवा चौला से मोह?

वृद्ध ने आकर राशि को हाथ जोड़े। "राशिजी, यदि आप ही विधि को सम्पन्न नहीं करेंगे तो करेगा कौन? अनादिकाल से प्रचलित धर्म लुप्त हो रहा है—यह तो मुझसे नहीं देखा जाता, महामाया त्रिपुरसुन्दरी की पूजा तो होनी ही चाहिये", सिद्धेश्वर ने धीरे से कहा।

सर्वज्ञ को मात कर शिवराशि को अधिकार सिद्ध करने का यह

अवसर था। इन्हीं साधुओं के विश्वासपात्र होने में भावी अधिकार की कुञ्जी थी।

शिवराशि दृढ़ हुए। "अवश्य, महाशक्ति कदापि अपूजित नहीं रह सकती। सिद्धेश्वर! चल, चौला को ले आवें। परम पूज्य जगदम्बा की विधि के उल्लंघन का मैं साक्षी नहीं हो सकता। इतना कहकर वे दोनों चौला को लेने गये। साधुओं ने हर्षनाद किया। शिवराशि के मन मे एक बात की तो शान्ति थी कि इस समय गुरुदेव तो प्राणायाम में उलझे होंगे सो उन्हे कोई सूचना भी नहीं दे सकता था।

परन्तु राशि को जाते देख सामन्त का वह हृदय, जो चौला को देखने के लिए उत्सुक था, उसे इस विकराल परिस्थिति मे देखने की सम्भावना के कारण थरथर कांपने लगा। निर्निमेष नयन और दीर्घ श्वास से वह दरवाज़े की तरफ़ देखता रहा। उसने अपने बन्धन की ओर देखा और पाया कि किसी भी छल-बल से उससे छूटने की सम्भावना नहीं थी। सदेह उसने कुल का ध्वंस होते देखा था। जो कुछ शेष रहा था वह स्वप्नसुन्दरी के समान एक स्त्री के स्मरणवश ही था। और आज उस स्त्री को भी भ्रष्ट होते हुए देखने का दुर्भाग्य उसके कर्मों में लिखा था। इसलिए उसके मुख पर निराशा के कारण विवर्णता छा गई।

: २ :

चौला तो अर्ध-मूर्च्छित थी। उसके उत्साहपूर्ण नयन मद भरे थे। उसके मुख पर विह्वलता थी। उसके गुलाबी अर्ध-खुले होठ में से थोडी-थोड़ी देर मे आवाज़ निकलती थी—"मेरे शम्भु! हे नाथ!" उस समय ऐसी मूर्च्छा उसको थोडी-थोडी देर में आती थी। उस समय वह कल्पना की सृष्टि में भीलनी या पार्वती के रूप में भगवान् शङ्कर के साथ कैलाश पर विहार कर रही थी। पास में चिन्तातुर वदन से गङ्गा बैठी थी। पहले तो उसकी धारणा यह थी कि चौला पागल होती जा रही थी, किन्तु गङ्गसर्वज्ञ ने यह विश्वास दिलाया था कि

यह उन्माद नहीं था अपितु शिव के चरणों में आत्म-समर्पण की पराकाष्ठा थी।

इतने मे शिवराशि और सिद्धेश्वर द्रुतगति से आ पहुँचे और चौला चौंक उठी।

"क्यों, क्या है ?" गङ्गा ने घबरा कर पूछा।

"चौला"—परन्तु इससे पहले कि वह आगे कुछ बोले, दूर से गम्भीर शङ्खनाद सुनाई दिया, और सुनते ही चौला बिछौने पर उठ बैठी।

"मेरे नाथ का शङ्खनाद।", वह विह्वल होकर चारों ओर देखने लगी।

"माँ, मां मेरे नाथ मुझे बुलाते हैं। मुझे ले चल भगवान के पास। नाथ, प्रभो, मैं यह आई, यह आई।"

शिवराशि हंसा। चौला मे सचमुच महामाया उतरी है ऐसा मालूम होता था। उसका मनोनीत अवसर आ पहुचा।

"चौला, हां, तुझे भगवान् सोमनाथ बुलाते है। मैं बुलाने आया हू।"

तत्काल चौला उठी, और अभिसारिका की उत्सुकता के साथ निकट आई। "राशिजी! सचमुच। तो मुझे ले चलो, ले चलो मुझे। मेरे नाथ से मिलाओ, मेरे जटाधारी शम्भु से।"

उसके अर्धवृत ओष्ठ मिलन की उत्सुकता व्यक्त कर रहे थे। चौला के कन्धे पर हाथ रख शिवराशि उसे द्वार की ओर ले जाने लगा। गङ्गा बीच मे आई।

"राशिजी। यह क्या कर रहे हो ? चौला को कहा ले जाते हो ?"

"सिद्धेश्वर! गङ्गा को यही रख। इसका वहां क्या काम ? ऐसा कहकर शिवराशि चौला को ले गया, और सिद्धेश्वर ने गङ्गा को उसके ही घर में बन्द कर बाहर से सांकल लगा दी। त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर के गुप्त द्वार से चौला को अन्दर आते देख सामन्त के विस्मय का पार न रहा। उसने तो सोचा था कि शिवराशि कलपती हुई चौला को उसकी मर्जी के विरुद्ध उठा लावेगा। इसके विपरीत चौला तो लालसा भरी लाडली, उत्सुक प्रियतमा के समान

अपने प्रियतम से मिलने के लिए घुली आ रही थी। उसकी आंख में विछोह था। उसके खुले हुए होंठ से अधीर निःश्वास निकल रहे थे। और उसके पैर ठुमकियां दे रहे थे। वह हरिणी के समान नाचती-कूदती आ रही थी। मन्द-मन्द समीर में झूमती हुई सुकुमार कमलिनी के समान वह डोल रही थी। लज्जा की मर्यादा से वह अस्पृष्ट थी। उसके मुख पर प्रणय के दिव्य उल्लास की तरङ्गें थी। प्रणय विह्वलता के अनुभव से जिस पल में स्त्रीत्व सुन्दरतम रूप धारण कर लेता है वही पल उस समय चौला का था। सामन्त ने उसे पहले जब देखा था उसकी अपेक्षा वह उस समय कहीं अधिक देदीप्यमान दीखती थी, और उस दिव्यता के दर्शन में मग्न हो, उस प्रसङ्ग की गम्भीरता को भी वह क्षण भर के लिए भूल गया।

"मेरे शम्भु यहां हैं—इस मन्दिर मे?" उसने चारों ओर देख कर पूछा।

उसकी आंखो मे तेज था परन्तु आस-पास क्या है वह देख न सकी।

"हां। आज यही तुम्हारी राह देख रहे हैं", शिवराशि ने कहा।

चारों ओर मशाल लेकर खड़े हो साधु लोग त्रिपुर सुन्दरी को सदेह आते देख नीची दृष्टि कर स्तवन पाठ करने लगे। वह अन्तर्द्वार में मनोहर विद्युत्रेखा के तुल्य अदृष्ट हो गई। और शिवराशि तथा अन्य साधु पीछे-पीछे गये। शिवभक्ति ने उस समय उनके विषय-मालिन्य को पल भर के लिए धो डाला था।

अन्दर त्वरित एवं अधीर पैरो से वह गई। उसकी पूजा करने के लिए उत्सुक, अन्धेरे मे खडे हुए नर-नारियो को उसने नहीं देखा। महामाया की पूजा-विधि के अनुकूल उसका वेष न था और न उसके शरीर पर विलेपन ही था। उसने मन्त्र द्वारा विशुद्ध की हुई मदिरा का पान न किया। परन्तु उसे यह सब करना चाहिए यह सूचित करने का भान किसी को न रहा। उन्हें तो भगवान् शंकर के साथ प्रणय-

पूर्वक मिलने के लिए दौड़ती हुई महाशक्ति जगदम्बा त्रिपुर सुन्दरी दिखाई दी। मन्दिर के वृद्ध पुजारी ने वर्ष-प्रति-वर्ष हर तीन महीने अलग-अलग स्त्रियों में त्रिपुर सुन्दरी को उतरते देखा था। अतएव ऐसा अनुभव उसके लिए नवीन न था। परन्तु आज तो वह भी भान भूल गया। 'जय महामाया!' के घोष के साथ अर्घ्य समर्पण करने के पश्चात् वह कुछ भी कह या कर न सका। परन्तु शिवराशि इस प्रसङ्ग का लाभ लेने में नहीं चूका। गङ्गा सर्वज्ञ को शकर के भाव से भजती थी, फिर चौला उसे उसी भाव से क्यों न भजे? वह चौला के आगे त्रिपुर सुन्दरी के गर्भ-द्वार के सामने जा खड़ा हुआ। वहीं पास के झरोखे में एक त्रिशूल पड़ा हुआ था, जिसे जाने-अनजाने ही उसने हाथ में उठा लिया।

चौला आई, मन्दिर में दौड़ती हुई अधीर नयनों से उसने शिव राशि को मध्य में खड़ा हुआ देखा। "शिवराशिजी! मेरे नाथ कहा है?"

"ये रहे, दोनों भुजा फला कर शिवराशि ने अर्थ सूचित किया, परन्तु उस आशय को समझने की शक्ति चौला में न थी। उसने शिव-राशि को दूर ढकेला और वह गर्भ द्वार में दौड़ती हुई गई। "मेरे नाथ! मैं आई! यह आई!" और वहाँ मन्दिर में जो शङ्कर की मूर्त्ति थी उससे वह लिपट गई। और स्वच्छन्द शब्दों से लाड करने लगी। पीछे खड़े हुए नर-नारी गर्भ द्वार में से उस अद्भुत-प्रणय को सबहुमान देखते रहे।

परन्तु चौला तुरन्त बेसुध हो गिर पड़ी, अतएव प्रेक्षकों को भान हुआ कि चौला ने विधि-पूर्वक तैयारी किये बगैर शङ्कर की मूर्ति का स्पर्श किया था। पहले पहिने हुए ही कपड़े उसके शरीर पर थे और उसने विलेपन भी नहीं किया था, और महामाया के प्रतीक की पूजा भी न हुई थी। सब विधियां उस समय विस्मृत हो गई थीं। जो विधियां त्रिपुर सुन्दरी की पूजा का रहस्य थीं उन्हें भ्रष्ट कर चौला अपनी भक्ति से उन बीभत्स रस के प्रेमियों को विशुद्ध भाव की भूमिका

पर ले आई थी। परन्तु ज्यो ही उस भक्ति का जादू समाप्त हुआ त्योंही वे लोग एक दूसरे की ओर देख उस नवीन प्रकार के प्रति अरुचि प्रकट करने लगे।

शिवराशि को निष्फलता दीखने लगी—उसने गुरु के मान और आज्ञा दोनों का ही भंग किया। आगे क्या करना था यह उसे सूझा नहीं। परन्तु दूसरे बाबा लोग बडबडाने लगे। अधूरी रही हुई विधियां पूरी होनी ही चाहिएं। महामाया का मन्दिर यों भ्रष्ट नहीं हो सकता।

कुडग्ला की आवाज़ भी सुनाई दी, "जगदम्बा यो नहीं उतरती—अब यह ढोंग है या पागलपन ?"

किसी ने तो यह सुझाया कि बेसुध चौला को ले, उसे विधिपूर्वक तैयार कर महामाया की पूजा पूरी करनी चाहिए......

कोई कुछ और कोई कुछ कहने लगा। रसिक नर-नारी अधीर होने लगे।

: ३ :

गङ्गसर्वज्ञ प्राणायाम करने बैठे किन्तु वे सदा के समान स्वस्थता प्राप्त न कर सके। ध्यान के लिए उत्सुक होते हुए भी, उनका चित्त अपनी वृत्तियो को न रोक सका। गज़नवी के आक्रमण का विचार सदा उनके हृदय मे बना रहता। उन्हे अपने ध्यानस्थ चित्त में सहसा आक्रन्द करती हुई चौला दीख पडी। वह पुकार रही थी। वह भ्रष्ट की जा रही थी। शिवभक्ति के सत्वस्वरूप उस बाल-नतिका पर कोई अत्याचार हो रहा था। उनका ध्यान छूट गया, उन्होंने प्राणायाम छोडा और वे उठ खड़े हुए।

चञ्चल हरिण जिस प्रकार शिकारी से बच निकलने के लिए प्रयत्न करता हो उस प्रकार उन्होने चारो ओर दृष्टि डाली, अधीर श्वास लिया और वे नर्तकियों के आवास की ओर चल पडे। मन्दिर के सामने से गुरुदेव को उस तरह अधीर चाल से जाते हुए देख एक-दो चेले विस्मित हुए, परन्तु उनके श्रद्धाशील हृदय मे उस अधीरता के कारण को ढूंढ निकालने की इच्छा न हुई।

सर्वज्ञ गङ्गा के घर आए। वहां उन्होंने दरवाज़े पर बाहर से सांकल लगी देखी। परन्तु ज्यों ही वे लौटने लगे त्यों ही उन्हे भीतर से गङ्गा का रुदन सुनाई दिया। वे तुरन्त पीछे फिरे और साकल खोल अन्दर घुसे। गङ्गा वहां औंधा सिर किये रो रही थी।

"गङ्गा क्या है? क्यो रो रही है?"

"गुरुदेव!" उसांस लेती हुई गङ्गा बोली", उस पागल छोकरी को राशिजी त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर में ले गए—हाल ही। मेरी उस लाडली का क्या होगा?"

गङ्ग सर्वज्ञ की स्वस्थता क्षण भर तो लुप्त हो गई। अनेक वर्षों की तपश्चर्या से उनकी दृष्टि विशुद्ध हो गई थी। वे छोटे थे तब से ही उनको यह विश्वास हो गया था कि त्रिपुरसुन्दरी की वाममार्गीय विधियो मे अधमता और अत्याचार का अंश था। कई वर्ष हुए उन्होंने उन विधियो को विशुद्ध करने का प्रयत्न आद्रित किया था। सम्पूर्ण इच्छा के बगैर कोई भी उस मार्ग मे दीक्षा न ले; दीक्षित हुए बिना कोई देख न सके, अपने या शिवराशि के बिना कोई उसका उत्सव न करा सके—इन नियमो को तो पहले से ही उन्होंने अमल मे ला दिया था। कितने ही वर्षों से उन्होंने स्वयं उन विधियों और उत्सवों मे भाग लेना कम कर दिया था, और जब कभी शिवराशि वहां आचार्य पद लेने जाता तो उसे भी वे अनेक चेतावनिया देते। धीरे-धीरे उन्होंने उस मन्दिर के आस-पास अपनी अरुचिका द्योतक एक परकोटा खिचवा दिया था। मन्दिर का आखिरी भाग मानो एक कलङ्क रूप हो ऐसा उनके मन में निश्चय हो गया था। तथापि जब तक उन विधियों में निष्णात पुराने पुजारी जीवित थे और जब तक उन विधिओं में श्रद्धा रखने वाले भावुक आते थे तब तक वे उसे बन्द न कर सकते थे। सर्वज्ञ को यह विश्वास भी हो चुका था कि लकुलेश मत के कितने ही सिद्धान्त और विधियों में नूतन विशुद्धि करने की परम आवश्यकता थी और जितनी जल्दी बन सके उतना वे स्वयं इस ओर प्रयास भी कर रहे थे।

उनका प्रयास अबोध शिष्य, पूजक और भावुकों को रुचिकर न होता था—यह बात भी उन्हें अविदित न थी, और शिवराशि जैसे को भी इस विषय में उत्साह न था यह देख उन्हें कई बार निराशा हो जाती थी। चौला के विषय में उन्होने दृढ सङ्कल्प किया था कि उस निर्दोष बालिका को वाममार्गी दीक्षा न दी जाय। गंगा और शिवराशि को इस सम्बन्ध मे वे अपना सङ्कल्प स्पष्ट कर चुके थे। परन्तु वे यह भी जानते थे कि उनका पट्टशिष्य इस विषय मे उनसे सहमत न था। और आज जब वह यह कहने आया था कि चौला मे महामाया उतरी है तब ही उन्होंने उसे ठीक-ठीक जता दिया था कि वह उत्सव मे न ले जाई जाय। राशि के मुख पर वासना की झलक वे देख सके थे; शिष्य के स्वभाव मे वे कितने ही लक्षण खेद पूर्वक देखा करते थे और वैसे ही इस विषय में भी उन्होने उसकी मानसिक परिगणना कर ली थी। तथापि सामन्त की बात मे व्यग्र हो इस सम्बन्ध में अधिक सावधानी रखना भूल गए थे। उस समय गङ्गा की हक़ीकत सुनकर उनका पुण्य प्रकोप प्रज्वलित हो उठा। उन्होंने अपने श्वास का परिमाण ले अपनी स्वस्थता को बनाए रखा। तथापि अपने वर्षों के संकल्प को आज कार्यान्वित करना ही चाहिए यह उन्होंने निश्चय किया।

"मै जानता ही था," वे बोले। चल मेरे साथ और वह मशाल हाथ मे ले चल।"

गङ्गा ने आसू पोंछे और मशाल हाथ में ली। और सर्वज्ञ उसे साथ ले त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर मे ले जाने वाले गुप्त द्वार का कुण्डा खटखटाने लगे। जो बाबा वहां चौकसी करता था उसने दरवाज़ा खोला और गुरुदेव को वहां खडे देख उसके होश उड गए।

"गुरुदेव!" उसकी ज़बान से निकल ही पड़ा।

"हां, यही खडा रह।" वह बाबा घबरा गया और जहा-का-तहां स्तब्ध रह गया। गङ्गा मशाल लेकर अन्दर आई और उसके उजाले में भी सर्वज्ञ ने खम्भे से बंधे हुए सामन्त को देख लिया।

"सामन्त! तू यहां कैसे?"

"गुरुदेव! मुझे यहा त्रिपुरसुन्दरी की दीक्षा लेने ले आये" कष्टता के साथ हंसते हुए सामन्त ने कहा, "और मैंने दीक्षा लेना अस्वीकार किया इस कारण मुझे यहा बांध रखा है। और एक बाबा ने मेरे प्राण लेने का निश्चय किया है सो मैं उसकी राह देख रहा हू।"

"जिस पर सारे प्रभास का आधार है उसे यही पूरा कर देना चाहिए जिससे विनाश शीघ्र होवे। भगवान् पिनाकपाणि! यह कैसी बुद्धि सुझाते हो।" "इधर आ तो" एक बाबा को उन्होंने आज्ञा दी, "छोड इसे।"

उस बाबा ने झटपट सामन्त के बंधन छोड दिए।

"चौला को देखा?"

"हां, थोडी देर पहले ही वह राशिजी के साथ आई और भीतर गई," सामन्त ने कहा।

"अपनी राजी से?" सर्वज्ञ ने पूछा।

"हा हंसती और कूदती।"

"हां" गङ्गा ने कहा, राशिजी ने कहा कि भगवान् शम्भु उसकी राह देख रहे हैं इसलिए वह दौडती गई। आज वह भक्तिभाव से उन्मत्त तो हो ही गई थी।"

"खुशी से गई?" गुरुदेव ने पूछा। यदि वह खुशी से गई हो तो फिर कौनसी आपत्ति बताई जा सकती है, ऐसी शङ्का उनकी आवाज में स्पष्ट थी।

"नहीं, नही। ऐसी दीक्षा तो वह किसी भी दिन खुशी से न लेगी" गङ्गा ने कहा। "अरे ये तो अजब लोग हैं' सामन्त ने कहा। और उसकी आख के सामने विषय लालसा में उन्मत्त कुण्डला उपस्थित हुई। कुण्डला आई और उसे कंपकपी आने लगी।

"हूं, यह कह सर्वज्ञ भीतर गए और छुटा हुआ सामन्त और गङ्गा दोनों उनके साथ गए। वे सब भीतर चौक मे त्रिपुरसुन्दरी के

मन्दिर के सामने जा पहुंचे। वहां सामन्त की दृष्टि भूतावलि पर पडी और वह आंखें मूंदकर खडा रहा। एक ही मशाल के चञ्चल प्रकाश मे अनेक नर-नारियां त्रिपुरसुन्दरी के स्तवन गाते, गोल-गोल घूमते जाते थे और हाथ से ताल देते थे। वे स्त्री पुरुष थे या उनकी काली, मोटी भयङ्कर आकृतियां—यह भी समझ न पडता था। परन्तु अपने भाई, दादाओं के शवों पर उडते हुए गिद्धो को देखकर भी उसका हृदय इतना नहीं मिचलाया जितना आज उन आकृतियो को देखकर।

उस समय वाममार्गियो की वीभत्स विधियों को देखकर उनकी कल्पना मात्र से भी उसकी आंखो में अन्धेरा छाने लगा।

ये सब तीन-चार मनुष्यों के आसपास घूम रहे थे। जिन मे से एक के हाथ में मशाल थी। एक दम गाते हुए पूजक चुप हो गये। स्तवन और पगरव को पारकर एक भयत्रस्त मुख से निकलती हुई चीख़ उनके कानों में पड़ी। सर्वज्ञ और गङ्गा ने यह किसकी चीख थी पहचान लिया, और सामन्त भी समझ गया। सर्वज्ञ ने पैर बढाये, गङ्गा थरथर कांपने लगी और सामन्त का भी धैर्य छूट गया। उसने म्यान से तलवार निकाली, सिंह के समान गर्जना की और वह वीभत्स रस के रसिको पर जा टूटा। हाथ में तलवार लेकर घुसते हुए उस काल भैरव को देख उन सब नर-नारियो ने रास्ता दे दिया। बीच में बूढ़ा पुजारी मशाल लेकर खडा था। एक बलिष्ठ स्त्री छूटने के लिए मचलती हुई चौला को पकड कर खड़ी थी। वह चौला हाल ही सुध मे आई थी और अपने आस-पास घूमते हुए स्त्री पुरुषो का रूप देख चीखे मार रही थी। और सामने शिवराशि उसकी आरती उतार रहे थे।

एक छलांग मारकर सामन्त पास जा पहुंचा। उस बलिष्ठ स्त्री को दूर कर छूटने के लिए प्रयत्न करती हुई चौला को उसने हाथ से पकड़ लिया।

उसका खड्ग राशि की आरती की ज्वालाओं में चमकता हुआ क्षण भर सबको डराता रहा।

"राशि ! यह क्या ?" सर्वज्ञ ने पूछा ।

राशि की आंखें फट गईं । एक तरफ काल भैरव के समान खड्ग-धारी सामन्त खड़ा था और दूसरी तरफ गुरुदेव अपने नयनों से ठण्का देते हुए वहां खड़े थे । शिवराशि के हाथ कांपने लगे और उनमें से आरती झननन् करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी ।

"गुरुदेव, गुरुदेव, गुरुदेव", घबराये हुए स्त्री पुरुषों के मुख में से आवाज़ निकली ।

"राशि ! तूने आज महामाया की पूजा विधि का महासूत्र तोड़ डाला", सर्वज्ञ ने अत्यन्त खेद से कहा । "तू चौला को उसकी मर्ज़ी के विरुद्ध पूजा में ले आया है ।

"नहीं, नहीं यह इच्छा से आई—अपनी मर्ज़ी से आई ।" सिद्धेश्वर हिम्मत कर राशि की मदद को आया ।

"इसीसे तो यह चीखें मारती थी न ? सिद्धेश्वर ! तू लकुलेश मत का कलङ्क है । राशि ! जा अभी यहां से,कल तुझे मैं योग्य प्रायश्चित्त दूंगा ।"

"नहीं, नहीं वह स्वयं अपनी मर्ज़ी से आई" राशि ने कहा ।

"हां, हां, हां" वृद्ध पुजारी ने आगे आकर सुर मिलाया । उसीके पास दो-तीन और बाबा भी आ खड़े हुए । उनके मुख पर गुरु के प्रति स्पष्ट विरोध था । एक-दो तो हाथ में चिमटा लिये हुए थे और उनकी खड़खड़ाहट से सर्वज्ञ को डराने का भी उन्होंने प्रयत्न किया ।

शान्त और स्वस्थ सर्वज्ञ इन सभी को म्लान वदन से देख रहे थे ।

"तुम सबने मिलकर आज इस मन्दिर को भ्रष्ट किया है", शान्ति से सर्वज्ञ ने कहा ।

"आंखें हो तो देखो कितनी लज्जा से,कितने भय से, चौला तुम्हारी आकृतियां देख रही है । यह महामाया का मन्दिर है; दम्भियों का नहीं; जुल्मियों का नहीं; विषय-लम्पटों का नहीं । जब तक तुम सब पूरा-पूरा प्रायश्चित्त न कर लो तब तक यह मन्दिर आजसे बन्द रहेगा ।

"यह मन्दिर बन्द रहेगा ? कौन करेगा ?" वृद्ध बाबा ने आगे बढ़-कर भयङ्कर आवाज़ से पूछा । उसका हाथ चिमटा उठाने के लिए तड़प रहा था, यह भी स्पष्ट मालूम होता था ।

गुरुदेव खिलखिलाकर हँस पड़े । "कौन करेगा ? मैं—भगवान् लकुलेश के सम्प्रदाय के अधिष्ठाता के अधिकार से ।"

"है ताकत तुम्हारी ?" बुड्ढे बाबा ने हाथ उठाया, और तुरन्त ही सामन्त उछल कर उसका हाथ पकड़ने दौड़ा ।

"सामन्त ! दूर हट" शान्ति से गुरुदेव ने कहा । "हरदत्त ! मुझे मारना है? ले यह सिर—अपने गुरू का । अपनी अधोगति पूरी कर ।" इतना कह गुरुदेव ने सिर झुकाया ।

वृद्ध बाबा की आंखे आकुल-व्याकुल हो गईं । उसके हाथ से चिमटा छूट पड़ा और वह भूमि पर लथड़ा कर गिर पड़ा । बाद में धीमे पैर से सर्वज्ञ लौटे और उन्होंने सदियों से कभी बन्द न हुए त्रिपुरसुन्दरी के गर्भद्वार को बन्द कर दिया ।

"तुम्हारे पाप के सञ्चय से त्रिपुरारि का तृतीय नयन खुला है । दानव के समान गज़नी का अमीर इस मन्दिर को तोड़ने चला आ रहा है । जबतक प्रायश्चित्त के द्वारा तुम्हारे पाप धुलेंगे नहीं और यह विपत्ति दूर न होगी, तबतक महामाया की पूजा मेरे सिवा कोई दूसरा न करे ।"

तदनन्तर उस आत्म-बल के प्रभाव के सामने हार खाकर सब लोग इधर-उधर बिख़र गए ।

: ४ :

थोड़ी देर मन्दिर के चौक में अकेले सर्वज्ञ खड़े रहे । चौला मां की गोद मे सिर रख अपनी दुर्दशा को स्मरण करती उसांसे भरती रो रही थी ।

सामन्त एक दीवार के सहारे बैठ गया था ।

"गङ्गा !" सर्वज्ञ ने कहा, "चौला को अब घर ले जा । इस परम-

ग्राम का क्या होने वाला है ? सामन्त !"

"जी"

"बेटा ! पिछली रात होने आई, अब तू भी जाने की तैयारी कर।"

"जैसी आज्ञा।"

"गङ्गा! इस चौहान को पहिचाना? इसे और इसके पिता को चौला ने भस्म लगाई थी। याद है, चौला ?"

चौला भक्ति की धुन से से जग गई थी अतएव वह सामन्त को पहिचान सकी।

सामन्त भी पास आया। दोनों हो एक दूसरे को ओर देखने लगे।

"गङ्गा ! चौहान बहादुर है। गत पन्द्रह दिनों में तो इस पर दैव कोप उतर आया है। इसके विशाल कुल में से आज यही अकेला भगवान् सोमनाथ की सेवा में तत्पर खड़ा है। इसे अपने घर ले जा और जिमा। इस बेचारे ने तो खाया भी नहीं, इस पर सबका आधार है।" इतना कह सर्वज्ञ नीचा सिर कर, खेद युक्त नयनों से पृथ्वी पर ही देखते हुए धीमी-धीमी चाल से लौट गए।

चौला तो शर्मिन्दा खड़ी थी। कुछ समय पूर्व जिस अवस्था में उसे सामन्त ने देखा था उसका स्मरण करते हुए वह भूमाता से अन्तर मांग रही थी।

गङ्गा ने उसे स्नेह पूर्वक साथ ले लिया।

"चौहान ! चलो। मुझे कहो तो सही कि तुम पर कैसी कैसी बीती है ?"

और कई दिन बाद सामन्त ने अपाबीती कहते हुए आनन्दमय रात्रि बिताई। चौला इस वीर पुरुष की बातें सुनकर नवीन उत्साह का अनुभव करने लगी।

ग्यारहवां प्रकरण

अनहिलवाड़ पाटण

: १ :

दो सौ वर्ष पहले अनहिलवाड जङ्गल मे एक गढ-मात्र था। गुजरात में ऐसे सैकडो गढ थे। वहां के चावडा वंश के राजा प्रति वर्ष कुछ साथियों को साथ ले बाहर निकल पडते और आसपास के गढों मे जाकर लूटमार मचाते। वे गाँव-गाँव में अपनी सत्ता जमाते, और भीलों को जंगलों में मार भगाते। कभी पाटण के राज्य की सीमा बढती तो कभी घटती; कभी किसी प्रबल पड़ोसी के भय से पाटण के राजा को अपने गढो में घुसकर बैठना पड़ता तो कभी उनकी धाक सारे सौराष्ट्र के प्रदेशों में बैठती थी।

परन्तु इस गढ का भविष्य विरञ्चि ने स्वर्णाक्षरों से लिखा था। विक्रम संवत् १०१७मे चालुक्य वंशके मूलराज देव उस गद्दी पर विराजमान हुए। तब से इस गढ का रूप और रंग बदल गया। आसपास जंगल कटवा दिया गया और उसकी सरस भूमि में सुन्दर एवं सुघड़ गाँव बसने लगे। राजा की शूरता से उन गाँवों की रक्षा होती, और श्रीमाल, कनौज, उज्जयिनी और भृगुकच्छ की उज्ज्वल बस्ती वहां आ-आकर अपना घर करने लगी। ऊर्जस्वी गुर्जरभूमि की शूरवीर जातियां भी धीरे-धीरे उस विजय वीर की छत्रछाया का सेवन करने लगीं। मूलराज देव की निपुणता के कारण अनहिलवाड़ का विस्तार एवं प्रताप साथ-ही साथ बढने लगे। जहां एक छोटा-सा गढ था वहां खम्भात, भरुच और मांगरोल के व्यापारियों ने समृद्धि पूरना शुरू की, और वहां पर देशादेश के विद्वान् ब्राह्मणो ने संस्कार तथा विद्या केन्द्रों की स्थापना की। छोटे-छोटे मिट्टी के घरों का स्थान बड़े-बड़े प्रसादों ने लेना शुरू किया। सुन्दर मन्दिरों के गगनचुम्बी शिखर धर्म

और समृद्धि की साक्षी देने लगे, और इन सब के आसपास एक विशाल सुविस्तृत गढ का निर्माण हुआ। अनहिलवाड केवल एक गढ था। वह अब पाटण हो गया।

मूलराज देव की सत्ता चारों ओर फैलने लगी। जूनागढ के प्रतापी राजा ने उनका शासन स्वीकार किया, कच्छ ने माना, लाट ने माना और सारे प्रान्त के राजन्य में पाटण के नरेश ने अग्रिम स्थान प्राप्त कर लिया। झालोर, मारवाड और स्थानक के नरपति पाटण के नरेश से मैत्री की याचना करते थे। उज्जयिनी के चक्रवर्ती राजा इस प्रबल होते हुए प्रतिवेशी को उठते ही गिरानेके अनेक प्रयोग कर रहे थे,परन्तु उनका एक भी उपाय न चला। जब श्री मूलराज देव कैलाशवासी हुए तब अनहिलवाड पाटण पश्चिमी भारत का मुख्य नगर बन चुका था।

मूलराज के कुलदेवता भगवान् सोमनाथ थे। भगवान् की भी उनके वशजों पर असीम कृपा थी। और मूलराज देव के पुत्र चामुण्ड और उसके पुत्र दुर्लभसेन की अनीति और तुच्छबुद्धि से जब धरती कम्पित होने लगी तब लकुलेश मत के अधिष्ठाता एवं सोमनाथ के मठाधिपति श्री गङ्गसर्वज्ञ के आशीर्वाद से भीमदेव पाटण की गद्दी पर आरूढ हुए।

: २ :

आज भगवान् के परमधाम का विध्वंस करने जब ग़ज़नी का अमीर चढ आ रहा था उस समय भगवान् की कृपा से बाणावली भीम जैसे प्रतापी वीर पाटण की गद्दी को सुशोभित कर रहे थे। उन्होंने यवनों के संहार करने का व्रत ग्रहण किया था। जो लोहकोट का राजा न कर सका, वीर बालमदेव न कर सका,उसे करने के लिए पाटण के राजा भीम उद्यत हुए। उनकी वीर घोषणा गांव-गांव सुनाई पडी—कच्छ और सोरठ, श्रीमाल और गुजरात, लाट और कोङ्कण के वीरों के हृदय में उसकी प्रतिध्वनि हुई। जो देश थे वे प्रान्त बन गए, पाटण पर सबकी दृष्टि स्थिर हुई, विभिन्न राज्यों वाले एक झण्डे के नीचे आने के लिए उत्सुक हो रहे थे। प्रतिस्पर्धी राजा पाटण के प्रभु की आज्ञा मानने में अपना

गौरव मानने लगे। भृगुकच्छ से दद्दा चालुक्य आये, पीढ़ियों का वैर छोड़ जूनागढ का राजा रत्नादित्य आया, कच्छ से कमा लाखाणी आया, आबू से त्रिलोचनपाल परमार आ पहुँचा; भगवान् सोमनाथ का संरक्षण द्वारिका से बांसवाड़ा और दमन से आबू पर्यंत प्रत्येक व्यक्ति का मनोरथ होगया और बाणावली भीमदेव महाराज में उस मनोरथ को सिद्ध करने का साधन दिखाई दिया। पाटण स्वधर्म रक्षण एवं स्वाधीनता की अभय मूर्ति बन गया। एक वीर का आदेश, एक नगर का प्रेम और आक्रमण का विरोध करने का परम औत्सुक्य—इन तीन कारणों ने मिलकर गुजरात की एकता और पाटण की महत्ता रच डाली।

भीम सबके बीच विद्युत के तुल्य चमकता हुआ किसी स्थान पर वीरता को प्रोत्साहित करता तो किसी स्थान पर भयङ्कर क्रोध से शिथिलता को दूर करता था। उसकी विशाल आंखों मे युयुत्सुता की ज्वाला धगधगा रही थी। किसी समय वह घोड़े पर सवार हो आस-पास के लौटते हुए वीरों मे उत्साह की चिनगारिया छोड आता और कई बार सैनिको की व्यूह-रचना मे संलग्न रहता था। उनकी घोषणा गांव-गाँव फिर चुकी थी कि प्रत्येक युवा को यवनों का सामना करने आ पहुँचना चाहिए। इस निमन्त्रण से आकर्षित हो योजनो से नित्य शूरवीर महोत्सव का निर्माण करने आते जाते थे। इन सबको शस्त्रों से सुसज्जित करना, उनको विविध आयुधों का उपयोग सिखाना, उनको टुकडियो में सङ्गठित करना, और उनकी प्रत्येक आवश्यकताएँ पूरी हों ऐसी योजनाएं करना और साथ-ही-साथ गढ के कंकड़ कंकड को भी विनाश से अस्पष्ट रखना—बस, इसी काम में भीमदेव एवं विमलमंत्री रात और दिन जुटे रहे।

ऐसी उत्साह की बातें गाँव-गाँव मे की जा रही थी। उनकी प्रेरणाओं से घर-घर वीर विदा किए जा रहे थे। उत्साहपूर्ण युवकोका हृदय प्रफुल्लित हो रहा था। वीराङ्गनाएं भय से कातर हृदयों से कुङ्कुम केसर के द्वारा मङ्गलाचार कर रही थी। यवनों के आक्रमण को दबाने मे तत्पर

अप्रतिरूप भीम की दन्त कथाएं सुनकर युद्ध के लिए उत्साह का सागर उमड आया। और उस सागर के मन्थन के अर्थ मेरु समान वह भीमदेव सचित् मुख से और श्रद्धालु हृदय से मध्य में घूम रहा था।

राजगढ की एक छोटी कोठरी मे दामोदर मेहता बैठे थे। कितने ही दिनो से उनकी आंख मे नींद न थी। उनके पास गजनवी के विजय प्रयाण के समाचार आते और उनकी चिन्ता बढ़ती जाती थी। उन्होंने सबसे पहले तो पाटण के वृद्ध, स्त्री एवं बालकों को पावागढ में जा रखा, वेद पाठियों को खम्भात और भरुच भेज दिया और निरुपयोगी जनता को दूर भाग जाने का प्रबन्ध कर दिया। गज़नवी पाटण पर घेरा डाले और वह लम्बे समय तक टिका रहे—इस सम्भावना से उन्होंने चारों ओर से अनाज मगवाकर कोठार भर दिए। गांव के जलाशयों में इतना पानी भरवा दिया जो महीना भर चले। खम्भात मे जहाज़ों को इकट्ठा कर उन्हे युद्ध के लिए सुसज्जित करवाया। आसपास के प्रत्येक राजा के दरबार मे उन्होंने भीमदेव महाराज के सन्धि-विग्रहक का काम किया था। अतएव उनके साथ बातचीत चलाई और उनकी सेनाएं मगवाईं। जो मांगे उसे द्रव्य देकर अनुकूल करने का कार्यभार भी इन्हींके सिर पडा।

परन्तु इतने प्रबन्ध से उन्हे अभी सन्तोष न था। गुजरात के गांव-गांव की व्यवस्था उन्होंने अपने सिर ले ली थी। गजनवी के घातक व्यवहार को—जो वहा प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर चढा हुआ था—उस भूमिमें अवकाश न मिले इस उद्देश्य से,उन्होंने सब गांवों के स्त्री,बालको एव वृद्ध जनता को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देने की सलाह दी।

यह सब काम हाथऔर मुंह से मधुरभाषी नगर शिरोमणि किया ही करते थे। किसी भी दिन उनका मिजाज़ बिगडा हो—यह किसी ने कभी न देखा न सुना था। भीड मे से राह निकालने के लिए वे सदा उद्यत रहते थे।

यों गज़नी के अमीर का सत्कार करने गुजरात उद्यत था।

: ३ :

आज तीन दिन हुए एक ही बात सब सैनिकों के मुंह पर थी, और प्रत्येक सामान्य हृदय में वह बात अश्रद्धा अभिव्यक्त करती थी। कहा जाता था कि मरुभूमि के अधिपति घोघाबापा को गजनवी ने मार डाला और उनका भूत सोमनाथ भगवान् की रक्षा करने गुजरात की ओर आरहा था। कइयों ने उस भूतको देखा था और कइयों ने तो उसके साथ बातचीत भी की थी। वह भूत बतलाता था कि गज़नी का अमीर बड़ा ज़बरदस्त है सो सबको जङ्गलों में छिप जाना चाहिए और जब वह लौटे तब पीछे से उस पर धावा करना चाहिए। यह बात सब लोग आपस में करते थे और ज्यों-ज्यो यह बात जड पकडती त्यों-त्यों उनके वीर हृदय में कुछ-कुछ सम-विषम भाव के कारण अस्वस्थता स्थान कर लेती थी। सैनिक कहते कि वह बात झूठ न थी, कारण अरजन गढवई जिसने स्वयं उस भूत से बातचीत की थी, यह सब बातचीत स्वयं पाटण महाराज भीमदेव को कह गए। यह भी कहा जाता था कि बाणावलि ने इस बात की बड़ी हंसी उडाई थी। परन्तु हंसी उडाने मात्र से कही सच भी झूठ हुई है? लोगों ने शङ्कित हृदय से सिर धुमाना शुरू किया।

स्थान-स्थान पर यही चर्चा थी। घोघाबापा का भूत उनकी युवावस्था के स्वरूप जैसा था। उसकी आंखें भयानक थीं। मानों चिता पर से उतरे हों ऐसी तो उनकी चमडी बिलकुल सफेद और फीकी थी। उनके गले में बडा घाव था। और उसमें से लहू बह रहा था। इस स्वरूप का वर्णन इतनी बार हो चुका था कि मानो उस भूत का सभी ने दर्शन किया हो। इस तरह वह आकृति सारे पाटण में प्रत्येक पुरुष की परिचित थी।

पाटण के चारों ओर योजनो तक दिन-प्रतिदिन बढती हुई सेना का पडाव पडने लगा। उसकी सीमा पर एक दिन सांझ के समय कुछ-कुछ चौकीदार बैठे गप्प लगा रहे थे। गप्प का विषय घोघाबापा के भूत के अतिरिक्त होना प्रायः दुःसाध्य सा था। इतने ही में दूर से धूल उडती हुई नज़र आई और चौकीदार बात अधूरी छोडकर, अपने-अपने शस्त्र

संभाल कर उसी ओर ध्यान देकर देखते रहे। सौराष्ट्र की ओर से चार ऊँटनियां बडी तेज़ी से दौडती आ रही थीं। एक चौकीदार ने होकार कर थोडी दूर बैठे हुए सैनिकों को सचेत किया और इसी तरह सावधानता का वह सन्देश एक दूसरे के द्वारा चारों ओर स्वरमात्र मे फैल गया। एक चौकीदार पहली ऊँटनी पर सवार व्यक्ति से मिलने आगे बढा। उस ऊटनी पर एक युवक बैठा था जिस पर नजर पडते ही चौकीदार हक्का-बक्का हो गया। वे ही भीषण नेत्र, वही चिता पर से उठे हुए पुरुष की-सी चमडी और वही गले पर तिरछा घाव।

"कौन हो तुम?" उसने थर-थर कांपते हुए पूछा।

"चौहान हूं—सोमनाथ से चला आ रहा हूं। मुझे भीमदेव महाराज से मिलना है।"

"घोवाबापा!" चौकीदार बोल उठा। वह युवक हँसा नहीं—भूत भी कहीं हँसा है? उसने इन्कार भी नहीं किया—सच बात हो तो कहीं इन्कार भी किया जा सकता है?—ऊँटनीवाला सवार आगे बढा।

दूसरे चौकीदार ने भी वे ही शब्द पकड लिए "कौन, घोवाबापा का भूत?" उसने भी भूत को पहिचान लिया और वह भी अवाक् हो रहा।

तीसरे चौकीदार की भी हालत यही हुई। एक सैनिक से दूसरे सैनिक की ओर यही आवाज फैलती गई और ऊटनी वाला युवक निश्चिंत हो आगे बढकर राजगढ की ओर रवाना हुआ।

जब युवक की ऊंटनिया राजगढ़ तक पहुंचीं तब वहां दरवाज़े पर सैनिकों की बडी भीड जमा थी। रात होने लगी थी। युवक ने अपनी ऊंटनी को बिठाया और उसपर से एक वह और एक वृद्ध विप्र दो व्यक्ति उतरे। इस नूतन आगन्तुक को सैनिकों ने आ घेरा।

"मुझे भीमदेव महाराज से मिलना है—सोमनाथ पाटण से सन्देश लेकर आया हूं।"

एकदम एक वृद्ध गढ़पाल गढ़ के दरवाज़े से बाहर निकला और खडी हुई उस भीड़ को हाथो से दूर करने लगा। उसके साथ एक

मशाल भी था। सबने रास्ता छोड़ दिया और वह वृद्ध गढपाल उस युवक के सामने ही आ धमका। उसने युवक को देखा और उसकी आंखें आकुल-व्याकुल हो गई। उसने चकित हो आँखों पर हाथ रख ढाढस बांधी और जैसे-तैसे अपना साफ़ा सीधा किया।

"घोघाबापा! रे मेरे बाप!" कहकर दोनों ही हाथ साफ़े पर रख कर अरजन गढवई फिर राजगढ में घुसने लगे। सैनिकों के भी होश उड़ गए।

"अरजन गढवई! भीमदेव महाराज से कहो कि मैं अत्यन्त आवश्यक काम से शीघ्र मिलना चाहता हूं।"

अरजन गढवई और उसका मशालची झटपट भीतर गए और अन्धेरे में सामन्त अपने साथी के साथ वहीं खड़ा रहा। देखते-देखते वहां जितने भी सैनिक खड़े थे वे सब सटक गए। घोघाबापा के भूत के सामने खड़े रहने की हिम्मत किसी की न थी। धीरे-धीरे युवक उनके पीछे हो लिया।

: ४ :

राजगढ के सभागृह में सब मन्त्रणा करने एकत्रित हुए थे। मध्य में गद्दी पर स्वयं बाणावली विराजमान थे और मूंछ पर ताव दे रहे थे। उनके दाहिने हाथ पर जूनागढ के राय रत्नादित्य थे—अधेड़ उम्र के, विशाल बाहु नरशार्दूल जो उस समय अपना पुरातन वैर भूलकर मूलराज देव के वंशज के दाहिने हाथ बने बैठे थे। उनके पास कच्छ के वृद्ध वीर बन्धु कमा लाखाणी बैठे थे। उनकी श्वेत घनी दाढी में छिपा हुआ झुर्रियों वाला मुँह अनेक दासियों के भय का कारण हो रहा था। वे एक आँख से वञ्चित थे, तथापि उनका एक ही नयन अन्य मनुष्यों की अपेक्षा विशेष तीक्ष्ण एवं दीर्घदर्शी था। भीमदेव महाराज की बाईं ओर भरूच के राजा के वंशज दद्दा जी बैठे थे। पाटण की धाक के कारण उन्हें वहां आना ही पड़ा, और वापिस कब लौटना होगा यही चिन्ता उनके मुख पर प्रकट थी। उनके पास त्रिलोचनपाल

परमार, अठारह वर्ष का उत्साही और भीमदेव का परम भक्त बालक प्रशंसामुग्ध नयनों से केवल उन्हें ही देखता हुआ बैठा था। भीमदेव के दो मन्त्री ज़रा दूर उसके पास बैठे थे—एक थे दामोदर मेहता और दूसरे थे विमल मन्त्री, और चारों ओर दूसरे मन्त्री एवं सेनानायक बैठे थे।

इस समय केवल एक ही प्रश्न पर चर्चा हो रही थी—आगे बढ़कर गज़नवी का सामना किया जाय अथवा यहीं मुठभेड की जाय।

"मैंने तो यह निश्चय ही कर लिया है कि आगे बढ़कर उसे रोकना चाहिए,कारण पहला वार तो राणा का ही"—भीमदेव ने कहा"अपने इस विशाल सैन्य के सामने उसका क्या हिसाब ?"

दामोदर मेहता ने हँसकर सिर हिलाया, "महाराज! जो इतने-इतने सैन्य का पराजय कर चला आ रहा है उसकी अवगणना कैसे की जा सकती है ?"

"परन्तु अपने सैन्य को भी तो देखो। और जब वह आवेगा तब तक सैन्य और भी सवाया हो जायगा, फिर वह थका हुआ और अपन तो सब ताज़े हैं।"

"और उसके लिए तो यह देश भी अपरिचित है" जूनागढ के राय रत्नादित्य ने कहा।

"उसे तो मरुदेश भी अपरिचित ही था। आगे बढकर यदि अपन हार खा जायं तो उसे पाटण का रास्ता खुला मिल जाय, और यहीं टिके रहने पर यदि वह पाटण का घेरा भी डाले तो कम-से-कम छः महीने तो निकल ही जायं।"

"और वह थक जाय सो जुदा"त्रिलोचनपाल ने भी सहारा लगाया।

"नहीं,नहीं, भीमदेवने दृढ़तापूर्वक कहा,"अपने सैन्य के साथ पाटण के किले में घुसा रहूं तो मुझे कलङ्क लग ही जाय"—बोलते-बोलते भीमदेव घुटनों के बल बैठकर सीधे हो गए, "मुझे तो बिजली की तरह उस पर टूट पड़ना है और उसकी सेना को धराशायी बनाना है।

त्रिपुर के उस अवतार का विनाश करने के लिए ही श्री महादेव जी ने मुझे जन्म दिया है। मेहता जी! हम आगे जा घुसेंगे, हमें कोई रोक भी न सकेगा, गुजरातियों के बाहुबल से हम उस विदेशी को मार भगावेंगे। अपने में से जो कायर हों वह भले पीछे रह जायं। हम तो आगे ही बढ़ेंगे और अमीर को पराजय कर अपनी कीर्ति को अमर करेंगे"—यों कहते-कहते भीमदेव के नेत्रों से गर्व के तेजःकण गिरने लगे।

"धन्य है, धन्य है" वहां बैठे हुए कई शूरवीरों के मुंह से आवाज़ निकल पड़ी उनकी रगों मे नवचेतना की चिनगारियां निकल उठीं।

"परन्तु मरुदेश में थका हुआ वह यहां क्या कर सकेगा?' राय रत्नादित्य ने पुनः दामोदर मेहता से कहा। सबको प्रतीत होने लगा कि यह मन्त्री व्यर्थ ही भयभीत होता रहता है।

"जो सारे रेगिस्तान को पार करते न थका वह इस रसाल भूमि में आते कहीं थकेगा?"

"वह नहीं थकेगा तो उसे थकावेंगे। आप मेहता जी! पाटण ही रहो और पीछे से हमें मदद पूरी करना। मेरे हृदय मे अविचल श्रद्धा है। उस देव के द्वेषी को समाप्त कर पवित्र गुर्जरभूमि को पुनः पावन करेंगे। भगवान् सोमनाथ की सहायता है तो फिर इस यवन की कितनी मात्रा? क्यों सच है न?" उसने आसपास बैठे हुए वीरों से परामर्श किया।

"सच बात है–बिलकुल ठीक—" उत्साह से सबने उत्तर दिया।

वृद्ध कमा लाखाणी की भी एक आँख उग्र हो गई "क्या हम सब चूड़िया ही पहिन कर बैठे हैं?"—उसने गर्जना की।

"किसी की ताकत है कि वह यों कहें" भीमदेव ने उछल कर कहा।

"अन्नदाता! घोघाबापा।" मानों भीमदेव के प्रश्न का ही यह उत्तर हो इस तरह दौड़ते, घबराते अरजन गढवई ने सभामण्डप में

आकर कहा। उसके साफ़े का ठिकाना न था। उसकी आँखों में भय था और उसके हाथ थरथर काँप रहे थे। उसे इस अवस्था में देख सब चौंक उठे।

"क्या है गढवई ?" मस्ती के साथ भीमदेव ने प्रश्न किया, "क्या हुआ ?"

"अन्नदाता ! घोघाबापा आये हैं।" अरजन ने कहा और आँखो पर हाथ रखा। और सब बैठे हुए लोग खडे हो गए। अकल्प्य भय सबके हृदय में जा बैठा। अकेले भीमदेव ही कांपते हुए अरजन की ओर देखते रहे।

"गढवई ! आने दो जो हो उसे। काल भैरव स्वयं भी हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

पीछे-पीछे सामन्त आने लगा—स्वस्थ और कठोर, एवं विवर्ण अपने एकाग्र तथा स्थिर नयनों से समस्त सभा को मापता हुआ—वही आँखें—वही चमडी और वही घाव।

"महाराज ! मैं घोघाबापा का पौत्र सामन्त" ऐसा कहकर उसने भीमदेव को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। "भीमदेव महाराज की जय ! जय सोमनाथ !" विमल ने उसे तुरन्त पहिचाना और सबके निज स्वस्थता को धारण करने से पहिले उसका स्वागत किया, "चौहान वीर ! पधारिए।"

भीमदेव आगे बढ़े और सामन्त को हृदय से लगाया, "चौहान वीर ! तुम्हारे कुल ने तो राजपूतों की इकहत्तर पीढियों का उद्धार किया। आओ, आओ" सामन्त विनयपूर्वक परन्तु दृढ़ता के साथ भीमदेव के विशाल बाहुबन्धन से मुक्त हो, कुछ पृथक कठोर एवं भावहीन-सा जरा दूर खडा रहा। अतः यह जीवित पुरुष है ऐसा शनैः-शनैः लोगों को विश्वास होने लगा। केवल गढपाल अरजन ही इस बात में विश्वास न कर सके।

"बैठो, चौहान !" भीमदेव ने सामन्त का हाथ पकडकर उसे

अपने सामने बिठाया। सामन्त दोनो पैरों से आसन जमा साभिमान बैठा। "कहां से आये ? कौनसी खबर लाये हो ?"

"मैं गुरुदेव गङ्ग सर्वज्ञ के पास से आया हूं।"

"प्रभास से ? आप वहां कब से गए थे ?" दामोदर मेहता ने पूछा।

"मै गज़नवी की सेना से जब छूटा तभी सीधा प्रभास गया। बाहर हमारे गुरु नन्दिदत्त खड़े हैं।"

'कौन, नन्दिदत्त जी ? अरे वे वहां क्यों खड़े हैं ? मैं उन्हें ले आता हूं" यों कहकर दामोदर मेहता और भीमदेव के राजगुरु घोघागढ के वृद्ध राजगुरु को योग्य सम्मान देने बाहर गए और नन्दिदत्त जी को विनयपूर्वक अन्दर ले आए। अन्दर आते-आते उनकी आँखों में आंसू भर आये। वह सम्मान अब उनके लिए केवल दुःखद विडम्बना प्रतीत होती थी।

"पधारिये, पधारिये !"

सब बैठे और भीमदेव के प्रश्न के उत्तर मे नन्दिदत्त ने जितना हो सका उतने संक्षेप मे घोघाबापा के कुल के विध्वंस की कथा कह सुनाई।

"आपने अमीर की सेना कब छोडी ?" मेहता प्रस्तुत विषय पर बात ले आये।

"मारवाड की सीमा से कुछ दूर—रेगिस्तान में—वहां से मैं सीधा ही गुरुदेव को चेतावनी देने प्रभास गया और वहां से ऊँटनियों को दौड़ाते हम यहां आये।"

"अमीर यहा से अब कितना दूर होगा ?"

"लगभग पन्द्रह दिन की यात्रा की दूरी पर होगा।"

"आपने अमीर की सेना स्वयं देखी ?" भीमदेव ने पूछा।

"देखी ?"—म्लान वदन से सामन्त ने कहा "मै उसमें घूमा, मैंने उसकी शक्ति का नापतोल किया और स्वयं अमीर को भी कसौटी पर चढाया। यही सब मैं गुरुदेव को निवेदन करने गया था, परन्तु उन्होंने आज्ञा दी कि जो कुछ मुझे सूचित करना है वह सब मैं आप ही को

करूं। आपही भगवान् सोमनाथ के दक्षिण बाहु हैं।"

"गुरुदेव की आज्ञा मेरे सिर आँखों पर है" भीमदेव ने कहा, "चौहानराज! कहो, जो कुछ कहना हो खुशी से कहो।"

"अवश्य कहिए। आप उचित समय पर ही आये प्रतीत होते हैं।"

"मुझे सबसे पहले तो यह बता देना है कि यदि आप लोगों का रण में सामने जाकर अमीर के साथ युद्ध करने का विचार हो तो उसे छोड देना चाहिए"—सामन्त के मन्द स्वर से कहे हुए शब्दों ने सारी सभा को सचेत कर दिया। सब ध्यान पूर्वक, विस्मय के साथ सुनते रहे। हाल ही उन्होंने इससे विपरीत सङ्कल्प किया था।

"क्या? मैं पाटण का चालुक्य, सामने होकर न लड़ूं?" भीमदेव के विस्फाट नयन मानों सामन्त को भस्म करने का ही यत्न कर रहे हों ऐसा भान होने लगा।

सामन्त शान्त बैठा था—केवल उसके मुखपर तिरस्कार युक्त हास्य था। थोडे ही दिनों मे जन्म-जन्मान्तर के दुःख को अनुभव कर वह वयोवृद्ध बन गया था। "महाराज! क्षमा करें।" उसके मन्द स्वर से बहने वाले शब्दों को सुनने के लिए सब कान लगाकर आतुर बैठे थे। "ऐसी गर्व की बातें सुन-सुनकर मैं तो थक गया हूं। चालुक्यराज! क्षुद्र बुद्धि और एकता के अभाव के कारण अहम्भाव मे मस्त राजपूतो के संहार करने के लिए भगवान् पिनाकपाणी ने इस अमीर को भेजा है ऐसा मालूम हो रहा है।"

जो राजा थे वे क्रोध से और दूसरे विस्मय से उस छोटे से छोकरे से कहे हुए भयङ्कर शब्दों को सुनते रहे। भीमदेव से तो आवेश में अपना दहिना हाथ तलवार की मूंठ पर अनजाने ही रखा गया। सामन्त की तीक्ष्ण दृष्टि भी भीमदेव के हाथ के साथ मूंठ पर गिरी। उस अधीरता को सामन्त समझ गया यह बात भी भीमदेव की समझ में आई और उसने कुछ लज्जित हो अपना हाथ मूंठ पर से उठा लिया।

"चालुक्य राज! गर्व की मस्ती में हम सब जैसा मानते हैं वैसा

अमीर को मार भगाना खेल की बात नहीं है। जैसे अजगर के मुँह में वनचर आ गिरते हैं वैसे ही हम सब उसके मुँह में घुस रहे हैं। इसी गर्व में घोघाबापा ने अपने कुल का नाश करवाया। बालमदेव ने पचास हज़ार योद्धाओं का होम किया, और आप भी उसीमें स्वाहा करने को उद्यत हुए हो।"

"क्या कहते हो?" राय रत्नादित्य ने कटाक्ष करते हुए कहा, "आपका कहना तो फिर यह है कि हमें यहां से अपने-अपने घर वापिस लौट जाना चाहिए?"

"नहीं, जो करना हो सो करो, परन्तु करने से पहले अमीर कैसा है इसका तो विचार कर लो। मेरे वचन कटु अवश्य लगते होंगे परन्तु यह जान लो कि आप लोगों ने जितना सैन्य एकत्रित किया है वह अमीर के सामने आधी घड़ी भी टिक न सकेगा।"

"तो फिर क्या पाटण और जूनागढ और लाट···" राय ने कहा। इतनी देर तक भीमदेव अपनी मूँछ पर ताव ही देता रहा और सामन्त की ओर देखता रहा। यह कोई सचमुच मित्र है अथवा कोई शत्रु? वह बीच में बोल उठता परन्तु दामोदर मेहता को सामन्त के शब्दों पर सिर हिलाकर समर्थन करते देख उसने कुछ संयम किया।

"महाराज! यदि अमीर की शक्ति तथा व्यवस्था का आपको स्वल्प भी भान हो तो आप ठीक वही करें जो मैं कह रहा हूं। जितना आपके पास है उससे दसगुना भी सैन्य हो तो भी उसे हराने में आप असमर्थ होंगे—समझे?"

"हम यों डरने वाले नहीं" अपमानकारक उग्रता के साथ भीमदेव ने कहा "हम थोड़े और रिपु अधिक, यह तो कायर कहते हैं।"

क्षणभर सामन्त के मुख पर गुस्सा चढ आया, परन्तु उसने होंठ दबा कर शान्ति रखी। फिर उसका मुख कठोर एवं भयावह बन गया और उसकी आंखों में अमानुषी तेज प्रकट हुआ। वह प्रणाम कर उठ खड़ा हुआ। कुपित सूर्य के मुँह से जैसी सुरसुराहट निकलती है उस तरह

"चालुक्यराज! भोले भीमदेव के सिवा और कोई मुझे कायर कहता तो मैं उसके प्राण निकाल लेता। परन्तु मैं आज आपके साथ लडने नहीं आया हूँ, किन्तु भगवान् सोमनाथ की रक्षा करने का मैं प्रयत्न कर रहा हूं। आपको तो अपने राजपाट का लोभ है, परन्तु मुझे तो अमीर को पराजित कर देने के अतिरिक्त अन्य कोई वासना ही नहीं है। आपने तो सिर्फ अमीर का नाम ही सुना है, परन्तु मेरे घोघा-बापा ने तो उसके रोकने के लिए सारे कुल को होम दिया है। मेरे पिता ने मरुभूमि में उसे भून देने के लिए अनसुने पराक्रम किये है, और उसके प्राण हरण करने मैंने अकेले ने ही उसके सैन्य के बीच में उसके गले पर खञ्जर रख दिया।" सामन्त की आंखें और आवाज़ खेद से ओत-प्रोत होगई "और जो मन में सोचा था वह बन जाता तो जो लाखों राजपूत न कर सके वह मैं अकेले हाथ ही कर डालता। परन्तु—" उसकी आवाज़ रुक गई "परन्तु भगवान् सोमनाथ की इच्छा थी कि वह मरने न पावे। भीमदेव महाराज! मेरे कुल ने और मैंने जितना किया उतना कर सकोगे तो अवश्य ही भोलानाथ आपको यश दिलावेंगे" इतना कहकर सामन्त नीचे झुका और चलने को तैयार हुआ, परन्तु दामोदर मेहता ने खडे होकर रोक लिया।

"चौहान वीर!" उसने नीचे स्वर से कहा, "घोघागढ के चौहान को कायर कहने से पहले महाराज स्वयं अपनी जीभ काटले—घोघा-बापा की सन्तान का स्थान तो सदैव सूर्य के सिंहासन के समीप है।"

भीमदेव ने उठकर सामन्त को हृदय से लगा लिया, "चौहान!" उन्होंने गद्‌गद् होकर किए हुए अपमान का प्रायश्चित्त किया, "क्षमा कीजिए, मुंहसे निकल गया, मैं कुछ त्वराशील हूं—हम तो शौर्य अब दिखावेंगे परन्तु आपने तो कभी से ही पूर्वजों का नाम बढाया है—मुझे क्षमा करो" इन शब्दों के साथ मोहक स्नेह से उन्होंने सामन्त को फिर छाती से लगाया।

उस अद्‌भुत एवं निर्व्याज हृदयशुद्धि के कारण सामन्त वशीभूत

हो वहां बैठ गया।

: ५ :

"बैठो चौहानवीर !" दामोदर मेहता ने कहा, "जो आप कह रहे हैं वही मैं भी महाराज से निवेदन करता हूं। अमीर का सामना करने में तनिक भी लाभ न होगा।"

"मेहता जी !" सामन्त ने खेदपूर्वक कहा—"यह सब कहते मेरा जीव निकले जा रहा है। मैं भी टेकी कुल का हूं—यदि अपने सम्मान को हानि हो तो पहले मेरे प्राण चले जायं यह मेरी सबसे बड़ी कामना है। परन्तु आज डेढ़ महीने में मेरे साथ जो बीती है उसके आधार पर आप जैसे स्नेही को सलाह देने का साहस मैं करता हूँ।"

"चौहान ! कहो। सब कुछ कहो" भीमदेव ने कहा।

"महाराज !" सामन्त ने कहा, "अमीर की सेना नहीं है वह तो महासागर है। आपके पास बहुत हो तो बीस हज़ार पैदल और पांच हज़ार घुडसवार..."

"आठ हज़ार" भीमदेव ने कहा।

"आठ हज़ार—बहुत हो तो दो हज़ार हाथी और ऊँट होंगे। महाराज ! अमीर के पास तो तीस हज़ार सवार हैं जो पंखवाले जंगली घोड़ों पर सवारी करते हैं। दस हज़ार तो उसके पास हाथी हैं और अगणित भयङ्कर योद्धाओं का पदातिदल है। कम-से-कम तीस हज़ार ऊँटों पर पानी लाद कर उसने रेगिस्तान पार किया है। क़िले तोड़ने के लिए तो उसके पास बडे-बडे यन्त्र हैं। उसके सामने अपनी गिनती नहीं। जिन लाखों राजपूतों ने नगरकोट से मारवाड़ तक पृथक-पृथक लडने में प्राण गँवाए वे सब एकत्र होते तो कदाचित् भाग्यवश उसके लिए पर्याप्त होते"—सामन्त चुप हुआ और सारी सभा विमूढ हो सुनती रही।

"फिर ?" दामोदर मेहताने पूछा।

"यह तो हुआ सेना का बल—और स्वयं अमीर तो अलग ही रहा।

उसमे इतनी बडी सेना क़ाबू मे रखने की कला है। उसे मित्रलाभ करना आता है। धैर्यहीन को धैर्य बँधाने की उसमे सामर्थ्य है। उसकी व्यूहरचना की शक्ति का तो किसी ने पार नही पाया। उसके साथ कैसे लडोगे ?"

"तो फिर क्या किया जाय? गो ब्राह्मण प्रतिदिन पालन करने वालों को क्या परदेशी को अपनी भूमि विनाश करने देना चाहिए ? अपनी स्त्रियों और ब्राह्मणों को भ्रष्ट होने देना चाहिए ? अपने इष्ट देवता के सरक्षण हेतु भी क्या प्राण त्याग नहीं देना चाहिए ?"

"महाराज ! यह तो मैं कहता ही नहीं" सामन्त ने कहा "आपको तो अडिग हो लडना चाहिए और प्राण कीबाजी पर भी प्रभास और पाटण दोनो को ही बचाना चाहिए।"

"पर वह किस तरह ?"

"अमीर को आने दो सौराष्ट्र मे—बिना विरोध किये—जितने मनुष्य कम मारने दोगे उतने ही उपयोगी होंगे। कारण, आपको उसे पीछे से ही हैरान करना चाहिए।"

"अमीर का सामने जाकर मुकाबिला करने में महान् भय है, यह तो मै भी मानता हूं" दामोदर मेहता ने कहा। "परन्तु पाटण मे रह कर सामना करना चाहिए यह मेरी राय थी।"

"उसने इतने गढ तोडे कि पाटण की क्या गिनती ?" सामन्त ने पूछा।

"यह भी सच है" चिन्तातुर हो दामोदर मेहता जी बोले।

"पर फिर दूसरा क्या मार्ग है ?" राय ने पूछा।

"और यदि पाटण छोडकर जंगल में घुस जाऊं तो मेरी कीर्ति का सर्वनाश हो जाय—"

"और सेना का उत्साह भी चला जाय।" त्रिलोचनपाल परमार ने कहा।

"जो होना हो सो हो परन्तु मैं तो यहां से खिसकनेवाला ही नहीं।

यह तो मेरा पाटण, मेरे बापदादा की राजधानी—गज़नवी को पीछे हटा देने का मेरा प्रण भङ्ग हो जाय उससे पहले तो मैं घोड़े के नीचे कुचला कर मर जाऊँगा।"

"परन्तु यहां से भगवान् सोमनाथ तो नहीं बचेंगे" सामन्त ने कहा। उसका मन्द एवं तिरस्कारयुक्त स्वर किसी भावुक के सटाके के समान उन्हें उत्तेजित कर रहा था।

"तो फिर करना क्या ?"

"मुझे एक ही रास्ता सूझता है।" दामोदर मेहता ने सामन्त की ओर देखते हुए धीमे-धीमे कहा। "अमीर ने सेनाओं के साथ युद्ध किया है निर्जनता के साथ लड़ाई नहीं लड़ी है–वही दुश्मन उसे पराजित करेगा।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् हमें पाटण का मार्ग और पाटण दोनों ही खाली कर देने चाहिएं—चाहे वह आकर वायु के साथ क्यों न बढ़े।"

"यही तो मैं भी कहता हूं" सामन्त ने टेका लगाया।

"पर मैं क्या करूं ? डरकर बैठ जाऊं ?" भीमदेव ने निराशाजनक स्वर से पूछा।

"नहीं, महाराज ? नहीं," मेहता ने हंसकर कहा "आप सब सैन्य को लेकर प्रभास पधारें। आपको विजय प्राप्त करना हो तो उसे सौराष्ट्र के जङ्गलों में पूरा-पूरा मज़ा चखाना चाहिए।"

"परन्तु प्रभास पाटण का गढ़ तो छोटा है।" राय रत्नादित्य ने शङ्का की।

"छोटा है तो क्या, पलक भर में उसे बड़ा बना लेंगे, परन्तु वहां भगवान् सोमनाथ का आश्रय रहेगा और गुरुदेव की प्रेरणा का लाभ होगा। वहां जो राजपूत लड़ेंगे वे पाटण नगर की रक्षा में नहीं परन्तु इष्टदेव को बचाने के लिए सिर पटक कर लड़ेंगे। उससे इस लोक में विजय अथवा परलोक में कैलाश, इससे दूसरी कामना न रहेगी।"

भीमदेव के विशाल नयन सविशेष प्रफुल्लित हुए। उन्होंने मूंछ पर

ताव देना शुरू किया। उनको समझ पडी और साथ-ही-साथ उनकी कल्पना ने एक छोटी सुकुमार नर्त्तकी को जल में सौंदर्य स्नान कर निकलते हुए देखा—और एक पल मे ही वह मूर्ति अदृश्य हो गई।

"ठीक है, मेहता जी! वहां मैं लड़ूंगा, अपने इष्टदेव के समक्ष और जैसा किसी ने न देखा और न सुना ऐसा पराक्रम कर दिखाऊंगा, और दानव की सेना को निःसत्व कर छोड़ूंगा—" भीमदेव ने गौरव के साथ कहा।

"मेहता जी" सामन्त ने कहा "आपकी योजना अद्भुत है। इस अन्तिम प्रयास पर ही यदि हम सर्वस्व अर्पण कर दें तो सहस्र युद्ध के बदले एक ही युद्ध करना ठीक होगा। तथापि मैं तो अकेला यहां रहूंगा।"

"तुम्हें हमे इस तरह मरने देना नहीं है, चौहान!" दामोदर मेहता ने कहा।

"और मुझे भी यों ही मरना नहीं है जबतक अमीर का पैर मेरी भूमि पर है। आप से बने तो कुछ आदमी मुझे दे देना। मैं तो हूं घोघा-बापाका भूत। अपनी रीतिसे मैं उसके साथ पूरा पालूंगा और आपके लिए भी सहायक हूंगा।"

"परन्तु तुम्हें तो, सामन्त! मेरे साथ ही रहना होगा" भीमदेव ने कहा।

"नही महाराज! म्लेच्छ भले इधर आवे, पर मुझे उसे वापिस जाने देना नही है।"

"तुम्हारे लिए उसे ज़िन्दा छोडे तब तो—" भीमदेव ने कहा।

"महाराज! तो फिर आपके मुँह मे शक्कर।"

"यह भी प्रस्ताव कुछ ग़लत नहीं है" दामोदर मेहता ने कहा, "और मैं भी खम्भात बन्दर से समुद्र मार्ग से प्रभास मे अपेक्षित वस्तु भेजता रहूंगा।"

"परन्तु प्रभास पाटण को तुरन्त ही ख़ाली करवा लेना होगा।"

"अवश्य अन्नदाता!" विमल ने स्वीकार किया।

: ६ :

और उसी रात को इस सङ्कल्प को भीमदेव महाराज कार्यान्वित करने लगे। गांव खाली कर देने की आज्ञा लेकर घुडसवार चारो ओर चल पडे। रात के रात ही पाटण में भरा हुआ धान्य गाडियों में भर कर प्रभास भेजा गया। दूसरे दिन सारी सेना ने सौराष्ट्र का रास्ता पकडा। दामोदर मेहता ने, राजगुरु और मन्त्रियो सहित खम्भात का रास्ता लिया। मध्याह्न मे जब महाराजा भीमदेव ने पाटण छोडा तब सामन्त, नन्दिदत्त और महाराज के द्वारा दिए हुए पचास घुडसवार पाटण मे रहे।

जाते-जाते भीमदेव ने सामन्त के संकल्प के परिवर्तन का पर्याप्त प्रयत्न किया, परन्तु वह एक से दो न हुआ।

जब समस्त सैन्य पाटण छोडकर चला गया तब पाटण के ऊँचे से ऊँचे मुँडेरे पर चढकर सामन्त दांत पीसता हुआ क्षितिज की ओर निहारता रहा।

"अमीर! आ—अब तू है और मैं।"

बारहवाँ प्रकरण

प्रभास में तैयारी

: १ :

गज़नी का अमीर प्रभास पर चढ़ाई करने आ रहा है, और उसका सामना करने भीमदेव महाराज सेना सहित आ रहे हैं इस समाचार ने प्रभास में एक विलक्षण चेतना उत्पन्न करदी। भगवान् की छाया मे रहने वाले स्त्री-पुरुषों को अमीर से तनिक भी भय न था। त्रिपुरासुर को तृतीय नयन द्वारा क्षण भर मे भस्म करने वाले भगवान् के लिए एक ऐसे यवन का कौनसा भार? सेना शत्रु पर विजय प्राप्त करके लौट रही हो इस तरह भीम का सत्कार करने नर-नारियां तैयार हो रही थी। घर-घर तोरण बांधे गए, द्वार-द्वार पर स्वास्तिक के मण्डन अङ्कित किये गए। मन्दिर पर नवनूतन ध्वजाएं लगाई गई। गीत और मृदङ्ग का स्वर सुनाई देने लगा। प्रत्येक शिवमूर्त्ति पर रुद्राभिषेक होने लगे, और हर शिवालय मे शिवपुराण का पारायण हुआ। भगवान् के सामने महारुद्र का घोष होने लगा और श्रोत्रियों के स्वाध्याय से मन्दिर गूंज उठे। हृदय-मात्र मे प्रतिध्वनि होने लगी: 'आया, आया! भगवान् का अवतार, बाणावलि भीम, यवनों का संहारकर्त्ता और साधुओ का तारणहारा।'

: २ :

बड़े मन्दिर के शिखर के एक सिरे पर खड़ी होकर चौला व्याकुल नयनों से पाटण से आने वाले रास्ते की ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी। उसके मुख एवं कण्ठ पर लालिमा छा गई थी। उसका कोमल हृदय कुरबक के समान चञ्चल हो रहा था, पाटण के नाथ और रुद्र के अवतार बाणावलि भीमदेव आ रहे थे—जिन्होने उसे कल-मुँहे से बचाया था, वे ही। नहीं-नहीं, भीम ने तो उसे भुजाओ में

कसा था, उसके अङ्ग-अङ्ग से उसका स्पर्श हुआ था। वह स्वयं माधुर्य के सार समान चन्द्रिका; उस दिन सागर में किया हुआ सौन्दर्य स्नान, उस कलमुँहे की दारुण चीख, और मूर्छित अवस्था मे ही देखा हुआ वह प्रतापी मुख, वह वीर्यदर्शी श्मश्रु; वे चमकते हुए मोहक नयन, और वे विशाल बाहु जिनके हिन्दोलन में वह बालिका के समान झूली थी, वह अविस्मरणीय रजनी—समग्र जीवन-सरिता के एक अद्भुत उल्लास तरंग के समान वह चञ्चल पल उसकी कल्पना मे पुरातन अनुभवों को नवनूतन बना रहे थे।

इसी समय उसी वदन, श्मश्रु, नयन एवं बाहु का स्वामी, त्रिपुरासुर के विनाश में तत्पर भगवान् का स्वरूप चला आ रहा था। अकथ उर्मियो के द्वारा स्वागत कराने के लिए उसने अपने नेत्रो को क्षितिज पर स्थिर कर रखा था। सागर पर से बहता हुआ समीर उसके केश-पाश एवं परिधान को कोमल लास्य सिखा रहा था और साथ-ही-साथ उसके अंग-अंग में अद्भुत जागृति भी कर रहा था—"आया, आया उसका नाथ, भगवान् आशुतोष का अवतार" यह नाद उसे सर्वत्र सुनाई दे रहा था।

दो दिन हुए भगवान् सोमनाथ का स्वरूप भी कुछ बदल सा गया था। रण मे लीन रुद्र की जटा पर मुकुट था और उस पर था मयूर पिच्छ। उनके श्याम मनोहर आनन पर भलाई एवं भोलापन दीखता था। उनकी मूंछ में बल पड़ा हुआ था। छोटी दाढ़ी अच्छी मालूम होती थी, और उनके बाल कान के पीछे छिपे हुए थे। उनके शरीर पर सुवर्ण का कवच था और कन्धे पर धनुष लटक रहा था। त्रिशूलधारी शम्भु बाणावलि पिनाकपाणि बन गये थे। और उनका कन्धा और हाथ पहले चन्द्रिका के प्रकाश मे देखे हुए कन्धे और हाथ के समान हो गए थे। हृदय मे पक्षी फड़फड़ा रहा था और उसे शान्त रखने का प्रयत्न निष्फल हो रहा था।

दूर और अति दूर, जहां तक दृष्टि जा सकती थी, वहां तक देलवाड़ा

से आनेका मार्ग दीख रहा था। उसपर सैकडों गाड़ियो मे लोग अनाज आदि सामग्री को लेकर पाटण से चले आ रहे थे। आखिरकार धूल के गोटे उडने लगे, और जङ्गल से अगणित घुडसवार बाहर निकले। चौला का औत्सुक्य बढा। चार-चार पांच-पांच की पंक्तियों मे घुडसवार आ रहे थे। थोडी ही देर में चौला हर्ष से चिल्लाये बग़ैर न रह सकी। सब घोडो के अग्रसर ज़रीन जीनवाले सफेद बडे घोडे पर छत्र और चामर धारण किए हुए भीमदेव महाराज की सवारी आरही थी। ज्योंही उनका घोडा हिनहिनाता त्योंही मुकुट, कान, मूठ और जीन पर जटित मणिगण मध्याह्न के चढ़ते हुए सूर्य की किरणों मे चमकते और उस तेजोमय परिवेप मे भीमदेव का भरा हुआ मुख श्यामल परन्तु तेजस्वी सुशोभित हो रहा था। घोडे बडी तेज़ी के साथ आगे-आगे आ रहे थे।

निकट आने पर वह भीमदेव महाराज का कवच और बाण स्पष्ट रूप से देख सकी उसकी अमित शक्ति वह माप सकी। रुद्रावतार के समान वे उग्र एवं दुर्धर्ष थे। भगीरथ के समान वे घोडे, हाथी और पैदल सेना को प्रतिपल विस्तृत करती हुई और महातरङ्गो से उछलती हुई गङ्गा को अपने पीछे लिए चले आरहे थे।

शिखर की एक ऊँची छोटी अटारी से वह नीचे के परकोटे को देख सकती थी। प्रभास के मुख्य द्वार पर गुरुदेव पाटण के नरेश का सत्कार करने आए थे—यह भी वहां से दिखाई देता था। साथ ही लगभग अठारह दिन के उपवास से क्षीण शिवराशि हाथ मे रखे हुए शिवजी का बाण लिये खडा था। उसे बताई हुई गुरुदेव की तपश्चर्या अभी तक समाप्त न हुई थी। साथ ही अनेक दूसरे शिष्य भी थे और नगरजन भी खड़े थे। यह सारा सत्कार रुद्रावतार भीमदेव के लिए था।

महाराज भीमदेव ने इस प्रकार घोषणा की मानो दसों दिशाओ में भीषण बिजली चौंधा गई हो "जय सोमनाथ!" तीस हज़ार सैनिकों ने ध्वनित किया "जय सोमनाथ!" गुरुदेव, शिष्यगण एवं नगर की जनता ने प्रत्युत्तर दिया "जय सोमनाथ!" साथ-ही-साथ हज़ारों

डंकों का तुमुल निनाद सुनाई दिया। भीमदेव कोट के पास आ पहुंचे थे। उन्होंने ऊपर देखा, उनकी आंखें शिखर पर फरफराती हुई ध्वजा पर क्षणभर टिकीं और फिर एकदम अटारी पर जा ठहरीं। उनमें उन मदभरे उजियारे नयनों को देखकर चौला लज्जित सी हो गई। उसे पहिचाने बग़ैर उनकी आंखें नीचे खड़े गुरुदेव पर जा टिकीं और अपनी हीनताका अनुभव करके चौलाका हृदय कांपने लगा। कहां तो पाटण का स्वामी, यवनों का संहार करने के लिए उद्यत बाणावलि, और कहां वह एक क्षुद्र देवदासी ? किसी ने मानों उसे जख़मी किया हो, इस तरह चीख मारती हुई चौला पीछे देखे बिना ही उतावले पैरों से सीढ़ियां उतर गई। उसके शम्भु साक्षात् आये थे—परन्तु वह थी निर्जीव, तुच्छ एवं अस्वीकार्य।

: ३ :

हांपती हुई, गले पर हाथ फेरकर अपनी अकुलाहट को दबाती, वह सीढियोंसे उतरी और वहीं उसे गङ्गा की आवाज़ सुनाई पड़ी। "चौला कहां दौड रही हो ?"

"कहीं नहीं, मां, कही नहीं—"इतना कहकर चौला चली जा रही थी फिर उसे एक विचार आया। वह रुकी और खड़ी रही। उसका हृदय धडकने लगा। वह कूद कर गङ्गा से लिपट गई। "मां अभी मध्याह्न की बेला आ जायगी। आज नृत्य करने की किसकी बारी है ?"

"क्यों बारी तो कुण्डला की है।"

"नहीं, आज तो मैं नृत्य करूंगी, और अभी।"

"परन्तु क्या इस दोपहर में यह सब अच्छा लगेगा ?"

"नही, बस नहीं, मैं अभी करने वाली हूं।"

"आज सायंकाल को तुझे अवसर दूंगी—बस !"

"नही, बस नहीं, नहीं नही, अभी देना पडेगा, मां ! मुझे यह मौका न दिया जायगा तो मैं जीभ काटकर मर जाऊंगी।"

"परन्तु कुण्डला को बुरा लग जायगा।"

"तो तू उसे बैठकर मना लेना। मां तू तो कभी इन्कार न करती थी।

गङ्गा ने चौला की फटी हुई आंखें, धड़कती हुई छाती और अधीरता से टूटता हुआ स्वर देखा और वह सब कुछ समझ गई।

"ठीक है, तो तू तैयार हो जा। मैं कुण्डला को मना किये देती हूं।"

हँसती-कूदती चौला ने भगवान् के सामने नृत्य प्रारम्भ किया। आज वह रण पर चढे हुए शिव की आराधना कर रही थी अतएव उसकी कला में आज एक अद्भुत आकर्षण था। आज उसके पैरों में विचित्र गति, ताल और अभिनय में उद्दाम वेग था। परन्तु आज उसकी दृष्टि महादेव जी के बाण पर ठहरने के बदले बाहर से आनेवाले मार्ग पर टिकी थी। भीमदेव भगवान् के दर्शन करने अवश्य आयगे और वे आए तो अवश्य ही उसे पहिचान लेंगे। और वह उसी रुद्रावतार के लिए तो नृत्य कर रही थी।

डंकों की गडगडाहट नज़दीक ही सुनाई पड़ने लगी। जन-समाज का कोलाहल समीप आता सुनाई दिया और परकोटे के द्वार से गुरुदेव और भीमदेव ने प्रवेश किया। साथ ही अन्य राजन्य मन्त्रिवर्ग एवं सेनापति थे। चौला का हृदय जोर से धड़कने लगा। चरणों की गति मन्द-मन्द पड़ गई और स्वर टूटने लगा। गम्भीर चर्चा में संलग्न गुरुदेव एवं बाणावलि निकट आये। वही मुख, वे ही नयन, वही चाल और वे ही भुजा। परन्तु उस समय वही मुख भयङ्कर था, नयन एकाग्र थे और चाल निश्चयात्मक थी। आज उस रात के भीमदेव न थे, वे तो कोई अपरिचित एवं उग्र से योद्धा जंच रहे थे। चौला के पैरों में गति अवश्य थी परन्तु उसका हृदय निःशब्द उच्छ्वास ले रहा था। गङ्गसर्वज्ञ और बाणावलि दोनों मन्दिर में आए। चौला की आशाएं निष्फल हुईं। भीमदेव की एकाग्र और भौं चढ़ी हुई नज़र उस पर एक क्षण के लिए टिकी और उसने एक लम्बी सांस ली—पर वह अटक नहीं गई। जैसे किसी जड़ वस्तु से अपरिचित मनुष्य की दृष्टि हट जाती है उसी तरह उसकी दृष्टि हट गई। भीमदेव ने उसे न पहिचाना। उसके शरीर कमल पर

भीमदेव की उपेक्षा का हिम ऐसा गिरा, कि वह निश्चेष्ट और निस्पन्द हो गई।

भीमदेव महाराज और उनके साथी राजाओं ने दर्शन किये, दण्डवत् हो प्रणाम किया, चरणामृत लिया, चन्दन लगाया और घण्टानाद किया और जैसे मरती हुई राजहंसी अन्तिम गीत गाती हो उसी तरह उस नर्तकी का सकरुण और हृदय विदारक सँगीत सुना।

'सब गर्भद्वार के बाहर आये और गुरुदेव ने हाथ उठाकर सबको शान्त रहने को कहा। केवल अस्खलित नृत्य एवं सँगीत नियमानुसार चलता रहा। भीमदव ने भ्रूभंग किया। "संगीत बन्द करो" उसने गायिका की ओर बिना देखे गर्जना की, और गायिका का गीत एवं पद-विन्यास म्रियमाण पुरुष की ध्वनि के समान अपूर्ण ही रह गया।

"वत्सो!" गुरुदेव ने मन्द एवं गम्भीर स्वर से कहा, "भगवान् सोमनाथ ने कटाकटी का प्रसँग उपस्थित कर दिया है। आठ दस दिन में यवन यहां आ पहुंचेंगे और आज से मैं भगवान् के इस धाम का अपना सर्वाधिकार भीमदेव महाराज को सौंपता हूं। भगवत्सेवा में परायण ये महारथी जो कहें वही आपका कर्त्तव्य होगा। भगवान् की कृपा इन्ही पर उतरी है—" सब ध्यान से सुनते रहे। जिनके हृदय में उत्सव था वे थर-थर कांपने लगे—आई हुई विपत्ति का कुछ भान सब लोगों को उस क्षण हुआ।

तदनन्तर भीमदेव ने प्रौढ एवं, सत्तावाही स्वर से कहा, "मै तो निमित्त मात्र हूं। भगवान् की इच्छा का वाहक हूं। त्रिपुर से भी भयानक विध्वंसक अपने द्वार पर आ खड़ा हुआ है। यदि भगवान् की आज्ञा होगी तो उसे भी हम पूरा कर सकेंगे।" वे कुछ रुके और उनकी दृष्टि सब पर एक बार और टिकी। पूर्ववत् वह चौला पर भी टिकी सही, परन्तु उसमे परिचय की ऊष्मा न थी। "दो दिन हुए खम्भात से कुछ वाहन आ पड़े थे, कल और भी आ जायंगे। सब नागरिक ब्राह्मण, स्त्री एवं बालकों को प्रभास खाली कर देना है।

प्रत्येक नागरिक अपनी दौलत को साथ ले जाय किन्तु नाज-पानी यहीं छोड़ जाय। मेरी सेना सब घरों पर कब्ज़ा कर लेगी। विमल!" उसने हाथ के सत्तावाही अभिनय के साथ मन्त्री को आज्ञा दी, "सारा गांव तुरन्त ही खाली करवाया जाय, और हे गुरुदेव! अब इस संगीत और नृत्य को बन्द करवाइए। जब भगवान् अमीर का विनाश कर देंगे तब देव मन्दिर में यह विधि फिर से शुरू की जायगी।"

और भयंकर दृष्टि से सबको डराते हुए वे गुरुदेव और अन्य साथियों के साथ चले गए।

: ४ :

जनता में कोलाहल मच गया और वेसुध अवस्था में चौला आँखों पर हाथ रखकर अपने घर की ओर चल पडी। भयंकर विपत्ति में पडे हुए नर-नारियों को उसकी ओर दृष्टिपात करने की भी स्वस्थता न थी।

घर जाकर वस्त्र एवं आभूषण विना उतारे ही चौला बिछौने मे जा पडी और रोने लगी। रण में चढाई करने के लिए उसके भगवान् रुद्र आए थे परन्तु उसे पहिचाने बिना ही वे चले गए। मोक्ष के द्वार खुले परन्तु उसकी दृष्टि अन्दर तक पहुंचने से पूर्व ही वे बन्द होगए।

चौला की यह धारणा मिथ्या थी कि उसका नृत्य एवं संगीत विना देखा ही रह गया। सत्रह दिन के उपवास और हाथ में रखे हुए पार्थिव के साथ असुविधा मे बैठे हुए शिवराशि की दृष्टि चौला पर से हटती न थी।

दिखावे के लिए शिशु भाव के साथ उसने गुरुदेव की आज्ञा सिर पर चढाई थी—न चढाता तो पट्टशिष्य का पद गुरुदेव छीन सकते थे। परन्तु उसके हृदय में तो होली जल रही थी। गुरुदेव ने उसका मान भङ्ग किया था उसका अधिकार छीन लिया था। त्रिपुर सुन्दरी की विधि को स्थगित किया, यह उनका अक्षम्य अपराध था। और यह सब उन्होंने अपनी दासी पुत्री को प्रसन्न रखने के लिए किया था। अतएव शिवराशि के मन में वे गुरुपद से उतर गए थे। अब उनको

गुरुपद पर रहने का अधिकार न था—ये सब विचार उसके मन में निरन्तर चक्कर लगा रहे थे।

ज्यों-ज्यों उपवास के दिन बढते गए और उसकी बुद्धि प्रायश्चित से निर्मल होती गई त्यों-त्यों उसने गुरू का अपराध दूसरी तरह से देखा। उस दिन चौला मे त्रिपुर सुन्दरी सचमुच उतरी थीं और उसकी पूजा को रोकने का महापाप उन्होंने किया—वैसे तो प्रायश्चित्त उन्हे ही करना चाहिए था और उसी महापातक के कारण त्रिपुर सुन्दरी ने कुपित हो गुरु के विनाश के लिए गज़नी के अमीर को भेजा था।

ज्यों-ज्यों उपवास की सीमा बढती गई और बुद्धि निर्मल होती गई त्यों-त्यों उसे जो भी कुछ होता उसमे त्रिपुर सुन्दरी की महाशक्ति का ही परिचय प्रतीत होता था। गज़नवी अवश्य जीतेगा, गुरू को पद-भ्रष्ट करेगा और आख़िरकार उसे ही सर्वज्ञ पद प्राप्त होगा ऐसा उसे दृढ विश्वास होने लगा। जीती-जागती जगज्जननी महामाया सब कुछ सह लेती परन्तु अपनी अवज्ञा को सहन करना तो उसके भी वश की बात न थी।

महामाया की शक्ति की कल्पना करते उसे प्रतिपल चौला का स्मरण होता। चौला का वह स्वरूप उसकी कल्पना में नृत्य कर रहा था जिसकी उसने उस रात को पूजा की थी। प्रतिक्षण, जागते और सोते उसीका मुँह दिखाई देता और उस अपूर्ण विधि को पूर्ण करने के हेतु वह तरस रहा था। स्वप्न मे उसने कई बार उस विधि को पूर्ण भी किया। परन्तु जब जाग्रत अवस्था में उसे उसकी अपूर्णता का ज्ञान होता तो वह व्याकुल हो जाता। जैसे-जैसे गज़नी के आक्रमण की बात फैलती वैसे-ही-वैसे उसके हृदय मे आशा उत्पन्न होती थी। ऐसे किसी महान् भूकम्प के बिना महामाया की विजय होने वाली न थी। इतने ही मे भीमदेव आ पहुँचे। मन्दिर तक आते हुए जो बात-चीत भीमदेव ने गुरुदेव के साथ की थी उसका कुछ अंश उसने भी सुन लिया था। सबको वहां से खम्भात जाना था। यदि गुरु जी वहां

न पधारें तो वह सब को खम्भात ले जाय और वहां लकुलेशमत की पताका फहरावे। चौला उसके साथ होगी ही और फिर वहा गुरु भी साथ मे न होगे। परन्तु भीमदेव और चौला के किसी दिन रात मे चुपचाप मिलने की बात भी सुन रखी थी। परन्तु वह खम्भात जाने वाला कहां था?

और जब भीमदेव की अलिप्त दृष्टि चौला पर पडती हुई उसने देखी तब कही उसे स्वस्थता हुई। इतने दिन के उपवास के कारण तीव्र बनी हुई वृत्तियों की तृषा उसने चौला के स्वरूप एवं नृत्य को देख कर बुझाई।

जब भीमदेव ने भयङ्कर कठोरता के साथ नृत्य को अधबीच में रोक दिया तब उसके पुण्य प्रकोप का पार न रहा। जब गुरुदेव की सम्मति से भीमदेव ने नृत्यविधि बंद की तब उस महापाप को होते देख उसे रोमाञ्च हो आया। गुरुकी अधोगतिको अब सीमा न रही थी।

जब गुरुदेव और भीमदेव मन्दिर से बाहर निकले तब वह भी साथ था। सीढ़ियां उतरने पर गुरु ने उसकी ओर देखा। "शिवराशि! तुम जाओ और पारणा करो और पार्थिव का विसर्जन करो। इस नये आपद्धर्म के सामने सब धर्मों का परिवर्तन करना ही पडेगा। और फिर लौट कर चले आना।"

शिवराशि ने प्रणाम किया और पार्थिव का विसर्जन करने वह चला गया। उस कर्तव्य को समाप्त कर, उपवास छोडने से पहले उसे महामाया का स्मरण हुआ। जिस देवी के लिए उसे प्रायश्चित्त करना पडा उसके दर्शन किये बिना उपवास छोडना उसे अच्छा न लगा। केवल चौला की वासना ही उसे प्रोत्साहित कर रही थी यह वस्तु उसकी कल्पना मे भी न थी। लकुलेश मत के अधिष्ठाता के पद की दूसरी सीढ़ी पर खडा हो, अठारह दिन के उपवास से निर्मल हुई बुद्धि से प्रेरित हो, महामाया की भक्ति में तल्लीन वह तत्वज्ञानी और तपस्वी शिवराशी सनातन विधि को सम्पन्न करने में लगा हुआ था।

वह चुपचाप गङ्गा के घर गया।

घर खुला था। वह अन्दर गया। वहां खाट पर औंधे मुँह पड़ी हुई चौला रोते-रोते थककर सो गई थी। बड़ी देरतक शिवराशि चौला के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को निहारता रहा। वह थरथर काँपने लगा। उसकी आंखों में भयानक तेज फैला। त्रिपुरसुन्दरी ने जिसमें प्रवेश किया, उस महामाया की विधिपूर्वक पूजा उसे करनी थी। जब गुरुदेव न होंगे तब वह पूजा करेगा। गज़नवी आ रहा है और थोड़े ही दिनों में वह अवसर हाथ आयगा। अभी तो केवल उसे अपने हृदय का भार उतारना था। औंधे मुंह सोई हुई चौला का एक पैर खाट से नीचे लटक रहा था। उसने उस पैर को ध्यान से देखा। वह गुलाबी सुकुमार फूल जैसा लटक रहा था और उसमें भूरी नसें भी दीखती थी। उसने वहां प्रणाम किया और हृदय की उर्मियों को बड़ी कठिनाई से वश में कर अपना मस्तक महामाया के चरणकमल में झुका दिया। चौला चौंक कर उठी। उसने अपनी खाट के पास उपवास के कारण विकृत एवं विकराल आँखों से भयानक शिवराशि को पाया। "अरी मेरी मां रे !" चौला के मुंह से एक भयङ्कर चीख निकल पड़ी वह एक छलांग के साथ कमरे से बाहर कूद गई और मानों राशि उसे खाने को दौड़ता जा रहा हो ऐसा समझ वह वहां से भाग गई। शिवराशि वहां से चल पड़ा। रूठी हुई त्रिपुरसुन्दरी उसकी पूजा भी क्योंकर स्वीकार करे। व्याकुलता के साथ वह अपने स्थान पर गया। सिद्धेश्वर एवं हरदत्त को बुला लाने की आज्ञा देकर उसने अपना उपवास छोड़ा।

हरदत्त तुरन्त आ पहुंचा। त्रिपुरसुन्दरी के विधिभँग से उस दुखित पुजारी के हृदय पर प्राणहर आघात पहुंचा था। पचास वर्ष हुए, गङ्ग-सर्वज्ञ के गद्दी पर आने से पहले ही वह त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर का भक्त बना था। उसने अगणित उत्सव देखे और कराये थे। आज ही वह अपूर्ण रहता देखा था। मन्दिर विधिहीन हो गया, और महामाया की

अर्चना उसके हाथ से चली गई थी। उमकी पृथ्वी तो रसातल में डूब गई थी, अतएव उसकी बोलती बन्द हो गई थी। अर्धविक्षिप्त जैसा वह महामाया के मन्दिर के आसपास घूमता रहता। किसी समय कहीं अन्धेरे में एक कोने में किन्हीं वाममार्गीय दीक्षितों के साथ मिलकर वह कुछ विधि कराया करता।

"हरदत्त! हम सब पर भयङ्कर विपत्ति आपडी है।"

"ऊँह" हरदत्त ने कहा।

"तेरा क्या विचार है? जगज्जननी महाशक्ति की पूजा अधूरी रह गई, इसीसे यह देवी कुपित हुई है।"

हरदत्त की आंखें स्थिर हुईं और वह बोला, "सच बात है।"

"अपूर्ण पूजा पूरी करनी चाहिए और किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए। बिना किये इस विपत्ति का निराकरण नही हो सकता", —शिवराशि ने अभिप्राय प्रकट किया।

"महामाया के कोप से कोई छूटा नहीं" हरदत्त बोला।

"हमे महामाया की आराधना करनी ही चाहिए। कल हमें खम्भात जाना होगा। तू मेरे साथ रहना, वहा हम जगज्जननी की पूजा करेंगे।"

"ठीक, मैं साथ ही रहूंगा।"

"मालूम है—साथ चौला भी रहेगी?"

"राशि जी! महामाया के कोप से न जाने क्या हो जाय। परन्तु उनकी पूजा में दख़ल देनेवाले की भी ख़ैर नहीं है", हरदत्त ने कहा।

"क्या, क्या?" शिवराशि ने कहा, "अब तू यही रह, मैं जाता हूं।" इतना कहकर गँगसर्वज्ञ का पट्ट शिष्य विपत्ति दूर करने की अपनी योजना बनाकर गुरुदेव के पास गया।

: ५ :

चौला भागी और मन्दिर में, जहां उसकी मां बिल्वपत्र साफ कर रही थी वहां जाकर चिल्लाई, "मां, मां, वही फिर मेरे पीछे लगा था।"

"कौन, भीमदेव?"

"क्या बकवाद करती हो ? राशी जी।"

"तू तो पागल है। भीमदेव महाराज को तूने देखा है ?"

"माँ मुझ से कुछ न पूछ—", चौला की आंखो मे पानी भर आया, "मैं तो हतभागिनी हूं, मेरे भाग्य में तो सुख है ही नहीं।" और वह रो पड़ी। गङ्गा ने उसे जैसे-तैसे सान्त्वना दी।

"मां ! कल हम सब को खम्भात जाना होगा।"

"जैसी सर्वज्ञ की मर्जी।"

"परन्तु उनके पास जाकर हमें पूछना तो चाहिए ?"

"क्यो ? यहां से कहीं जाने के लिए अकुला रही हो क्या ?"

"मेरे शम्भु मेरे नहीं। अब मैं अपने नृत्य से उन्हें रिझा नही सकती। मैं जीवित रही तो क्या और मर गई तो क्या ?"—और वह कम्पन का अनुभव करने लगी।

"चल,चल,-हम जांच करें" यो कहकर गङ्गा चौला को लेकर गुरुदेव के आवास की ओर रवाना हुई। गुरुदेव एकांत में मन्त्रणा कर रहे थे यह जानकर वह सामने आकर बैठी। चौला भी उसके पास ही बैठी। दोनो खण्डो में एक दूसरे की ओर ठीक-ठीक न देख सकते थे परन्तु सुनाई सबको दे रहा था।

"भीमदेव ! गज़नी का अमीर आवे या उसका बाप आवे, भगवान् की मूर्ति तो यहां से खिसकाई नही जा सकती।"

"परन्तु गुरुदेव ! भगवान् ऐसा न करें लेकिन कुछ हो गया तो ?" राय ने कहा।

"जहां तक इस शिवमूर्ति का तेज है वहां तक त्रिपुरासुर भी कुछ न कर सका तो मनुष्य की जात आखिर कर ही क्या सकती है ?"

"परन्तु उसने कई ऐसी शिवमूर्तियां उखाड़ फेंकी हैं। कहा जाता है कि वह देव की प्रतिमाओं का काल है।"—विमल मन्त्री ने कहा।

"तुम सब के हृदय की श्रद्धा समाप्त हो गई है अतएव देवमूर्तियों का खण्डन हो रहा है। परन्तु मेरी श्रद्धा का अन्त नहीं हुआ है—वह

तो ज़रा भी शिथिल नहीं हुई है। मेरे भगवान् अनादि एवं अनन्त हैं, किसी की ताकत नहीं कि कोई छेड सके।"

"यों न कहिए महाराज!" भीमदेव ने कहा, "भगवान् में आपकी श्रद्धा अचल है।"

"तुम अमीर का विचार कर रहे हो, मैं तो वह भी नहीं करता। मेरे भगवान् की इच्छा के बिना एक तिनका भी हिल नहीं सकता—तो फिर वह कौन होता है?"

"परन्तु गुरुदेव!"—राय ने कहा, "हम तो सब दुनियादारी के जीव हैं, हमें तो जय पराजय दोनों का ही विचार करना पडता है।"

"जय और पराजय—यह तो मूर्खों का गणित है। इस विचार का कर्त्ता तो भोलानाथ है—तुम क्या कर सकोगे?"

"गुरुदेव! हम भी यही निश्चय किए बैठे हैं। हम जीते-जी अपने इष्टदेव की एक भी ध्वजा को न झुकने देंगे, परन्तु जब हम ही न रहेंगे तो?" राय ने कहा।

"कौन किसे रख सका है भाई। राय! तुम्हारा कहना सब व्यर्थ है। मेरे देव यहां से नहीं सरक सकते। तुम्हारे जैसे सुलक्षण शूरवीर प्राण देने जब को तैयार हैं तो वहां पराजय की बात क्यों कहते हो। लडो और विजय करो। भगवान् तुम्हारी सहायता पर हैं।"

"मैं जानता हूं, मैं यह जानता हूं" भीमदेव ने कहा "मेरे अन्तःकरण में भी यही आवाज़ उठती है। मेरे भोलानाथ त्रिशूल लेकर सन्नद्ध हैं और विजय अपनी ही होगी। परन्तु युद्ध के समय यदि बाण यहां से ले जाया जाय..."

"नहीं ले जाया जा सकता, मेरे भाई!" गुरुदेव ने कहा "यह तो सृष्टि काल में यहां प्रकट हुआ और प्रलय काल में भी यहीं पर रहेगा।"

"तो फिर आप खम्भात जाइये। आपपर तो सारे पाशुपत मता आधार हैं।

"वत्स!" गुरुदेव ने धीरे से परन्तु दृढता के साथ कहा, "तुम मुझे कब पहिचानोगे? मुझे यह गुरुपद प्रिय नहीं है और न प्रिय

है लकुलेश मत का सर्वज्ञ पद। मैं तो अपने भगवान् का दासानुदास हूँ। जहां वे वहां मैं। उनसे विरहित जीवन की मै कल्पना भी नहीं कर सकता।"

"परन्तु ये कोई तपस्वियों के काम हैं? ये तो हमारा काम है—लड़ना"

"तपस्वियों का काम कहां नही है, भीमदेव?" गुरुदेव ने पूछा "जहां तपस्वी नहीं वहां पुण्य नहीं, जहां पुण्य नही वहां विजय नहीं।"

"परन्तु आप हैं तो सही—"

"अरे इस बात को छोडो" सर्वज्ञ ने कहा, "सामन्त भी इसी हठ को ले बैठा था, परन्तु मैंने तो अपना निश्चय कभी से कर लिया है—जहां भगवान् का लिंग वहीं मैं। म्लेच्छ को जो करना हो सो करे। देव और म्लेच्छ के बीच यदि कोई मानुषी सन्तति न हो तो भी मैं अकेला ही खडा रहूँगा। मेरे भाल पर कौन-कौन से पराक्रम लिखे होंगे ये तुम्हें क्या मालूम?"

सर्वज्ञ का मधुर एवं निश्चल स्वर सुनकर गङ्गा ने अपने आंसू पोंछे, भीमदेव आदि वीर भी उस वृद्ध की अविचलता के सामने अवाक् रह गये।

थोडी देर के बाद सर्वज्ञ ने कहा, "मेरे सब शिष्यों को ले जाओ। लकुलेश सम्प्रदाय के वे स्तम्भ हैं। उनकी निष्ठा और तप का संरक्षण आवश्यक है। शिवराशि! तू और गगनराशि सबको लेकर खम्भात जाओ।"

"जैसी आज्ञा।" शिवराशि ने कहा। शिवराशि के बाद दूसरा मुख्य शिष्य गगनराशि था, उसने बिना कुछ कहे ही आज्ञा स्वीकार की।

"वणिक्जन को तो मै आज रात ही को रवाना किये देता हूं।" विमल ने कहा।

"सवेरे ब्राह्मण जायंगे।"

"हां ! मुझे किसी की अपेक्षा नहीं"—गुरुदेव ने कहा ।

"गुरुदेव !" शिवराशि ने यथाशक्ति संयम रख तटस्थ भाव से निवेदन किया, "गङ्गा और इतर नर्त्तकियों को भी ले ही जाना होगा।"

"यही तो," गुरुदेव ने कहा "वे बेचारी यहां रहकर क्या करेंगी। गङ्गा को कह देना कि तैयार हो रहे।"

"गङ्गा यहां से एक तिल भर भी न खिसकेगी" दरवाज़े के मध्य में, कमर पर हाथ रख रीस पर चढी हुई चण्डिका के समान उग्र गङ्गा बोल उठी। सब राजन्य देखते ही रहे। "गुरुदेव ! भगवान् के चरणों में आपका स्थान है तो आपके चरणों में मेरा स्थान है।"

सर्वज्ञ हँस पडे "गङ्गा ! परन्तु यहां पर स्त्रियों का काम नहीं—तुझे तो जाना ही पडेगा।"

"अपना काम मैं खूब समझती हूं। आप सब के लिए तो व्रत है, हमारे लिए नहीं।"

"परन्तु पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को यवनों से अधिक भय है—" राय ने कहा।

"यही कारण है कि सहस्रों नारियों को अग्नि में लुप्त होना पडा।"

"मेरे प्राण तो पूज्यपाद के चरण कमलों में है और उन्हें पाने के लिए तो मुझे अग्नि की भी शरण लेने की आवश्यकता नहीं।"

गुरुदेव ने गङ्गा की ओर देखा और उस भक्त स्त्री के हृदय की निर्मलता परखी।

"ठीक विमल ! इसे रहने दो"—"और गङ्गा तेरे पीछे कौन है, चौला ? इसे तो भेज दे।"

"हां, इसे तो भेज ही देना चाहिए" राशि ने कहा "युवतियों का यहां काम नहीं।"

"चौला ! जायगी तू ?" गङ्गा ने पुत्री की ओर देखा।

चौला का स्वरूप कुछ अद्भुत-सा था। होठ बन्द करके तेजस्वी नयनों से वह गुरुदेव से भीमदेव की ओर और भीमदेव से शिवराशि

की ओर क्रमशः देखती रही। व्याकुल श्वास को मार्ग देने के लिए उसने अपना सुकुमार हाथ गले पर रख लिया था।

"चौला जायगी न ?" गंगसर्वज्ञ ने हँसकर कहा। उत्तर में केवल चौला के नेत्र बावले होगए थे।

"आप सब लोगों ने—" उसका टूटता हुआ गद्गद् स्वर व्याकुलता के साथ गले से जैसे-तैसे बाहर निकला,—"मेरे शम्भु ले लिये, मेरा नृत्य बन्द कर दिया, अब मुझे जीवित रहना ही नहीं, तो मुझे भी अब मार डालो"—इतना कह कर वह एक कदम आगे बढ़ी, वह लड़खड़ाई और आंखों पर हाथ रखकर निश्चेष्ठ होकर नीचे गिर पड़ी। उस पल में भीमदेव का स्मरण पट स्वच्छ हुआ। वही रात्रि, वही चन्द्रिका, वही मुख और वही शरीर! उनका हृदय एक दम उछला और उन्होंने खड़े हो चौला को एक दम उठालिया। सब क्षण भर के लिए रण-चर्चा भूल गए।"

भीमदेव ने मृदुता के साथ चौला को उचका कर गङ्गा की गोद में सुला दिया। गंगसर्वज्ञ हँस पड़े।

"जहां श्रद्धा होती है, वहां प्राण प्यारे नहीं होते" उन्होंने कहा "जिसे श्रद्धा हो वह भले ही यहां रहे। भक्तों का भगवान् से वियोग करने में महापातक है।"

"ठीक है।" भीमदेव खिसिया कर बोले, "मैं जो कुछ चाहता हूँ उसके विरुद्ध कोई-न-कोई सिद्धान्त निकल ही जाता है। परन्तु गुरुदेव! मुझे अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करने भी देंगे ?"

"हां हां, अब मैं न बोलूंगा" इठलाते हुए गुरुदेव ने कहा, "बस, अपना सब अधिकार तो मैंने आप को दे दिया—अब क्या रहा ?"

: ६ :

परन्तु भीमदेव ने जैसा समझा था उतना सरल वह काम न था। जैसे-तैसे दामोदर मेहता ने आठ वाहन तुरन्त भेजे थे। कल दूसरे ग्यारह वाहन आयेंगे, ऐसा सन्देश आया था। भरूच बन्दरगाह से भी कुछ

नौकाएं भी आयंगी ऐसी आशा भी उन्होंने प्रकट की थी। छोटे वाहनों में अधिक-से-अधिक पचास आदमी समा सकते हैं, और बड़े वाहनों में लगभग दो सौ का समावेश हो सकता था—इस तरह इतने वाहनों में दस-पन्द्रह हजार मनुष्य तो भेजे नही जा सकते थे। अतएव उसकी कठिनाई की सीमा न थी—

परन्तु भीमदेव हार जाय ऐसा न था—किन्हे भेजे—कौन पहले भेजे जाय और कौन पीछे, किस तरह और कब भेजे जायं—इन सब बातों का निर्णय उसने कर रखा था। सायंकाल ही सब वाहन तैयार हो गए थे और पहला संघ घर-द्वार छोड़कर वाहनों पर सवार होने बस्ती से बाहर निकला। सगे सम्बन्धियों और मित्रों का रुदन शुरू हुआ। बन्दरगाह पर अश्रुपूर्वक विदाई शुरू हुई। जाने वाले भगवान् का नाम रटते, थरथर घूमते वाहनों पर चढ़ने लगे। कितने ही तो स्तोत्र-पाठ करने लगे। कई लोगों ने गज़नवी को कई गालियां सुनाईं। जिनके स्त्री पुत्र विदा हो रहे थे उनके आनन्द का पार न था। पीढ़ियों से जिन्होंने प्रभास के सिवा दूसरा घर न देखा था उन्होंने भी परदेश का रास्ता लिया। यह सारा कार्यक्रम विमल मन्त्री सांगोपांग पूरा करने मे लगे।

दूसरा इससे भी कठिन काम तो नये आये हुए सैनिकों को ठहराने का था। भीमदेव शिवराशि और मन्दिर के दीपा कोठारी को लेकर इस काम मे जुटे। तीन हज़ार पाहुने की व्यवस्था करना कोई छोटा-मोटा काम न था। शहर के निवासी अपने घर खाली कर एक दो आदमियों के घरों में जा पड़े, और खाली घरों में सैनिकों ने अपना डेरा जमाया। जहां धर्मशालाएं थीं वहां सैनिकों की टुकड़ियों का पड़ाव जा पड़ा। आवश्यकता पड़ने पर कई टुकड़ियों का छोटे-छोटे मन्दिरों के सभागृहोंमें पड़ाव डाला गया। जितना भी अनाज प्रभासमें था और जो कुछ अनहिलवाड से लाया गया था वह सब प्रभास के दीपा कोठारी के हाथ में सौंपा गया और उसने स्थान-स्थान पर अनाज

बेचने के स्थान निर्धारित कि और किसी को भी रहने और खाने की असुविधा न हो इसका पूरा-पूरा प्रबन्ध किया।

भीमदेव फिर दूसरे काम की ओर झुके। उनका, राय रत्नादित्य और त्रिलोचनपाल का मत था कि प्रभास का गढ और उसके आस-पास की खाइयां जितनी चाहिएं उतनी अच्छी न थीं। तुरन्त ही तीनों इस काम में लग गए और दोनों को ही योग्य बनाने की व्यवस्था करने का उन्होंने निश्चय किया। पल-पल की कीमत थी। अमीर कब आ पहुंचेगा यह कोई नहीं कह सकता था। अतएव यथासम्भव शीघ्र ही अधिकांश नागरिकों और सैनिकों को इस काम में जुटा दिया गया। दिन और रात काम करना था इसलिए मशालों की भी व्यवस्था करनी थी।

सारा प्रभास थोड़ी ही देर मे चींटी की कतार के समान प्रवृत्ति से भर गया। उसके प्रेरक भीमदेव थे। पैदल या घोड़े पर सवार हो वे इधर-से-उधर मन्त्रियों और सेनापतियों के साथ दौड़ते रहते। प्रत्येक वस्तु पर उनकी दृष्टि थी। पल-पल में आदेश छूटते थे। उनकी आंखों से ज्वालाएं निकलती थी,उनके मुँह से वाग्बाण निकलते थे और एक दो अवज्ञा करने वाले पुरुषों ने उनके बाहु-बल का भी स्वाद चखा था। खाई खोदने से साफ़ इन्कार करने पर एक धृष्ट नायक ने तलवार के एक झटके से अपना हाथ खोया। गाँव का मालिक वहां आया था यह सब को प्रतीत होने लगा।

भीमदेव नगर में प्रस्तुत प्रवृत्तियों पर अन्तिम निरीक्षण करके जब लौटे तो लगभग मध्यरात्रि हो चुकी थी। सब काम राह पर लग गया और सुबह तक बहुत कुछ काम सम्पन्न हो जायगा, इस आशा से उन्हें सन्तोष हुआ। आखिरी परकोटे में भगवान के मन्दिर की बहिशाला पर एक भवन था, जहां वे ठहरे थे। वे जब वहां पहुंचे तो वीरा चावडा उनकी प्रतीक्षा में बैठा हुआ नज़र आया। उसने स्नान के लिए जल और भोजन सामग्री तैयार कर रखी थी।

वीरा महाराज के अनुचर, मित्र एवं माता तीनों ही का काम

करता था। उसने भीमदेव को बाल्यकाल में अपने कन्धे पर बिठा कर घोड़ा-घोड़ा खिलाया था। बड़े होने पर उसीने उन्हें तलवार चलाना और बाण मारना सिखाया था। भीमदेव की कुमार अवस्था से ही वह उनके साथ था। वह भोजन की सामग्री पहले स्वयं चखकर अपने मालिक को खिलाता था और प्रतिदिन उनके शयनागार के द्वार पर नङ्गी तलवार लेकर सोता था। वीरा रात को पैर न दाबे तो भीमदेव को नींद न आवे और जबतक भीमदेव रात को लौटकर वीरा से इधर-उधर की बातचीत न कह सुनलें तब तक वह भी न सोता था।

आज भी वीरा ने भीमदेव को नहलाया और भोजन करवाया "बापू अब तो सो जाओ। दो चार घडी नींद लिये बिना शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा।"

"और गज़नी के अमीर को जबतक नष्ट न करदूं तब तक सोना मेरे लिए हराम है"—कहकर भीमदेव ने अपनी कटि पर तलवार बांधना शुरू की।

"परन्तु बापू! ज़रा तो पैर रखो। कल रात से विश्राम से बैठे भी नहीं। अभी तो युद्ध का काम बहुत दिन तक चलेगा।

"वीरा! यह युद्ध का काम नहीं है—तू तो चल तैयार हो जा।"

"ऐसा क्या है?" कह कर वीरा भी शस्त्र सुसज्जित करने लगा।

"तू बूढ़ा हुआ, तुझे क्या मालूम?" दोनों ऊपर की मंजिल से नीचे उतरे।

"वीरा! कल इस सामने के भवन में गुरुदेव रहने आने वाले हैं—संभल कर रहना।"

"अपना आवास छोड़कर यहां?"

"हां। भीमदेव ने कहा "उनके अनेक शिष्य कल चले जायंगे। और परकोटे मे अपने साथ रहेंगे तो जब आवश्यकता होगी मुझसे भी तुरन्त मिल सकेंगे।"

दोनों नीचे आये और सभामण्डप मे चौकीदारी करने वाले सैनिकों ने विनय पूर्वक प्रणाम किया। भीमदेव को सन्तोष हुआ।

"देवधाम सैनिक स्वरूप धारण करने तो लगा है" उन्होंने धीमें स्वर से वीरा के कान में कहा।

"बापू! आप जैसे कार्तिकेय का अवतार जहां हो, तो वहां और क्या हो सकता है?"

दोनों ने भगवान् के दर्शन किये और फिर भीमदेव नर्तकियों के आवास की ओर रवाना हुए। अधिक रात बीत जाने पर भी घरों में धूमधाम चल रही थी, कारण, बहुत सी नर्तकियां कल खम्भात जाने वाली थीं। कुछ नर्तकियों ने वहीं रहने का विचार प्रकट किया। परन्तु इतनी स्त्रियों को भी यहां रहने देना है कि नहीं इसका निश्चय अभी तक विमल मन्त्री ने नहीं किया था।

भीमदेव गङ्गा के घर की ओर गये। उसका द्वार बन्द था और वहां एक छोटा सा दीपक जल रहा था। उन्होंने कुण्डा खटखटाया और उत्तर मे तुरन्त गङ्गा की आवाज़ आई।

"कौन है इस समय?"

दो महीने पहिले वाला भीमदेव इस समय सर्वसत्ताधिकारी के रूप में वहां था। उस समय उसके अन्तःकरण में तनिक भी क्षोभ न था। "यह लो मैं भीमदेव। चौला का समाचार लेने आया हूं।"

"भीमदेव महाराज!" क्षुब्ध गङ्गा बोल उठी। माता ने पुत्री को जगाया। दोनों के बीच में कुछ धीमे-से स्वर मे फुसफुसाहट हुई। दीपक की ज्योति बढाई गई और गङ्गा ने आकर द्वार खोला। "पधारिए चालुक्य राज!"

"वीरा, भीतर आ और द्वार पर निगाह रखना"—यों कहकर भीमदेव गङ्गा के साथ ऊपर गए।

"चौला अब अच्छी है। इसकी प्रकृति कुछ ऐसी होगई है कि ज़रा से में चिढ जाती है और फिर वह बेसुध हो जाती है। फिर मेरी चिन्ता की सीमा नहीं रहती। पधारिए, बैठिए!"—इन शब्दों के साथ गङ्गा ने बाणावलि को आसन दिया। भीमदेव ने चारो ओर देखा "चौला

कपड़े बदलने गई—अभी आ रही है।"

द्वार की ओर से धडकते हृदय के साथ चौला रण में चढ़े हुए रुद्र को देख रही थी। उसके कानों में देवदुन्दुभि गडगडाने लगी, उसके देव ने—उसके प्रभु ने तपश्चर्या को स्वीकार किया और सदेह अमीर के मद का मर्दन करने वे वहां आ पहुंचे थे। जब उसके मनमें यह विचार चल रहा था उसी समय उसकी चपल अंगुलियां साड़ी बदलने में लगी हुई थीं। वह कपड़े बदल चुकी, परन्तु उसके पैर आगे न बढ़े।

"चौला! चल आ" गङ्गा ने कहा।

चौला साहस कर बाहर के कमरे में आई और लज्जा वश नीचे से ऊपर देख भी न सकी।

"आओ" गंगा बोली।

वह आई—अद्भुत छटा को बहाती—शरमाती—बाल अप्सरा की हृदय-वेधक मोहिनी से भीमदेव को लज्जित करती हुई—आई। उसकी झांझर चमकी और वह भीमदेव के पैरों में गिरी और उसने उनकी चरण रज सिर चढ़ाई।

"चौला! उस रात तूने कहा था कि विजय कर जल्दी लौटना, सो वह बात मैं भूला नहीं—" अवनत वदन से भावार्द्र नयनों को उन्नतकर पूर्वपरिचित भीमदेव का उपहार चौला ने स्वीकार किया।

"मैं वह भूला नहीं"—उसने फिर सोचा।

आप जब मन्दिर में पधारे और नृत्य बन्द करवाया तब मैं ही नृत्य कर रही थी"—आपके मधुर स्वर में उपालम्भ भरा था।

"मैंने तुझे देखा नहीं—मैं एकदर्शी हूं। मैं उस समय प्रभास को युयुत्सु करने की धुन में था।" वे हँसे, "परन्तु मेरी भूल हुई, प्रतिदिन कुछ समय नृत्य के द्वारा भगवान् की आराधना करने की तुझे अनुमति है—मैं यही कहने आया हूँ।"

"और कलसुंदे से चौला को बचाने के लिए आप का कितना

निहोरा मानू ?"

"स्त्री, विप्र और गाय की क्षत्रिय यदि रक्षा न करे तो कौन करेगा?" भीमदेव ने कहा।

चौला के नेत्रों से उपालम्भ के तीर छूटने लगे "मुझे क्षत्रिय होने के नाते आपने उबार लिया"—उसकी आंखें कह रही थीं।

भीमदेव की हृदयतन्त्री एकदम झनझना उठी, परन्तु उसे यह भान हुआ कि वह समय प्रणयगोष्ठी के अनुरूप न था । वे एकदम उठ खड़े हुए। "अभी मुझे बहुत काम है, मैं जाता हूं।"

गङ्गा भी उठ खड़ी हुई। "महाराज फिर किसी दिन दर्शन देने की कृपा करें।"

भीमदेव रुके और ऊर्वशी को लज्जित करनेवाली लावण्यमूर्ति को सामने देख उससे दूर होने का साहस उसे न हुआ।

"प्रभास में कल के बाद भाग्य से ही कोई नारी रहेगी। कल से तुम दोनों को गुरुदेव और मैं जहां रहने वाले हैं वहीं आना होगा, कारण, हमारी सार-सम्हाल तुम्हारे ही हाथ है।"

गङ्गा के हर्ष का पार न रहा। "जैसी कृपानाथ 'की इच्छा" उसने कहा। चौला को तो दसों दिशाएं नृत्य करती प्रतीत हुईं। भीमदेव की कर्त्तव्य-परायणता ने नया कारण ढूंढ निकाला "कल सुबह इन सारी नर्तकियों के आवास में मेरे सैनिकगण पड़ाव डालने वाले हैं।"

और तीसरी बार उन्हीं चक्षुओं से उपालम्भ के बाण छूटे "यह कारण बतलाने की जल्दी क्यों ?"

: ७ :

शिवराशि मध्यरात्रि में नितान्त श्रान्त हो गया था। आज ही उसने अपना अनशन छोड़ा था और आज ही उस पर यह सब कार्य-भार आ पड़ा था । उसीमें मैं कल जाऊँ या न जाऊँ यह प्रश्न उसके हृदय में घुट रहा था, और उस प्रश्न का हल वह अपने अनशन से शुद्ध बनी हुई वृत्ति से करना चाहता था।

दोपहर तक भगवान् की सेवा और गुरुभक्ति एक पलड़े में थी और दूसरे में थी गुरु की अनुपस्थिति में पाशुपत मत की विजय और त्रिपुरसुन्दरी जिसमें उतरी थीं उस चौला का सान्निध्य। परन्तु अब तो चौला ही पहले पलड़े में जा बैठी। गुरु ने पाप किया था। उससे अनुचित रीति से प्रायश्चित्त करवाया था और उन्होंने स्वयं विधि का भङ्ग किया था अतएव गुरुभक्ति का भार निश्चय कम हो गया था। और यदि घटनाचक्र से गज़नवी जीते और प्रभास ले ले तो पाशुपत मत का उद्धार उसी पर निर्भर रहे इस कारण दूसरे पलड़े में भी कुछ भार बढ़ा। गुरु हठ पकड़ कर यहीं रहें, अमीर सर्वनाश करे और फिर यदि वह खम्भात हो तो उसे सर्वज्ञपद तुरन्त प्राप्त हो यह कल्पना उसने अपने मन से हटा दी थी। उसे एक तपस्वी की दृष्टि से ही उस प्रश्न का उत्तर ढूंढ निकालना था। स्वयं भी यदि वह यहीं रह पाय और यदि काल की महिमा से गुरु भी न रहें और वह भी न जीवित रहे तो पाशुपत विद्या का लोप हो जाना निश्चित था। चौला यहीं रहे और वह खम्भात चला जाय तो त्रिपुरसुन्दरीकी पूजा अपूर्ण रहनेके कारण देव-कोप अधिक बढ़े। यों सङ्कल्प-विकल्प करते शिवराशि परकोटे में प्रविष्ट हुए। इस पवित्र धाम में सैनिकों की चौकी और भक्तों का अभाव देख कर वे खिन्न हो रहे थे। उनकी तपश्चर्या यदि सम्पन्न की जाय, और यदि महामाया की पूजा भी विधिवत् पूर्ण की जाय, तो गज़नी का अमीर आप-ही-आप जलकर भस्म हो जाय यह सब किस तरह किया जाय ?

शिवराशि एक ओर से आया तब भीमदेव और वीरा चावडा अपने निवास की ओर जा रहे थे। उसने उन्हें पहिचान लिया। भीमदेव तेजस्वी था, चतुर था, उसे राजगद्दी पर लाने में उसने कुछ मदद की थी। यदि अमीर की हार हो और भीमदेव गुर्जरेश होकर राज्य भोगें तो फिर अपने सर्वज्ञपद की शोभा हो—यह भी वस्तु सत्य थी—विचारमाला भग्न हुई और उसके कानों में भीमदेव के शब्दों की आहट हुई।

"वीरा ! चौला अद्भुत सुन्दरी है। कल तू जब देखेगा तब तुझे

भरोसा होगा।"

चौला, अद्भुत सुन्दरी ! सुन्दरी ! इस क्षुद्र संसार के जीव को विदित नहीं कि उसमें त्रिपुरसुन्दरी का अंश है और उसकी पूजा अपूर्ण रही इसी कारण यह सारी विपत्ति आ पड़ी है। भीमदेव के शब्दों से अभिव्यक्त भाव उसे रुचिकर न लगे। वह कल वीरा से मिलने वाली? कहां—कब और कैसे? दोपहर को तो भीमदेव ने उसे पहिचाना भी न था और इस समय यह बात कैसे? भीमदेव और चौला पहले कभी मिले थे यह बात झूठ थी या सच? उसी क्षण भीमदेव उसके मन से उतर गया। चौला में विद्यमान महामाया का किसी भी प्रकार से वह अपमान कर रहा था यह भान उसे बिल्कुल स्पष्ट रूप से हुआ।

भीमदेव और वीरा अपनी मेड़ी पर चढ गये। एकदम रुक कर शिवराशि खड़ा रहा। उसके मार्ग पर प्रकाश पड़ा। जहां तक चौला में उतरी हुई महामाया आराधित न हो वहां तक वह विपत्ति दूर होनेवाली न थी। उस विपत्ति को दूर करने में उसके तप की कसौटी थी। उसका निश्चय स्पष्ट हुआ। अब वह प्रभास में ही रहेगा।

तेरहवाँ प्रकरण

उमा शङ्कर

: १ :

पौष शुक्ला पूर्णिमा और बृहस्पतिवार। छः दिन से चौला का जीवन एक सुमधुर उल्लासपूर्ण नृत्यमय था। पल-पल में रुद्रावतार भीमदेव का रटन, उनका चिन्तन और उनकी सेवा करना और उनकी बाट जोहना, यह चौला के श्वास एवं प्राण हो रहे थे। भगवान् शङ्कर त्रिपुरसुन्दरी के विरुद्ध रण में चढ़ आये और वह स्वयं उमा उनकी सेवा में सन्नद्ध थी—इसी कल्पना में वह निमग्न थी। वह सुखी थी, जैसी वह कभी पहले न हुई और जैसी उसे कभी होने की आशा भी न थी।

परकोटे में एक ओसारा था और पहली मञ्ज़िल पर तीन बड़े कमरे थे। उनमें एक में महाराज भीमदेव ठहरे हुए थे। मध्य के कमरे में गुरुदेव विराजते थे और तीसरे में वह स्वयं और दो दूसरी सेविकाएं रहती थीं। कमरों के आसपास बड़ी खुली छतें थीं। पुरुष अधिकांश बाहर रहते थे, अतएव वह गुरुदेव की शाला से भीमदेव के आवास में दौड़ जाती थी, गाती और कूदती आती। कभी गङ्गा के साथ ज़ोर से हसकर बात करती और कभी भीमदेव से उसके बाल्यकाल की घटनाएं सुनती। सारे दिन भीमदेव क्या-क्या करते यह सुनकर वह प्रफुल्लित होती। किसी समय मन्दिर के शिखर पर एक ऊँची अटारी पर चढ़कर नव-निर्मित कोट, गम्भीर एवं विशाल खाई, प्राकार पर स्थित सैनिकों की की पंक्ति, हथियारबन्द घूमते हुए मनुष्यों का झुण्ड देखा करती, और गर्व के साथ नाचती रहती। दो-चार बार तो उसने गाव में अथवा कोट पर सेनापतियों के साथ घूमते हुए महाराजा को देखा। ऊंचे, कवच

पहने हुए, तेजस्वी, आदेश देते हुए—सबका मान और स्नेह का आकर्षण करते हुए जब वह उन्हें देखती तो उसका हृदय उसके वश में में न रहता। दिन में एक बार तो भगवान् के सामने वह नृत्य कर आती। अब वहां भीड़ जमा न होती थी, क्वचित् ही कोई बिल्वपत्र चढाने आता था। कई बार वह और उसके भगवान् दोनो ही होते थे। अतएव वह निःसङ्कोच भला-बुरा बोलती और गाती।

इस सुख की थालमें एक ही कील थी। वह ज़रा बाहर घूमती तो कहीं शिवराशि मिल जाता और कही हरदत्त अथवा ऐसा ही कोई साधु, तो वह उसे दूर से ससम्मान नमस्कार करता और वह तुरन्त वहां से भाग आती थी।

दिन-प्रतिदिन भीमदेव महाराज अधिकाधिक संलग्न रहने लगे। कहीं मध्यरात्रि में वे कठिनाई से अपने आवास पर आ पाते, नहाते और भोजन करते। कई बार वह परोसती और कुछ थोडी बाते करती। फिर गुरुदेव, राय, अथवा परमार या भरूच के चालुक्य आते और पिछली छत पर एकान्त में बैठते, घूमते और महत्वपूर्ण चर्चा करते। उस समय कमरे के एक अन्धेरे कोने मे वह खडी-खडी देखा करती। कुछ समय के लिए महाराज भीमदेव अपने कमरे में जाकर सोते, और वह अपनी माता के पास जाकर औंधे मुँह पडी रहती।

पौष शुक्ला चतुर्दशी बुधवार की रात को महाराज बडे विलम्बसे आये, भोजन किया और छत पर चले गये। चौला सदा के समान छत की ओट में घुसकर खडी थी। आज गुरुदेव अथवा अन्य कोई आनेवाला है, ऐसा प्रतीत न होता था—महाराज अकेले ही घूम रहे थे। नीचा सिर कर—लम्बे क़दम रखते हुए—किसी गंभीर विचार मे लगे हुए थे। चौला की इच्छा उनके साथ वार्तालाप करने की हुई, परन्तु उसका साहस न हुआ।

भीमदेव महाराज रुके और उन्होंने अपने आवास की ओर देखा। शीघ्रता के साथ ओट मे छिपती हुई चौला से कुछ आवाज़ हो गई।

भीमदेव महाराज ने तुरन्त अपनी तलवार पर हाथ रखा।

" कौन है ? "

" यह तो मैं हूँ " कहकर चौला बाहर आई।

" चौला ! यहा इस समय ? क्यों ? "

महाराज की आंखें चमक रही थीं। चन्द्रिका में अद्भुत मादकता प्रतीत होती थी। चौला का हृदय विदीर्ण-सा हो रहा था।

"महाराज !" उसका स्वर कांप रहा था, "अब आप सो जाइए। फिर कल सुबह उठना है न ! "

" चौला ! मेरे लिए सोना और जागना दोनो एक से हैं—"भीमदेव की आवाज़ मे खेद और श्रान्ति दोनों ही थे।

चौला ने चारो ओर देखा और वह निकट आई, "महाराज ! मैं तो एक दासी हूं—मै किस प्रकार आपका भार हलका कर सकती हूं ?"

भीमदेव के हृदय में बाढ आई। चन्द्रिका मे उन्होने अर्धमुद्रित अधर एवं आशापूर्ण नयनों की मोहक छटा पर दृष्टिपात किया। उन्होंने एक बार इसी देवाङ्गना को हाथ मे लिया था—यह सब स्मरण हुआ। उनके सिर का भार दूर हो गया और रगो मे एक साथ संगीत की असीम स्वर लहरी गूंज गई।

"चौला !" महाराज के स्वर मे प्रचण्ड उर्मियो की ध्वनि थी, "तुझे देखता हूँ और मेरा भार तेरे सान्निध्य में कम हो जाता है। जो तेरे वचन सत्य हों और मैं विजय प्राप्त कर लूं तो तुझे मेरा सदा का भार हलका करना पडेगा।"

शब्दों के अर्थ की अपेक्षा उनकी सूचकता ने चौला को विवश बनाया।

" महाराज ! तब तो आप मुझे भूल ही जायंगे।"

"तुझे भूल जाऊँगा ?" कहते हुए भीमदेव ने अपना प्रचण्ड पंजा चौला के कन्धे पर रखा और उसके अङ्ग-अङ्ग से ज्वालाएं उठीं।

"नहीं, कदापि नहीं" कहकर भीमदेव ने उसे हृदय से लगाया

और चुम्बन किया। आश्लेष एवं चुम्बन कहां तक पहुंचा इसकी सुधि दोनों में से किसी को न रही। जब अलग हुए तब सृष्टि ने अनुपम लावण्य धारण किया था। केवल इतना ही उन्हें प्रतीत हुआ कि दोनों ही क्षोभ से व्याकुल थे अतएव कुछ काल तक कोई भी न बोला। चौला तो उस समय ऐसी अपार्थिव प्रतीत होती थी कि मानो वह चन्द्र-किरणों से ही निर्मित आकृति हो।

"महाराज!" उसने कहा 'कुछ नई विपत्ति आई है? इतने गम्भीर क्यों थे?"

"चौला! आज समाचार मिला है कि वह अमीर लूटता, गांवों को जलाता, स्त्रियों और विप्रों का दमन करता, गायों की हत्या करता चला आ रहा है। मेरा गुजरात श्मशान बनता जा रहा है। और मैं यहां बैठा-बैठा उसे बचाने का कोई भी प्रयत्न नहीं कर सकता।"

"वह यहां कब तक आ जायगा?"

"कल या परसों।"

"ठीक है," चौला ने कहा, "तो इस पीडा का शीघ्र ही अन्त किया जाय।"

"चौला! अपना भोलानाथ बैठा है न?" और भीम का वदन फिर कुछ खिन्न हुआ।

"महाराज! अब आप सो जाइये—बहुत समय बीत गया। यह अवसर आपके लिए अपनी शक्ति-संग्रह करने का है।"

"सच है" कहकर भीमदेव वहां से चल पडे। जाते-जाते उन्होंने फिर चौला की ओर दृष्टिपात किया। फिर लौटने को जी चाहा, परन्तु पैर न उठे। और जैसी आई थी वैसी ही किरण माला के समान, चौला अदृश्य हो गई। वीरा चावडा दोनों से तिरोहित रहकर चुपचाप यह सब देख रहा था और वह अपने मन में खूब हँसा।

: २ :

भीमदेव महाराज सोने के लिए गये। परन्तु उन्हें नींद न आई।

श्रम के मारे आंखें मींच तो गईं परन्तु मस्तिष्क में गढ़ के कोट ऊँचे होने लगे। बड़े-बड़े राक्षस गो-ब्राह्मणों की हत्या करते दिखाई दिए और वे स्वयं कहीं बंधे हुए, अकुलाते हुए पड़े नज़र आये। सब वातावरण जलता-सा प्रतीत होता था। चारों ओर विनाश की सीमा बढ़ती जाती थी और स्वयं वे हाथ या पैर भी न हिला सकते थे। उनकी दृष्टि के सामने किरणों से निर्मित एक बाला तेजस्वी नयनों से...उपालम्भ देती थी, अनन्त घोड़ों की पक्ति दौड़ रही थी, अगणित बाणासनों से विद्युत् के समान तीर छूट रहे थे...परन्तु वे स्वयं वहीं-के-वहीं थे .. और ज्योत्स्नामयी बालिका उलाहना दे रही थी। वे व्याकुल हो, चौंक कर उठे–थोड़ी देर तक मस्तिष्क को शान्त किया, उस चुम्बन का अवि-स्मृत आस्वाद का पुनः अनुभव किया, और करवट बदल कर फिर सो गए।

स्वप्न का क्रम फिर भी न टूटा। वह बाला नृत्य कर रही थी-- वे स्वयं उसके आसपास दौड़ रहे थे और चारों ओर हाथी ऊंची पूंछ करके दौड़ते थे। गुरुदेव मृदङ्ग बजा रहे थे। नाचते-नाचते बालिका दौड़ गई–वे पीछे दौड़े। सामने एक कलमुँहा मिला। इतने ही मे अन्धेरी रात में चन्द्रमा का उदय हुआ। चाँदनी छा गई और कलमुँहा नदी में जा गिरा—और उन्होंने उस बाला को हाथ में उठा लिया— सामने गुरुदेव मृदङ्ग बजा रहे थे और नाचते थे......गिड गिड धुम . . ...।

उनकी आँखे खुलीं। सेना को जगाने वाले नगाड़े बजने लगे। वे तुरन्त उठ बैठे और उन्होंने अपने हाथ बढ़ाये। वे प्रतिदिन जब उठते तब उनके पैरों के पास वीरा उनके वस्त्र एवं कवच लेकर तैयार रहता। आज भी प्रतिदिन की तरह जहां वीरा के हाथ हुआ करते वहां उन्होंने अपने हाथ फैलाए परन्तु उनके हाथ कुछ भी न आया। "वीरा!" उन्होंने पुकारा—किसी बहुत नीचे खड़े हुए मनुष्य ने हाथ उठाकर कपड़े ऊँचे किए। भीमदेव की समझ मे न आया। उन्होने हाथ नीचे किये,

वीरा कहां गया ? अथवा क्या यह स्वप्न तो नहीं ? उन्होंने अन्धेरे में हाथ नीचे किये। कपड़े लिये और कपड़े लेकर साथ खड़े हुए पुरुष का हाथ पकड़ा'''अवश्य ही वह स्वप्न था। हाथ कमल नाल के सदृश छोटा और सुहावना था। जैसे रुपहली घंटी का निनाद हो ऐसा सुमधुर हास्य घर में फैला हुआ था। ऊर्मियों का सागर उछला। महाराज ने दोनों हाथ पकड़ कर खींचे। और उनके विशाल वक्ष पर चौला लिपट गई। "मेरे शम्भु! मेरे नाथ!" उसके मुख से मन्द-मन्द स्वर निकल रहा था। कोने में खड़े हुए वीरा का जैसे-तैसे रोका हुआ हास्य फूट निकला, "हा, हा, हा'''" और वह क्षण भर के लिए स्तब्ध होगया।

: ३ :

डङ्के बजे और नूतन उत्साह से उछलते हुए महाराज बाहर निकले। उनकी आँखे आज ऐसी चमकती थीं जैसी पहले कभी न चमकीं, और उनकी भुजाओं मे अमित बल उछल रहा था। उन्हें ज़रा देर होगई थी। कोट पर गुरुदेव, राय रत्नादित्य, परमार, चालुक्य, कमा लाखाणी, मन्त्रिगण और सब सेनापति खड़े थे। एक छलांग मारकर महाराज भी कोटपर जा पहुँचे। चारों ओर अन्धेरे में क्षितिज पर लाल-लाल ज्वाला दीख रही थी और सिन्धूर के समान सुमेर गगन पर चढ़ा आरहा था। अमीर के पदचिन्ह देखकर महाराज की छाती उछल गई। "आया, आया, आगया" महाराज ने हर्ष से कहा। राय! चलो सैन्य को सुसज्जित कर दो।"

पूर्व आकाश मे कुछ हलचल नज़र आई। "भीमदेव! यह क्या ?" गुरुदेव ने पूछा। जगलो में से एक-एक दो-दो धब्बे—मानों काली चींटियां आरही हों ऐसे दौड़ते हुए प्रकाश की ओर आते दिखाई देते थे।

धब्बों की संख्या बढ़ी—वे अनेक थे—सौ हुए, दो सौ हुए और वे अधिक—और अधिक होते ही गए। कोई घोड़े पर आते, तो कोई गाड़ी में। वे पास आये और उनके आक्रन्द को उषःकालीन पवन वहां ले आया।

"देलवाडे के निवासी भाग कर आते हुए मालूम होते हैं"—राय ने कहा। जैसे जल बिन्दु टपकते हों उस तरह मनुष्य जंगल से आ रहे थे।

"भोलानाथ! जो तू करे सो सही" गुरुदेव ने अस्पष्ट रूप से कहा।

"स्त्रियां तथा बालक भी हैं" विमल मन्त्री ने कहा।

"अरे! वे तो फिसल ही गए" गुरुदेव की आवाज आई "शिव, शिव, शिव।"

उजाला होता गया और आक्रन्दन करते हुए नर-नारियां पास आए। कितने ही तो आधे रास्ते ही मे गिर पडे।

"देलवाडा गिर गया"—भीमदेव ने होंठ-पर-होंठ दबाकर कहा। उनकी आवाज गंभीर थी और उनकी आंखे आते हुए मनुष्यों पर और साथ-साथ क्षितिज पर घूम रही थीं।

"विमल!" महाराज ने कहा, "दरिया की ओर के दरवाज़े खुलवाकर जितनी नौकाए हों उतनी खाई मे ले जाओ और जो जीते-जी किनारे आ सकें उन्हे अन्दर ले आओ।"

"चालुक्य राज!" वृद्धा कमा लाखाणी ने सुझाया "इन सबको अन्दर लेकर क्या करोगे? हमारे पास दो महीने शान्ति से कट जायं इतना भी अनाज नही है।"

"लाखाणी! दो महीने महमूद टिके तो मरा ही समझना। विमल! इस समय कितने वाहन हैं?"

"तीन हैं, महाराज!"

"बालकों और स्त्रियों को तो उनमें बिठाकर विदा करो।"

"जैसी आज्ञा"—कहकर विमल चला गया।

राय ने कमर पर बांधा हुआ शङ्ख लेकर फूँका। चारो ओर शङ्ख और भेरी का नाद होने लगा। डंकों और नगाडो ने युद्ध निमन्त्रण दिया। सूर्योदय से पूर्व सारा प्रभास गढ युद्ध के लिये सुसज्जित हो गया। सूर्य जब निकला तब गढ पर सात हज़ार बाणावलि तीर तानकर तैयार

खड़े थे । बिल्कुल ऊपर तक ऊँटनियों को भी कोट पर चढ़ाया था जिस पर डंका निशान सुशोभित हो रहे थे । सेनापति सुन्दर घोड़ों पर सवार हो ऊँचे बड़े प्राकार पर खड़े हो क्षितिज की ओर निरीक्षण कर रहे थे ।

गङ्गा और चौला मन्दिर के शिखर की अटारियो पर चढ गईं थीं । चारो ओर सैनिक, शस्त्र एवं पताकाओं से सुशोभित गढ़ देखकर चौला का हृदय गर्व से उछल रहा था । "माँ ! देख, देख, कैसा सुन्दर गढ—आठ दिन में तो मानों यहां जादू कर दिया है ।"

ऊँची-से-ऊँची चोटी पर गुरुदेव राजन्य वर्ग के स थ खड़े थे और वे भी भीमदेव को इसी प्रकार धन्यवाद दे रहे थे । प्रभास गढ दुर्भेद्य और सैन्य की शक्ति से सजीव और गौरवशाली हो उदीयमान सविता के प्रकाश मे जगमगा रहा था । उसके ऊपर त्रिभुवन पति भगवान् की भगवी ध्वजा जगत् के कल्याण की परम भावना के समान फहरा रही थी ।

महाराज ने एक गहरी साँस ली, और अपनी शक्ति के विश्वास में मस्त हो उन्होंने अपना खड्ग खींचकर जय घोषणा की, "जय सोमनाथ" । साथ-ही-साथ तीस हज़ार योद्धाओं ने प्रतिशब्द किया, "जय सोमनाथ ।" एक दम महाराज भीमदेव ने आँखें खोलकर कहा "राय ! देखो, देखो" और राय का हाथ अपनी ओर खींचा । दरिया के किनारे-किनारे घुड़सवारों की एक सेना कोट की ओर आरही थी ।

"परन्तु इधर तो देखो,"—परमार ने ध्यान आकर्षित किया । दूसरी ओर भी किनारे-किनारे ऐसी ही दूसरी सेना आरही थी ।

"नदी की ओर का हमारा मार्ग ये लोग बन्द कर देना चाहते हैं ?"

एक और किनारे की ओर आने वाली सेना मानो यन्त्र हों इस तरह आगे बढ रही थी । प्रभास गढ की खाई के उस पार श्मशान था और वहां कालमुखों का आवास था । गुरुदेव ने उन्हें गढ मे आने के

लिए अथवा खम्भात चले जाने के लिए बहुत कहा-सुना था। परन्तु अपने भयानक रहन-सहन मे ही मस्त उन कालमुखों ने गुरुदेव की बात हँसी मे टाल दी। कभी भी किसी युद्ध मे किसीने उन्हें स्पर्श भी न किया था। किसी का साहस भी न था, परन्तु महमूद के भङ्कर घुडसवारों को इह लोक एवं परलोक की परवाह न थी। माली जिस प्रकार घास काटता है उसी तरह उन्होंने कालमुखों को काट डाला। गुरुदेव को उस सम्प्रदाय के प्रति तनिक भी सहानुभूति न थी। उन्होंने निःश्वास छोडते हुए कहा, "भोलानाथ! तू करे सो सही।"

इतने ही मे महाराज ने देलवाडा की ओर नज़र डाली और स्तब्ध हो गए। उस रास्ते घुडसवारों का विशाल सैन्य हाथ मे तीर-कमान ले बाहर निकल रहा था।

"राय, परमार! आप दरिया के रास्ते को सम्हालो—मैं इस सैन्य को देखता हूं।"

राय और परमार अपने-अपने स्थान पर चले गए। देलवाडे के जंगल की राह से मानो एक बडी बाढ आ रही हो ऐसी महमूद की सेना निकली। घुडसवार पूरे जोश के साथ चले आ रहे थे—पांच नहीं, पचास नहीं, परन्तु हज़ारों—अभेद्य व्यूह मे रचे हुए चर्म के भयावह परिधान पहने हुए और चमकते हुए शिरस्त्राण धारण किये हुए—लम्बे लम्बे तीरों से निशाना साधते हुए—सुसज्जित। उनके पीछे-पीछे सैकड़ो हाथी आये जो ऐसे प्रतीत होते थे कि साथ-ही-साथ चलते हुए जङ्गम गढ एवं सुरक्षित व्यूह ही हों। फिर बडे-बडे यन्त्र निकले जिन्हें भीमदेव ने न कभी देखा था और न जिनकी उन्होंने कल्पना ही की थी।

"महाराज!" विमल ने धीरे से कहा, "सामन्त की बात सच थी, यह सैन्य न था—यह तो सारा देश का देश ही उलट पडा था।"

"परन्तु भगवान् तो अपने साथ हैं न?"

"भीमदेव बेटा!" गुरुदेव ने महाराज के कंधे पर स्नेहपूर्वक हाथ रखते हुए कहा, "देवों को भी दुर्लभ युद्ध का प्रसङ्ग भोलानाथ ने तुझे

आज दिया है।"

"और गुरुदेव! देवों ने भी कभी न देखा हो ऐसा युद्ध मैं आपको दिखा दूंगा। आप देखा तो करें!" महमूद की सेना जङ्गल से बाहर निकली। प्रभास के आसपास प्रलय के समान लिपट गई और गगन को फाड़ डाले ऐसी प्रचण्ड गर्जना हुई "अल्ला हो अकबर।"

"गुरुदेव! आप खडे रहिये, मैं जाता हूँ"—ऐसा कहकर भीमदेव लाखाणी और विमल को साथ लेकर शिखर से नीचे उतरे और मुख्य दरवाज़े के कगारे पर दौड़ते हुए गये। खाई के दूसरी ओर घुडसवारों की सेना थोडी दूर पर खडी थी। सेना का व्यूह जितना अद्भुत था उतना ही अपूर्व भी था। तीनों तरफ टुकड़ियां पुतले की तरह खड़ी थीं। सब के हाथ में तने हुए तीर थे, परन्तु किसी ने छोड़े न थे। नदी के सिवा तीनों तरफ़ से प्रभास घिर चुका था।

पुनः गर्जना हुई, 'अल्ला-हो-अक़बर'। भीमदेव और उसकी सेना ने प्रतिकार किया, "जय सोमनाथ!" महमूद की विशाल सेना के मध्य राजपूत वीरों से सज्जित प्रभास कालियनाग के मध्य स्थित श्रीकृष्ण के समान हँसता-खेलता खडा था।

भीमदेव महाराज छत्र एवं चामर से सुशोभित मुख्य प्राकार पर खडे-खडे इस सारे घटनाचक्र को देख रहे थे। इतने ही में विपक्षी सेना के व्यूह के मध्य में जो छोटा सा मैदान था वहां एक बडा हरा निशान स्थित होने लगा। हाथियों की पंक्ति के अनन्तर हज़ारों मनुष्य पडाव डालकर दौड़ादौड मचाते नज़र आये। हाथियों के बीच में से पांच सौ घुड़सवारों की टुकड़ी बाहर निकली। उनकी व्यूह रचना तो निःसन्देह अद्भुत थी। तीनों ओर तीरन्दाजों की पंक्ति थी। उसके अन्दर नंगी तलवार वाले घुडसवारों की कतार थी। और इन त्रिविध पंक्तियों से सुरक्षित स्थान पर लगभग पन्द्रह घुडसवार आ रहे थे। उन सब में प्रमुख बड़ी हरी पगड़ी पहने हुए एक प्रचण्ड घुडसवार बड़े काले घोडे पर चढकर आ रहा था। सामन्त के द्वारा दिया हुआ वर्णन अचूक

था—यही गज़नी का सुल्तान, अमीर महमूद।

महाराज ने दांत पीसे। महमूद ने अपना धनुष निकाल कर ज़मीन पर टिकाया और तीर का निशाना जमाया। गुजरात में अप्रतिम गिने जाने वाले धनुर्धारी के हाथ अधीर होने लगे।

गज़नवी प्रभास का माप लेते हुए आगे बढा और उसकी सेना ने गर्जना की "अल्ला हो अकबर"। राजपूतों ने प्रत्युत्तर दिया "जय सोमनाथ" और महाराज ने मूंछ पर ताव चढ़ाया।

महमूद बडी देर तक प्रभास की ओर देखता रहा और तदनन्तर उसने अचूक तीरन्दाज़ों को तीर छोडने का आदेश दिया। एक का तीर खाई मे गिरा और दूसरे का तीर वहां तक पहुंच न सका। राजपूत सेना खिलखिला कर हँस पडी। अधीर मसूद घोडा कुदाकर आगे बढा और उसने तीर ताना। महाराज का भी तीर तैयार था। पलक भर में ही उन्होंने कसकर तीर छोडा। दोनों तीर एक दूसरे को पार कर आगे बढे। मसूद का तीर आया और परकोट से टकरा कर पीछे हटा। महाराज का तीर, पवन का वेग धारण कर मसूद के पेट में घुसता हुआ घोडे के पेट में घुस गया। घोडा चक्कर खाकर गिर पडा और सवार धूल में लोटने लगा। राजपूत सेना ने भयङ्कर हर्षनाद किया। 'जय सोमनाथ' की घोषणा से गगन गूंज उठा। महाराज को देख कितने ही राजपूतों ने तीर छोडे परन्तु किसी का भी तीर वहां तक पहुंच न पाया।

मसूद ने पट्टी बांधी और महमूद के पास हँसता-हँसता रिसाले के साथ लश्कर के पीछे-पीछे चला गया। आज युद्ध करने की महमूद की इच्छा न थी। उसकी सेना पुतली की मानिन्द कुछ देर खड़ी रही, और फिर आदेश प्राप्त होते ही सवार अपने-अपने घोडों से उतरे और अपनी-अपनी टुकडियों का पडाव डाल, खाने की व्यवस्था करने लगे। प्रभास में तो विजय के डंके बजते ही रहे। पहला वार राणा ने किया इस शुभ शकुन से सब प्रसन्न हो रहे थे। दोपहर को महमूद की

सेना महीनों की तैयारी में लगी हो ऐसा मालूम होने लगा। चारों ओर से मिट्टी लाकर पहली पंक्ति के घुड़सवारों के सामने तीरन्दाज़ों की रक्षा के हेतु टीले बनाए जाने लगे। यह प्रयोग सारा दिन चलता रहा और राजपूत सैनिकों ने कोट पर खड़े-खड़े कई एक उपहास किये।

: ४ :

हरदत्त पागल जैसा सारे गांव मे चक्कर काटता रहा। पचास वर्ष में अभी ही त्रिपुरसुन्दरी का मन्दिर बन्द हुआ था। उनका दर्शन उसे अलभ्य हुआ और उससे पूजा करने का अधिकार छीन लिया गया था। साथ-ही-साथ मांस और मदिरा का प्रसाद भी बन्द हो गया था। मदिरा की सुवाससे भभकते नृत्य करने वाले नर-नारियों के अङ्गों से मादक बने हुए महोत्सव भी बन्द हो गए थे। जिस स्थान पर वह रात को पूजा करता था वहां अब गुरुदेव नित्य स्वयं जाकर यथा कथञ्चित पूजा कर आते थे और उसकी महामाया का मन्दिर कारावास के समान बन्द और श्मशान के समान शून्य पड़ा था। उसका दैनिक कर्तव्य नष्ट हुआ अतएव वह सारे दिन दांत पीसता हुआ, चिमटा बजाता हुआ घूमा करता था।

वहां कुछ मन्दिरों का कब्जा सैनिकों ने ले लिया था—यह देख उस की आंखों में खून बरसने लगा था। इस पुण्यधाम मे ऐसा भ्रष्टाचार उसने आज ही देखा था। महमूद का आना उसे बिल्कुल स्वाभाविक ही लगा। उसका ज्ञान परिमित था और उसकी धारणा मे महमूद तो केवल विधिभ्रष्ट गुरु का विनाश करने के हेतु आए हुए किसी परम दैवी साधन का नाममात्र था। कौन जीते और कौन हारे इसको उसे परवाह न थी। उसे तो अपना मन्दिर खुलवाना था।

ऐसे विचार करते हुए वह गढ में चक्कर काटता और वहीं उसे उस जैसे प्रसाद के बिना, और यात्रियों से भेंट न मिलनेसे असन्तुष्ट कुछ और साधु भी मिले। समदुःखियों ने एक दूसरे के सामने अपना दिल खोला। कहां गई पूजा, कहां गया प्रसाद, और कहां गई उनको निर्विघ्न
इस सारी विपत्ति के लिए गुरु ही उत्तरदायी थे ऐसा उनका नि

और भी गुरु के अनेक पाप होंगे परन्तु उन सबमे महामाया के मन्दिर को बन्द करने का पाप बडे-से-बडा था, यह उन्हे स्पष्ट प्रतीत होता था।

गुरुदेव अपने आवास पर विराजमान थे। सामने हरदत्त और कुछ साधु हाथ जोडे बैठे थे, परन्तु उनके मुख और स्वर से अविनय की गन्ध आती थी।

"गुरुदेव! महामाया का मन्दिर जबतक न खुलेगा तब तक यह विपत्ति दूर होनेवाली नहीं। अनादि काल से यह मन्दिर किसी भी दिन बन्द न रहा" हरदत्त नें हाथ मे ज़ोर से चिमटा पकड कर कहा। उसकी आखे विकराल जानवर की सी थीं।

"आजकल मैं स्वयं पूजा करता हूं। मन्दिर बन्द नहीं है।" गुरुदेव ने कहा।

"परन्तु हम भक्तो को भी तो महामाया के दर्शन कभी बन्द न हुए थे" हरदत्त ने कहा।

"तुम्हारे अपने कर्मों के कारण ही तुम्हे दर्शन दुर्लभ हो गए।"

"गुरुदेव!", धमकी से भरे हुए स्वर से हरदत्त ने कहा, "आज पचास वर्ष हुए मेरे कर्तव्यो पर किसीने आपत्ति नहीं उठाई, आज ही आपने ऐसा किया और महमूद चढ़कर आया, विधि खण्डित हो यह बात महामाया कभी नही सह सकतीं।"

"हरदत्त! भगवान् लकुलेश की कृपा से मुझे भी विधियो का ज्ञान है, एक भी विधि खण्डित नहीं हुई है।" गङ्गसर्वज्ञ ने निश्चलतापूर्वक कहा।

"तो फिर महमूद क्योंकर बढ आया?" हरदत्त ने प्रश्न किया।

"देवता की पूजा के नाम पर पुण्यधामो मे अत्याचार होने लगा—इससे।"

"तो फिर आप मन्दिर नही खोलेंगे?"—एक साधु ने पूछा।

"नही। यदि मेरे कृत्यों के कारण दैव कोप हुआ हो तो मै भगवान् से प्रार्थना करता हूं कि वह केवल मुझ पर ही गिरे।"

"परन्तु यह तो हम सब पर हो रहा है" सर्वज्ञ की शान्ति से हरदत्त ने किचकिचा कर कहा। उसके स्वरूप से मालूम होता था कि शायद वह गुरु जी के साथ कुछ कर गुजरे।

"तो यह सब मेरे कृत्य से नही होता" गुरुदेव ने शान्ति के साथ कहा "मैंने भी आज वर्षों से पाशुपत संप्रदाय का गुरुपद भोगा है। अभी तक मै अपने धर्म से च्युत नही हुआ और इस परीक्षा के समय भी होनेवाला नहीं हूं। जब तक महमूद को महाराज मार न भगावे तब तक महामाया का मन्दिर बन्द रहेगा।"

"तो फिर हम चले जाते हैं" हरदत्त ने कहा। उसका क्रोध इतना बढता गया कि वहां से चला जाना ही उसने योग्य समझा।

"हां, तुम जा सकते हो" गुरुदेव ने कहा और समस्त साधु उनकी ओर क्रोधपूर्ण दृष्टिपात करते हुए चले गये।

"महाराज ने जब इन सब को भेज देने का आग्रह किया तब मैं अनुकूल हो जाता तो कही ठीक होता। अब तो भोलानाथ जो करें सो सही—" गुरुदेव अस्पष्ट स्वर से बोले और ध्यान करने लगे।

हरदत्त तथा अन्य साधु गुरुदेव के आवास से नीचे उतर कर ओसारे के पास जहां शिवराशि पञ्चाग्नि में बैठे तपश्चर्या कर रहे थे, वहा गये। शिवराशि को प्रतीत होता रहता था कि उनकी तपश्चर्या जितनी चाहिए उतनी उग्र न थी और उसी कारण महमूद ने चढाई की थी। तप में जितनी कमी हो उतनी पूरी करने के हेतु उन्होंने उस विधि का आरम्भ किया था। यों बैठे-बैठे शिवराशि सर्वकल्याण के दाता शम्भु और सर्वशक्ति की मूल पार्वती का ध्यान कर रहे थे।

वे तब तक ध्यान निमग्न रहे जब तक हरदत्त और अन्य साधु प्रशंसा के कारण मुग्ध हो उस तपस्वी की ओर देखते रहे। उन साधुओं को गुरुदेव का सौम्य स्वभाव, विशाल बुद्धि और उदार चरित समझ में नही आता था; और राशि जी में सामान्य साधु के विशेष गुण होने के कारण वे उन्हें अपने ही हों ऐसे लगते थे। तप और विधि और

लकुलेश मत की छोटी-छोटी प्रणालियां उन सभी को प्रिय थीं। उनकी अपेक्षाएं और व्यथाएं वे खूब समझते थे—इसी कारण वे अपनी शिकायतें उनके पास ले जाने में हिचकते न थे। गुरुदेव हिम से आच्छादित किसी दुष्प्राप्य शिखर के समान प्रतीत होते थे और राशि जी सुन्दर वृक्षों से विराजित, छाया देता हुआ कोई पुनीत गिरिश्रृङ्ग हो ऐसे लगते थे।

राशि जी समाधि से जागृत हुए और पञ्चाग्निमण्डल से बाहर आकर उन्होंने हरदत्त एवं अन्य साधुओं का सत्कार किया। "राशि जी! महामाया का मन्दिर यदि न खुलेगा तो हम प्राण त्याग देंगे। हरदत्त ने क्रोधित होकर कहा।

"गुरु की आज्ञा हमारे लिए सदैव शिरसावन्द्य है।"

"तो क्या हम महामाया के दर्शन के बिना तिलमिला कर मर जायें?" हरदत्त ने कहा।

"हरदत्त! तेरी दृष्टि स्थूल है। आध्यात्मिक दृष्टि से देखते हुए मुझे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिस दिनसे मन्दिर बन्द हुआ उसी दिन से महामाया अपने मन्दिर को छोड़कर सारे परकोटे में विचर रही है। जिसे भक्ति उसे दृष्टि है और उसीको महामाया मनुष्य के देह में दिखलाई पड़ती हैं।"

"किस में? चौला में?" हरदत्त ने मन्द स्वर से कहा।

"किसी की शक्ति नहीं कि महामाया को दीवारों के अन्दर बन्द कर सके" शिवराशि ने सरल उत्तर नहीं दिया।

"तो फिर यह महमूद कैसे आया?"

"इसी प्रश्न को हल करने के लिए मैं आज कई दिन से यह तपश्चर्या कर रहा हूं। मुझे इसका कारण स्पष्ट रीति से विदित है।"

"वह क्या?"

"वह गूढ है और उसके उपाय की मैं योजना भी कर रहा हूं" शिवराशि ने कहा।

"हमें भी तो कहो—हम भी उपाय करेंगे ।" एक साधु बोला ।

"समय आने पर कहूंगा ।"

"नही, कह दीजिये" हरदत्त बोला, "नहीं तो हम त्रिपुरसुन्दरी की देहली पर धरना देकर बैठ जायंगे ।"

"इतनी भी मुझ में श्रद्धा नहीं ? तुम ही महामाया के भक्त हो और मैं नहीं ?" शिवराशि ने कहा ।

"आप गुरुभक्ति में लीन हो"—हरदत्त ने कहा ।

"मै गुरुभक्त हूं इसी कारण मैं सविशेष महामाया का भक्त हूं ।"

"और आपको विश्वास है कि अभी भी उसमें महामाया ने वास किया है ?" हरदत्त ने पूछा ।

"हां ! यदि तुम्हें संशय हो तो रात्रि में जब वह विलम्ब से अकेली ही नृत्य करके भगवान् को रिझाती है तब जाकर देखो ।"

"वह नृत्य करती है ?"

"भीमदेव महाराज की भी शक्ति नही कि महामाया को रोक सके ।"

"स्पष्ट कहो राशि जी ! हमें आपका ही आधार है यह पुण्यधाम भ्रष्ट होने से किस तरह बचाया जाय, यह महमूद किस तरह पीछे हटाया जाय ? आप जितना कहते हो उससे कही अधिक आपको ज्ञात है ।" एक साधु ने अभ्यर्थनापूर्वक कहा ।

"इसीलिए कह रहा हू कि मुझमें श्रद्धा रखो ।"

"आप हरदत्त से कहें—उससे हमें सन्तोष होगा । ऐसा कौनसा उपाय है जो हम जानते नहीं और जो आप हमें सूचित नहीं कर सकते"—उस साधु ने हाथ जोडे ।

"ठीक ! मैं हरदत्त से कहूंगा—तुम सब जाकर स्वस्थता से बैठो । महामाया सब ठीक कर लेगी" शिवराशि ने कहा । और हरदत्त के सिवा सब साधु चले गये ।

"क्या उपाय है ?" हरदत्त ने कहा ।

"उस दिन की अधूरी पूजा पूरी करनी चाहिए"—धीमे स्वर से

शिवराशि ने हरदत्त के कानों में कहा। दोनों की आंखों में तेज छिटकने लगा।

: ५ :

भीमदेव महाराज प्रभूत आनन्द में थे। उन्होंने पहला वार किया था। उनकी तीरन्दाजी उनकी महत्ता थी और दुश्मन की सेना आकुलता में व्यस्त थी। जो महमूद की सेना ठण्डे पेट से घेरा डाले तो महीनों तक वे उसे थकायेंगे ऐसी बात थी, जो वह हमला करे तो उसके पास पहुंच उसे मार भगाने के पुष्कल साधन उनके पास थे। ऐसे विचार करते हुए वे कोट के ऊपर त्वरित दृष्टि चारों ओर डालते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। केवल वीरा ही उनके पीछे आरहा था।

वे नदी की ओर के दरवाजे पर गये तब राव कमा एक आंख मे नदी की ओर ध्यानपूर्वक देख रहा था। उसका मुख बहुत गम्भीर था।

"कहो राव! क्या देख रहे हो?" महाराज ने पूछा।

"वह देखा आप ने?"

"क्या?" क्षितिज पर दृष्टि स्थिर करते हुए महाराज ने पूछा "वह काले धब्बे के समान कुछ दिखाई दे रहा है, सो?"

"हां! लाखाणी ने कहा,"जहाज़ हैं।"

"मुझे तो ऐसा मालूम नहीं होता।"

"मैं तो कच्छी हूं—बालपन से ही समुद्र में घूमता हूं। जहाज इस ओर आरहे हैं" यों कह उसने महाराज को दूर खींचा "देखिये, इस ओर आये तो हम मर गये।"

"क्यों?"

"महमूद ने किनारे पर दोनों ओर घुडसवार रखे हैं और यदि हमारा वाहन उधर उनके कब्जे में चला गया तो नदी का रास्ता बन्द हो जानेवाला है।" फिर से कमा ने क्षितिज की ओर देखा "लगभग आठ जहाज़ होंगे। एक उपाय है" कमा की एक आंख मिचमिचाई। "वहां जाकर जहाज़ रोकने चाहिएं।"

"उससे क्या होगा ?" भीमदेव ने पूछा "वहा हमें कुछ अच्छे योद्धा भेजने चाहिएं जो आवश्यकता होने पर नौकाओं मे बैठकर लड़ सके।"

कमा खिलखिला कर हँस पड़ा। "महाराज यह तो आधे योजन तक डुबकी मारने वालो का काम है—आपकी समझ मे न आयगा।" अच्छे तैराक के अभिमान से कमा ने कहा।

"कैसे ?"

"मेरी सेना में कुछ ऐसे हैं जो मिश्र से चीन तक यात्रा कर आये हैं—उन्हें मैं तैयार करता हूं।"

"परन्तु वे नदी पर रहकर लड़ सकेंगे ?"

"जहाज़ पर रहकर युद्ध करना तो हमारे बापदादा का काम है" कमा ने कहा।

"तो फिर उनका नायक कौन होगा, मेरे पास एक-दो खम्भाती हैं—परन्तु उनमे जान नही।"

कमा ने अपनी एक आँख मींच ली। "मेरा लड़का यहां होता तो केवल वह ही इस कामको ठीक बनाता। कुछ हर्ज़ नही, मैंने पिछली दिवाली पर ही बहत्तर पूरे किए है—मैं कौन बूढा हो गया हूँ"—कहकर बत्तीस ही दांत दिखाते हुए वह हंस पड़ा। "आधा योजन तो आँख मींचे इतने में ही पार कर जाऊँगा।"

"धन्य है, राव ! धन्य है !"

"मैं आदमियो को ढूंढ निकालता हूं। अन्धेरा होते ही दो हज़ार तीर कमान यहां रखना। महमूद तीर भूमि पर से छोड़े तो हमारे पास नहीं पहुंच सकते, परन्तु घोडो को पानी में उतार कर वार करें तो हमारे लिए भारी पडे—उस समय बचाना आपका काम होगा।"

"निर्भय रहो, राव ! मैं अभी तैयारी करवाता हूं।"

और विशेष हाहाकार किये बिना भीमदेव महाराज ने दरियाई दरवाज़े पर दो हज़ार चुने हुए धनुर्धारी एकत्रित किये। सूर्यास्त हुआ,

अन्धेरा छाने लगा और अमीर की सेना के पडाव मे हज़ारो मशालें जलने लगी। इधर महाराज की आज्ञा से मशाले देर से जलने वाली थी। अन्धेरा होने पर वीर कमा लाखाणी तीन सौ अडिग तैराको को लेकर प्रभास के समुद्र की ओर दरवाजे के सामने जा खडा हुआ। भीमदेव और विमल मन्त्री भी आ पहुचे। महाराज और राव स्नेहपूर्वक मिले, विमल ने खिडकी कुछ खोली।

वीर कमा तीर कमान और तूणीर को कन्धे पर दुपट्टे से बाधकर, कमर मे कटार खोसकर, कच्छ बाध, सोमनाथ का स्मरण कर खिडकी के द्वारा पानी मे खिसका। ज़रा भी आवाज़ नही हुई, ऊपर पानी का बुदबुद भी न उठा। कुछ देर तक सब कान लगा कर सुनते रहे परन्तु तनिक भी आवाज़ न सुनाई दी। पाव घडी के बाद किसी पक्षी के बोलने जैसी आवाज हुई। तुरन्त ही दूसरा कच्छी योद्धा उसी तरह पानी मे घुसा और अदृश्य हो गया। इस तरह धीरे-धीरे तीन सौ बहादुर वीरो ने डुबकी लगाई और वे अपार सागर मे अदृश्य हो गए। काम ऐसी युक्ति के साथ होता था कि खाई के उस पार समीप ही स्थित अमीर के चौकीदारो को संशय भी न हो सका।

लगभग मध्य रात्रि हो गई तब अन्तिम कच्छी वीर ने विदा ली, और महाराज की आज्ञा होते ही कोट पर के सैनिको ने स्थान-स्थान पर मशाले जलाईं। कमा ने भयङ्कर जोखम सिर पर ले ली थी, अन्धेरे मे आधे योजन या एक योजन तैरकर दूरस्थ जहाज पर जा पहुँचना खेल न था, वे जहाज भी खम्भात के थे या नहीं—और यह भी पता न था कि वे किसी अपरिचित व्यापारी के थे या दुश्मन के थे। बडी देर तक महाराज अधीरता के साथ दरिया की ओर देखते रहे। घडी-पर-घडी बीतने लगी। कई बार तो उन्होने आशा भी छोड दी। आधी रात बीत गई पर कमा का नाम या निशान भी नही मिलता था। अन्त में खिन्न हृदय के साथ उन्होने अपने आवास पर जाने का निश्चय किया। तभी दूर क्षितिज पर, दरिया के बीच अनेक मशालें ऊंची नीची

हुई। महाराज हर्ष से उछल पड़े "शाबाश मेरे कमा, शाबाश।"

जलती हुई मशालों को देखकर नदी की ओर चौकी करते हुए महमूद के सैनिक एक दम तेज़ हो गए। रणसिंघे बजे, घोड़े हिनहिनाये। कोट पर पट्टनी तीरन्दाज़ कमान खींचे आज्ञा की राह देख रहे थे। परन्तु मशाल आख़िरकार अदृष्ट हो गई। कुछ देर बाद महमूद के सैनिकों की टुकड़ी शान्त हो गई, और भीमदेव हर्षित हृदय से अपने आवास की ओर चले गये।

: ६ :

जब रात पड़ी तब शिवराशी ने पञ्चाग्नि तप से निवृत्त हो स्नान किया। तदनन्तर भगवान् के दर्शन कर, बिल्वपत्र चढ़ाकर, अपने आवास पर पहुंच कर सिद्धेश्वर के द्वारा तैयार किया हुआ भोजन उन्होंने स्वीकार किया। आज की तपश्चर्या से उनके अन्तःकरण के अनेक विकार दूर हो गए थे। उन्हे अब तनिक भी सन्देह न रहा था कि त्रिपुर सुन्दरी उन दिनों चौला के रूप मे प्रभास में विचरती थीं। उन्हे यह भी दीपक की तरह स्पष्ट दिखाई दिया कि जब तक उसकी अधूरी पूजा को परिपूर्ण न कर सकेंगे तब तक महमूद हारने वाला न था और वह युद्ध भी समाप्त होने वाला न था। वह पूजा जब सम्पन्न होगी तो चौलामेंसे महामाया चली जायगी और पुराण पुनीत विधिके अनुसार वह स्वयं आचार्य के नाते चौला के अधिकारी होंगे—यह वस्तु उनके तपस्वी मन से दूर न हो सकी। काम, क्रोध और मोह जिसने जीत लिये हों ऐसे उस तपस्वी को उस वस्तु में कुछ महत्व प्रतीत न हुआ। उनका सारा जीवन त्यागमय था। उस समय त्रिपुर सुन्दरी की पूजा सम्पादित करने के लिए वह हर त्याग करने के लिए उद्यत थे। सन्नद्ध होना उनका परम कर्तव्य बन गया था।

वे धीमे-धीमे भगवान् के मन्दिर में गये और एक खम्भे के पास छिपकर जा बैठे। शिवजी के बाण के सामने एक मन्द दीपक जल रहा था। कुछ देर हुई—खिंचती हुई चौला आई और भगवान् के चरणों में

गिरी, और कुछ नृत्य किया। शिवराशी उसके अङ्ग-अङ्ग की शोभा को निहारते रहे। सचमुच चौला का दैवी सौन्दर्य उसका अपना न था, परन्तु वह जगज्जननी महामाया का था। अधूरी रही हुई पूजा का अविस्मरणीय अनुभव उनकी कल्पना मे पुनर्नवीन हुआ, और उनका शरीर पुलकित हो उठा—"भक्त का शरीर जैसे पुलकित हो वैसे"—उन के तपस्वी हृदय ने सोचा। और वह पूजा पूरी की जाय ऐसी उत्कण्ठा निश्चल हुई। नृत्य समाप्त हुआ। स्वच्छन्द एवं भावपूर्ण शब्दों से चौला ने त्रिपुरारी को रिझाया। राशि जी का मन ऐसा हुआ कि तत्काल ही स्वयं पूजा सम्पन्न कर डाले, परन्तु उस समय वह विधिवत न होगी इस भय से उन्होंने अपना मन किसी तरह निवृत्त किया।

चौला अपने आवास की ओर गई। पीछे-पीछे शिवराशि भी गये। किस समय किस प्रकार पूजा निवर्तित की जाय यही विचार उनके भावुक हृदय में उठा करते और अन्धेरे में भी जङ्गम त्रिपुरसुन्दरी के पदरव का माधुर्य वे पूज्य भाव से अपने हृदय मे अङ्कित करते जाते थे।

चौला शीघ्रता से ऊपर जाकर दौड़ती हुई छतपर दाखिल हुई। ऐसा मालूम होता था कि उसके पैर में मानों पंख ही हो। महामाया के पैर मे पंख न हो तो फिर किसके पैर मे हो। चौला भीमदेव के कमरे की ओर मुड़ी। शिवराशि ने चकित हो अन्धकार मे दीवार के सहारे सरकते हुए पीछे-पीछे जाना शुरू किया। महामाया बिना कारण उधर कभी न जाय। चौला कमरे के पास से निकलकर छप्पर के नीचे होती हुई दूसरी ओर छत पर गई। पीछे पीछे राशिजी भी गये। अन्धेरी छत पर एक पुरुष खड़ा था—भीमदेव ही—ऐसा कद उनके सिवाय और किसका हो सकता था।

"महाराज !" धीरे परन्तु उत्साह से चौला बोली, "कहां हो ?"

"मैं तेरी ही राह देख रहा हूं" भीमदेव की आवाज़ आई।

दो काले धब्बे एक दूसरे से लिपट गए—दोनों एक हो गए। और एक प्रकार की आवाज़ स्पष्ट रीति से, अन्धेरे और शान्ति में राशिजी

के कान में पड़ी। उसके रोमाञ्च खड़े हो गए और उसकी रग-रग में क्रोधाग्नि भभक उठी। उसके हृदय में ज्वालामुखी फूट निकली। उसकी दृष्टि के सामने ऐसा पातक हो रहा था कि जिसकी किसी समय किसी ने कल्पना भी न की हो, भीमदेव के होंठों ने जगज्जननी महामाया के अधर का स्पर्श किया था।

देवेन्द्रदेव का क्रोध उस दुष्ट चालुक्य पर आवाहन करते हुए तपस्वियों में श्रेष्ठ शिवराशि पुण्य प्रकोप से जलते हुए चुपचाप अपने आवास पर जा पहुँचे। उस अधम पातकी को तो पल भर भी जीने का अधिकार न था।

चौदहवाँ प्रकरण

पौष वदी १, शुक्रवार

: १ :

नित्य नियमानुसार शिवराशि के चरण उन्हें गुरुदेव के आवास की ओर ले गये। वह तो भयङ्कर बात थी, दसों दिशाएं साथ दे रही थीं। सोमनाथ भगवान् के पुण्य धाम में कोई भी शास्त्र ऐसे घोर पातक को होने देने के लिए शक्तिमान न था। वह पातक धोया जाना चाहिए। उसका प्रायश्चित्त अनेक विघ्न होने पर भी किया जाना चाहिए।।

महामाया की विशुद्धि अखण्ड और अभेद्य रखनी चाहिए। गुरुदेव के कमरे पर जाते हुए शिवराशि के पैर रुक गये। गुरु के पास क्यों जाना चाहिए? वे तो अपनी तरहसे हँसेंगे, वे कहदेंगे कि चौला तो सामान्य नर्त्तकी है। उनकी स्थूल दृष्टिमें भला वह त्रिपुरसुन्दरी क्यों लगने लगी? उन्होंने ही तो त्रिपुरसुन्दरी की विधि का भङ्ग किया और भगवती के मन्दिर के द्वार बन्द कराये। वे गुरुपद से कभी से च्युत हो चुके थे। गङ्गा एक नर्त्तकी जैसे गृहिणी ही हो, चौला जैसे उनकी पुत्री ही हो, इस तरह गृहस्थाश्रमी की परिपाटी उन्होंने कुछ वर्षों से अवलम्बित कर रखी थी। स्वयं कृतज्ञता के अधीन हो, तपोवल के विश्वास पर वे सर्वज्ञ के प्रति स्वार्थ बुद्धि से मान दिया करते थे। देव, शास्त्र एवं तपश्चर्या की अवगणना करके वे स्वयं ऐसे मनुष्य को गुरु मानते थे।

वास्तव मे गङ्ग तो एक निर्बल एवं भीरु व्यक्ति थे, और सच्चा तप तो उन्होंने किया था। उस वृद्धने अपने गुरुपद को स्थिर करनेके लोभसे भीमदेव को राजगद्दी पर बिठलाया था, और आज भी उसी पद को दृढ बनाए

रखने की लालसा के कारण वह भीमदेव को अपना मनमाना काम करने देता था। ऐसे पुरुष की पूजा करना और आज्ञा मानना—यह पाशुपत मत के साथ द्रोह करने के तुल्य था। अब गुरु शिष्य भाव का अन्त हुआ। बाल्यकाल से गुरुदेव की दी हुई रुद्राक्ष की माला उसके गले में थी। उसे अब उसने क्रोध से कांपते हुए हाथ से पकड़कर खींचकर तोड डाला। उसके गुरु उस दिन से भगवान् लकुलेश थे—उन्हींका वह उत्तराधिकारी था— अपने तपोबल से पाशुपतमत का रक्षण करना ही उसका परम कर्तव्य हो गया था।

: २ :

वह वहां से वापिस हुआ। निश्चय हो जाने से उसने अपनी कमली शरीर पर कसकर लपेट ली और धीरे-धीरे कोट पर घूमना शुरू किया। अंगीठी के आस-पास बैठे हुए सैनिकों ने दूर से उसे जाते हुए देखा और जिन सैनिकों का एक बाल भी महमूद की सेना को देखकर न फड़का था, वे भी थर-थर काँपने लगे। उन्हे प्रतीत हुआ कि भयङ्कर जटा और स्थिर तेजस्वी नेत्रों से भयावह शम्भु स्वयं ही परिस्थिति का निरीक्षण करने निकले थे। कई सैनिको ने तो अपने सिर कमलियों में छिपा लिये, कई ने साष्टांग दण्डवत् किया, कई ने घबराते हुए स्वर से "नमः शिवाय" कह|कर सत्कार किया। और वह ऊँची, काली, भयानक आकृति, जाज्वल्यमान नेत्रों को भ्रुकुटी पर स्थिर करती हुई सहसा अदृश्य होगई।

भरूच के दद्दा चालुक्य किसी अनुचर को साथ लेकर कोट की व्यवस्था देखने निकले थे। उस समय व्यवस्था की देख-भाल उनके जिम्मे थी, अतएव अपना कर्त्तव्य वे कमर कसकर निभा रहे थे। वे लगभग पैंतीस वर्ष के थे। जब मूलराज देव ने दक्षिण के सेनापति बारप को हराकर भृगुकच्छ ले लिया था तब उन्होंने पुरातन चालुक्यवंशी राजा की एक सन्तान को लाट देश की राज-गद्दी पर बिठाया था। तथापि वास्तव में राज्य तो पाटण के दण्ड नायक ही किया करते थे। चामुण्ड

राज के शासन काल में दद्दा के पिता ने सिर उठाने का प्रयत्न किया था। परन्तु उसे तो पाटण की सेना ने चुटकी मे चटपट कर दिया था और उस समय उसके इस पुत्र को पाटण के नरेश ने गद्दी का मालिक ठहराया था। दद्दा खा-पीकर मज़ा करते थे। वे पाटण के दण्ड नायक की आज्ञा का पालन करते और अपने राजा होने के गुमान मे ही प्रसन्न रहते। महमूद का आक्रमण होने वाला था। अतएव भरूच की सेना लेकर हाज़िर होने का आदेश उन्हे मिला था जिसकी वजह से महल और महिलाओं को छोड़कर पौष महीने की शिशिर रजनी मे उस शस्त्र सज्जित सेना के मध्य कोट की निगाहबानी करने का दुर्भाग्य उन्हे प्राप्त हुआ था। यदि उनकी चलती होती तो वे दूसरे ही पल भरूच की राह पकड़ते, परन्तु भीमदेव ने उनकी गर्दन जो पकड रखी थी। उनकी धाक से वे न तो जा ही सकते थे और न रह ही सकते थे। न जाने किस घड़ी में मूलराजदेव ने उन्हे गद्दी पर बिठाया था—बस केवल उसीका विचार वे किया करते थे।

दूर से शिवराशि को आते हुए उन्होंने देखा और उनका हृदय काँपने लगा। उन्हे भी पहले भगवान् शङ्कर का भान हुआ। फिर वे कहीं काल भैरव तो न हों, ऐसा ध्यान आते ही उन्होंने वहा से भागने का निश्चय किया। इसी बीच में कुछ सैनिको ने आकर उन्हे नमस्कार किया। और कुछ उस भीषण आकृति को प्रणाम कर रहे थे, इस कारण आत्म-सम्मान खोने के भय से वे वही-के-वहीं स्थिर रहे।

परन्तु जब शिवराशि निकट आये, तब उन्होने उन्हें पहचाना। तीन एक वर्ष पूर्व राशिजी नर्मदा जी की परिक्रमा करने जब आए थे तब उन्हे उनके चरणो में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और तब उन्हे उस भव्य तपस्वी से अनेक प्रोत्साहन भी मिले थे। उन्ही के आशीर्वाद से उनके यहां पांच कन्याओं एवं एक पुत्र का जन्म भी हुआ था। दद्दा ने साष्टांग दण्डवत् किया और शिवराशि ने "शिवाय नमः" कहकर आशीर्वाद दिया। अकेले जाने की अपेक्षा उस तपस्वी के

साथ कोट पर घूमना उन्हें अधिक उचित प्रतीत हुआ।

"राशि जी! इस पीडा का अन्त कब होगा?"

शिवराशि ने कोई उत्तर नही दिया और कुछ समय तक दोनों ही चुपचाप घूमते रहे।

"गुरु महाराज! कहिये तो सही। इस सबका क्या परिणाम होगा?"

शिवराशि ने दद्दा की ओर देखा और उनकी दारुण दृष्टि को देख कर चालुक्यराज कांप उठे।

"परिणाम?"

"हां, राशि जी! आपको तो तीनों ही कालों का ज्ञान है—क्या होगा?"

शिवराशि ने ऊपर आँख उठाकर देखा और क्षितिज की ओर दृष्टि-पात करते हुए बोले, "महामाया को भ्रष्ट करने वाले कुत्ते की मौत मरेंगे।"

दद्दा खुश हुए—"महमूद?" उन्होंने कहा।

शिवराशि रुके और दद्दा की ओर उग्रता के साथ देखा। दद्दा काँपने लगे और हाथ जोड कर खडे रहे।

"नहीं" राशि ने धीमे स्वर से कहा, "भीम।"

दद्दा मूक, स्तब्ध रह गए, मानों उन पर बिजली गिर गई हो। उनका सिर चक्कर खाने लगा।

"भगवान् सोमनाथ की अर्धाङ्गना का शाप है।"

और लम्बे-लम्बे कदम रखते हुए राशि जी वहां से चल दिए।

दद्दा के पैरों की गति मन्द पड गई और वे पागल जैसे उस भयङ्कर आकृति को अन्धकार में लुप्त होते चुपचाप देखते रहे।

: ३ :

परन्तु दद्दा को अधिक विचार करने का समय न था। अरूणोदय हुआ और महमूद की सेना में एकदम दौडादौडी मच गई।

घोड़े मशालचियों के साथ इधर-से-उधर दौड़ने लगे। कॉपते हुए दद्दा ने अपने कन्धे पर लटके हुए शङ्ख को फूंका। तुरन्त ही द्वार पर स्थित चौकीदारों ने भेरी का नाद किया। भीमदेव शय्या से एकदम उठ बैठे। कमल के नाल के समान सुकुमार हाथ की मृदुता को बिना देखे ही उन्होंने कवच धारण किया, शङ्ख बजाया और कोट पर जा दौड़े। गय भी अपने शस्त्रों को सुसज्जित करने कोट पर आये और उन्होंने अपना रणसिंघा बजाना शुरू किया। परमार और विमल भी कोट पर चढ़ आये और जहां भीमदेव महाराज विद्यमान थे उसी मुख्य द्वार के सिरे पर सब जमा हुए।

महमूद की सेना में अजीब हलचल मच रही थी। ऊँचे स्वर से समझ में न आने वाली बोली में आदेश दिये जारहे थे। घोड़े हिन-हिनाते थे, शास्त्रों का घर्घर स्वर हो रहा था और एकदम दूर जङ्गलों के पास जहां डेरे-तम्बू डालकर महमूद ने अपना पड़ाव डाल रखा था वहां अनेक दीपिकाओं का प्रकाश होने लगा था। वहां से घोड़े रवाना होने लगे और जैसे कोई महा यन्त्र घूमते हां उसी तरह समस्त सैन्य में अकल्पित व्यूहों की रचना होने लगी।

भीमदेव ने भी तुरन्त तैयारी कर डाली। धनुर्धारियों की एक टुकड़ी कोटपर घुटने टेके तैयार बैठी थी और उसके पीछे शरीर पर ढाल बांधकर दूसरी टुकड़ी तैयार थी और उसके पीछे कवचधारी राजपूत योद्धा खड़े थे।

गुरुदेव भी ऊपर आये। भीमदेव ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया और राजाओं ने केसरिया तिलक लगाया। केसर और कुङ्कुम उछाला गया। "जय सोमनाथ" के गगन भेदी नारों से गगन गूंज उठा।

अन्धकार के परदे फटे और भीमदेव ने चारों ओर दृष्टि डाली। महमूद की सारी सेना का स्वरूप बदल गया। तीनों ओर लम्बी, मोटी, चौरस चमकती हुई ढाल के नीचे कछुए के समान छिपी हुई सैनिकों

की दो कतारें थी । केवल उनकी आंखें और छोटी नंगी तलवारों के सिरे बाहर दिखलाई देते थे। प्रत्येक सैनिक के पास खाई पार करने के लिए एक छोटा-सा पटिया भी था।

पीछे की ओर चार-चार छः-छः की कतार घुड़सवार धनुर्धारियों की थीं। उनकी छाती पर जंगली जानवरों के चाम के कवच थे। उनकी पंचरंगी दाढी विशाल वस्त्रों पर फैली हुई थी। उनके सिर पर जानवरों के सींग वाले टोप भी थे। उन्होंने धनुष खींच रखे थे। एक शब्द सुनते ही दस हजार तीर छूट जायं ऐसी उनकी तैयारी थी। उनके पीछे पास-पास खडे हुए हाथियो की पंक्ति से एक विशाल कोट की रचना हो गई थी। प्रत्येक हाथी पर तीन-चार तीरन्दाज़ थे, और हर सैनिक की बगल में कोट पर चढने के लिए सीढियां भी थी।

अद्‌भुत नियन्त्रण था, अपूर्व व्यवस्था थी और दुर्धर्ष प्रभाव था। राय और भीमदेव प्रशंसा पूर्वक इस सेना का निरीक्षण कर रहे थे।

"महाराज ! हम जीत जायं तो केवल भगवान् की कृपा से ही"—राय ने धीरे से कहा।

"भगवान की कृपा और क्षत्रियों की टेक," महाराज ने गर्व के साथ कहा, "हम कभी न हारेंगे, युद्ध हमारा धर्म है।"

"जहां धर्म होता है वही विजय होती है" गुरुदेव ने हँसकर कहा और वे कोट के नीचे की ओर चले गये।

दर से एक विचित्र ध्वनि करता हुआ रणसिंघा बजा और स्थान-स्थान पर रणसिंघो की आवाज़ हुई । यवन सेना के मध्य राह फट गई और अपनी छावनी से महमूद निकला। पचास डंके निशान वाले घोड़े दोनों ओर चल रहे थे और उनके बीच पच्चीस-तीस घुड़सवार बाहर निकल आये। उनमें सबसे आगे हरी पगड़ी और लाल लम्बी दाढी से सुशोभित प्रचण्डकाय महमूद काले घोड़े पर सवार हो चला आ रहा था। और उसके आसपास सोने-सी छटा वाले, चन्द्रमा की आकृति वाले निशान धारण किये अनेक घुड़सवारों की आहट हुई।

चारों ओर फैली हुई उस आसुरी प्रबलता को देख भीमदेव की रगों में क्रोध की ज्वालाएं भभक उठी। उनके मस्तिष्क में मानो हथौड़े ठोके जाने लगे। एक ही छलांग में वीरा के द्वारा सुसज्जित अश्व पर वे कूदे और पायदानों पर खड़े हो उन्होंने आसपास खड़े हुए योद्धाओं की ओर दृष्टिपात किया।

"मेरी, पाटण की और भगवान् सोमनाथ की लाज तुम्हारे ही हाथ है। वीरा! स्वर्ग के द्वार खुल रहे हैं। एक-एक क्षत्रिय को हज़ारों यवनों को मारना है। जो पीछे पैर करे वह क्षत्रिय की सन्तान नहीं।"

और साथ ही हर्ष के आवेश में आकर राय रत्नादित्य भी घोड़े पर कूद गये और उन्होंने तलवार निकाल कर कहा, "भीमदेव महाराज की जय।"

आसपास खड़े हुए योद्धाओं ने भी यही घोषणा की। भीमदेव महाराज ज़रा रुके, वे हंसे, और अपनी तलवार को चमकाते हुए जयनाद किया। "जय सोमनाथ" यही घोषणा सैनिकों ने भी दोहराई। उसकी प्रतिध्वनि महमूद के कान में विष-बुझे तीर की तरह चुभी।

महमूद दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ उस गढ़ की ओर देखता ही रहा। जगद्विजय करनेके क्रममें उसने ऐसे कई गढ़ों पर आक्रमण किये थे, परन्तु वह धाम सबसे श्रेष्ठ था—वहां तक पहुंचने के लिए उसने अनाक्रान्त मरुदेश को पार किया था और अभूतपूर्व साहस किये थे। उस समय उसका प्रचण्ड सैन्य उद्यत था और विरोध में एक छोटा सा राजपूतों का सैन्य भीषण प्रतिज्ञा धारण करके उपस्थित था। क्षण भर के लिए उसके हृदय में दया का भाव संचारित हो गया, "हज़ारों राजपूतों की सेना जिस तरह कटती रही उसी तरह यह भी कट जाने वाली है। अल्ला और उसके पैगम्बर अली की उसपर कृपा थी—परन्तु यह सब किस कारण?" ऐसे ही विचार उसके मन में आ जा रहे थे।

उसे इतिहास के अमर पृष्ठों पर अपने विश्व विजयी होने की अमर गाथा लिखवानी थी। सोमनाथ का विनाश उस कीर्त्ति के मन्दिर

का स्वर्ण कलश था। उस कलश को चढाने में वह सेना कण्टक रूप थी। काफ़िरों की ऐसी सेनाओं का सृजन अपने नाश के द्वारा उसकी कीर्त्ति को उज्वल करने के लिए ही हुआ था। उसकी आँखें चमकी और उसने प्रौढ स्वर से घोषणा की, "अल्ला हो अक्बर।" उसके आसपास के डंके वालों ने डंके की चोट से उसकी आज्ञा का सत्कार किया। चारों ओर "अल्ला हो अक्बर" की ध्वनि गूंज उठी। प्रत्येक टुकडी में डंके बजे और सारा सैन्य समूह भूखे प्रचण्ड अजगर की तरह शान्त एवं निश्चय-पूर्ण बुद्धि से प्रभासगढ को ग्रसिन करने के लिए आगे बढा।

: ४ :

महाराज मध्यद्वार पर खड़े हो उस मानुषी कच्छप के आते हुए समूह को देखते रहे। "घुड़सवार निकट आवे तो उन पर तीर छोड़ना, कछुवों पर व्यर्थ ही न फेंकना" कहते हुए महाराज घोड़े से नीचे उतरे।

"विमल, विमल!" महाराज ने पुकारा, "वीरा! विमल को ढूंढ कर ला और उससे कहना कि पत्थर हाथ में लेकर मनुष्यों को कोट पर भेजे, वे कछुए ज्यों ही पानी में कूदे त्योंही उन्हें डुबो देना चाहिए।"वीरा महाराज के घोडे पर सवार हो विमल की तलाश में गया। महाराज ने अपना बाण चढाया और कहा,' मैं जब तीर छोड़ूं तो तुम भी छोडना। कछुए पर नहीं, सवार पर नहीं, परन्तु घोडे पर।"

कछुए हाथ-पैर से आगे बढे। पीछे-पीछे घुड़ सवार आये। उनके पीछे हाथी आये। जब घुड़सवार तीर के अन्तर में आये तब उन्होंने तीर छोडे और घोडों को एड़ी मार कर आगे बढाया। कछुए जैसे दीखने वाले सैनिक खडे होकर दौडने लगे। तीनों क्रियाएं एक साथ शुरू हुईं।

उसी क्षण भीमदेव ने बाण छोडा। उन्हें देखकर हज़ारों तीरन्दाज़ों ने भी उसीका अनुकरण किया। और सैंकड़ों घायल घोड़े कहीं तो कतार छोडकर भागे और कहीं भूमि पर लेट गये। कोट पर खडे हुए अनेक धनुषधारियों में से कुछ घायल होकर गिर पड़े, परन्तु बाकी बचे

हुए अपने घोड़ों को जैसे-तैसे काबू में रखकर महमूद के सवारों को बेध डालने का प्रयास कर रहे थे।

घोड़े गड़बड़ाये। परन्तु हाथी स्थिर रहे—धनुर्धारियों को सूझ न पड़ी कि तीर छोड़े जाय या नहीं। कछुए, घुड़सवार और हाथियों के रक्षण के बिना ही मोट की ओर आगे बढ़े।

खबर मिलते ही उछलते घोड़े पर महमूद आगे आया, आदेश-पर-आदेश छूटे और दूसरे घुड़सवार कछुओं की रक्षा के लिए भेजे गए।

दोनों ओर से बड़ी देर तक तीरों की मूसलाधार वर्षा होती रही, परन्तु भीमदेव महाराज और उनके चुने हुए तीरन्दाज़ कभी चूकते न थे। किसी घोड़े की पीठ किसी सैनिक के अरक्षित शरीर तो किसी उठ खड़े हुए योद्धा की पीठ उन्हें अचूक दीख पड़ती और देखते-देखते ही उनमें गुजराती तीर भोंक दिये जाते थे। महाराज इधर-उधर देखते-भालते नायकों को ढूंढ निकालते और हर तीर के द्वारा ही किसी-न-किसी को धराशाई कर देते। दूर खड़े हुए हाथी भी उनसे बच न पाते थे और जब कछुए सैनिक खाई के पास आये तो उनमें और निसरनी लेकर आने वाले हाथियों के बीच बड़ा अन्तर हो गया था।

महमूद के एक सेनापति ने इस कठिनाई को देखा और कुछ घुड़सवार निसरनी लेकर आगे आये। एक दो हाथी भी बिल्कुल आगे तक पहुंच पाये थे। तीरों की वर्षा में भी अनुभवी योद्धा आगे बढ़ने लगे। कुछ निसरनी कछुए सैनिकों को दिये गए।

"कछुओं पर बाण न छोड़े जाय, व्यर्थ जायंगे—घुड़सवारों को ही निशाना बनाना चाहिए!" ऐसी महाराज की आज्ञा फिर सुनाई दी।

महमूद के घुड़सवारों ने भी पास आकर तीर छोड़ना शुरू किया और कितने ही पट्टनी धनुर्धर भी भूमि पर गिरे, परन्तु भीमदेव महाराज के कवचधारी सहस्र धनुर्धर कभी यहां तो कभी वहां सामना करते थे। और उन सब के मध्य महाराज के अथक बाहु कल्पनातीत निशाना साधते थे। कछुए सैनिकों ने एक हाथ में पटिये और दूसरे हाथ में

सीढियां लेकर मोट में डुबकी लगाई।

"विमल, विमल !"

"महाराज ! हाज़िर।"

"पत्थर लाये हो ?"

"जी हां।"

"कछुओं को मारना नहीं,बाण बेकार जायंगे—रास्ता करो—जगह छोड़ो" महाराज ने घोषणा की। वीरा के हाथों में धनुष देकर पास खड़े हुए अनुचर से एक बड़ा पत्थर लेकर महाराज ने निशाना ताक कर मारा। बड़ा पत्थर गिरा—ज़ोर से—ठीक वहीं जहां उसे जाना था—एक ओर कछुए की ढाल पर। उसने भयङ्कर चीख मारी और वह सैनिक पानी में ही नीचे दब मरा। महाराज के क्रम को देख अन्य सैनिकों ने भी पत्थर उठाये और वे भी कछुओं को डुबोने लगे।

कितनी ही देर तक यह तुमुल युद्ध चलता रहा। बड़ी देर तक नये-नये कछुए आ-आकर खाई मे घुसने लगे। कई बार कछुए खाई में पत्थर को चुकाते, परन्तु खाई को पार कर कोट के निकट आते-आते तीर से बेध दिये जाते। घुड़सवार कभी-कभी तीर छोड़ते-छोड़ते मोट के किनारे तक आ पहुंचते। कभी वे तीरों से बिधकर फिसल जाते तो कभी उस विनाशक लोह वर्षा से बचने के लिए दूर भाग जाते। उधर कोट पर भी अनेक सैनिक विद्ध होकर भूमि पर गिर पड़े। कई घायल हो जाने पर भी तीर छोड़ते रहे तो कई मरते-मरते भी पत्थर फेक कर कछुओं के प्राण हरण करने को उतारू हो गए।

भीमदेव महाराज किसी समय पैदल तो किसी समय घोड़े पर सवार होकर इधर-से-उधर सैनिकों को आज्ञा देते, पत्थर ढकेलते, अचूक तीर चलाते और "जय सोमनाथ" की गर्जना से सबको प्रोत्साहन देते। जहां उन की केसरिया पगडी पर जगमगाती हुई कलगी फिरती वही नवीन उत्साह से पट्टनी युद्ध करते, और उसी कलगी को देखकर मौत के सदृश दुश्मनो के तीर चलते मगर उन्हें छुए बगैर वे

जमीन पर गिर जाते। नख से शिखा तक उन्होंने सुनहरा कवच धारण किया हुआ था, उनकी कमर पर केसरिया कमरबन्द था और उसमें मणिजटित तलवार लटक रही थी। छः आदमी भरे हुए तूणीर लेकर पीछे-पीछे दौड़ते और उनके अविश्रान्त हाथों को तीरों से पूरते रहते। उन का हाथ बडा शुभशकुनी था, जहा उठा कि कोई-न-कोई पृथ्वी पर गिरा।

और मन्दिर की एक ऊँची अटारी पर गङ्गा और चौला एक दूसरे से भय के मारे लिपटी हुई उसी कलगी पर टकटकी लगाकर बैठी थीं। "वे गये,—वे—वे"—"अरे मेरे बापा, ओ भगवान्!"—दोनों के मुँह से सुनाई पडता था। कलगी अदृष्ट होती तब चौला घबरा कर गङ्गा से लिपट जाती। कलगी उछलती तो उसका हृदय भी साथ-साथ उछलता और तीरों के निकलने के साथ-साथ उसके पैर भी नृत्य करने लगते। उसके प्राण अपने नयनों के द्वारा उसी कलगी पर केन्द्रित हो रहे थे। यदि वह कलगी गिर जाय तो वे भी तत्काल निकल जाने के लिए तैयार थे। इतने ही में पीछे से गुरुदेव आये। वे भी कुछ समय तक महाराज का शौर्य देखते रहे।

"गुरुदेव! चौला ने नमस्कार करके पूछा, "महाराज रुद्र के अवतार है न?"

गुरुदेव हंसे, "हां बेटा! है ही—इस में क्या सन्देह है?" और वे त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करने चले गये।

: ५ :

जब गुरुदेव पूजा करने गये तब उनके हृदय में कुछ शान्ति थी। उन्होंने भीमदेव के शौर्य की कथाएं सुनी तो बहुत थीं, परन्तु उनसे साक्षात् आज ही हुआ था। महाराज का शौर्य ऐसा अद्भुत होगा उन्होंने कल्पना भी न की थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने दोनों सेनाओं के बल की भी तुलना की थी। महमूद की सेना कल्पना से कुछ अधिक थी, परन्तु भीमदेव का शौर्य जितनी कल्पना की थी उससे कहीं अधिक था। भोला-नाथ की कृपा है ऐसा उन्हें स्पष्ट प्रतीत हो रहा था।

जब वे त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर में गये तब उन्हें अचम्भा हुआ। किसीने वाहर के द्वार के ताले तोड डाले थे। हरदत्त की कार्यवाही होगी ऐसा सोचकर वे भीतर गये। गर्भद्वार के दरवाज़े भी खुले थे। मालूम होता था कि किसी ने जान बूझ कर उनकी अवज्ञा की थी।

वे गर्भद्वार से आगे पहुंचे तो वहां उन्होंने देखा कि त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करके, उसके सामने मांस और मदिरा रख शिवराशि ध्यान लगाए बैठा था। गुरुदेव रुके। उनकी आज्ञा का ऐसा अनादर, और वह भी अपने पट्टशिष्य के हाथो से, यह उनकी कल्पना से बाहर था। वे द्वार-देश पर खड़े रहे। शिवराशि कहो पागल तो नहीं हुआ ?

वे कुछ देर तक कुछ भी न बोले। थोडी देर मे ही शिवराशि ने आँखे खोली और किसी भी दिन गुरु पर जैसी पहले न डाली थीं ऐसी धृष्ट एवं विकराल दृष्टि उस समय डाली। सर्वज्ञ कुछ म्लान वदन से परन्तु हँसते हुए देखते रहे। जो जीवन भर के गुरु की आज्ञा-पालन के धर्म को तोड़े उसे उपालम्भ किस प्रकार दिया जाय ? यह तो पशुता की व्याधके चिह्न—उसके लिए कहां तो दया और कहां सेवा की भावना। यों विचार करते हुए गुरुदेव चुपचाप खड़े रहे।

"बोलिये ! आपको क्या कहना है ?" उसने गुरुदेव से प्रश्न किया।

"कुछ कहना नही।"

"मैंने ये ताले तोडे हैं और मैंने हो त्रिपुरसुन्दरी की पूजा की है।"

"अच्छा किया, आजकी मेरी मेहनत बची" गुरुदेव ने ठण्डे पेट से कहा।

गुरु की शान्ति देख शिवराशि का क्रोध भडका।

"मैंने कल से आपका गुरुभाव त्याग दिया है।"

"तुम जैसे शिष्य के लिए मैं योग्य गुरु नही, यह तो मै बहुत पहले से ही जाने बैठा हूं।"

"और आज से," खड़े होकर शिवराशि ने घोषणा की, "पाशुपत

मत का गुरुपद मैंने ले लिया है।"

"गुरुपद लेने से नहीं मिलता, गुरुपद तो परम्परा से दिये जाने पर ही मिलता है।"

पीछे से हरदत्त और दो साधुओं को लेकर सिद्धेश्वर आया और उन्होंने गुरु-शिष्य के उस संवाद को ध्यान से सुना। उन्हें देखकर शिवराशि को अत्यधिक सान्त्वना मिली।

"आप मेरे गुरु नहीं—मुझे यह पद आप से लेना नहीं—आप तो पतित हो चुके हो; आपने पाशुपत मत के सिद्धान्तों को तोड़ा, महामाया की विधियों पर रोक लगाई है।"

"फिर ?"

"आपने महामाया का मन्दिर बन्द करवाया, उसकी पूजा अधूरी रखी, और जिसमें महामाया ने निवास किया है उसे अपनी महत्वाकांक्षा को पोषित करने के लिए उस भीम को अर्पित किया है।"

"फिर ?"

"आपकी इस आज्ञा से उस दुष्ट ने महामाया को भ्रष्ट कर, इस पुण्यधाम को घोर नरक बना रखा है। अरे जरठ! तुम्हें तो एक पल भी जीवित रहने का अधिकार नहीं।" ज्यों-ज्यों गुरुदेव मूक रहते त्यों-त्यों शिवराशि का पित्त भड़कता जाता था और ऐसा प्रताप उसके वदन पर छा रहा था, जैसे कोई दुर्वासा भयङ्कर शाप दे रहे हों।

"बेटा जिस तरह तू बोले जा रहा है उसे देखते हुए निश्चय ही मुझे पल भर भी जीने का अधिकार नहीं, परन्तु जब तक मैं जीवित हूँ तब तक मेरे पद को तेतीस कोटि देवता भी ले नहीं सकते।"

"वृद्ध महाराज! अपना गुरुपद तो आप कभी का खो चुके हैं और वह भी सदा के लिये।"

"तेरी तरह मैं तपश्चर्या का गर्व और ज्ञान का आडम्बर जब करने लगूँगा तब ही मैं गुरुपद को खोऊँगा।"

"तुमने खो दिया है—खो दिया—और मैं इस पद का उत्तराधिकारी

हूँ। आप जायं—अब आपके राज्यकाल की इतिश्री हो गई।" शिवराशि ने कहा।

"मूर्ख! यदि मैंने गुरुपद खो भी दिया हो तो भी उसका उत्तराधिकारी खम्भात में बैठा है—गगनराशि। जाते-जाते चार राजाओं के समक्ष उसका पट्टाभिषेक कर दिया और उसे भगवान् लकुलेश की पादुका एवं बाण भी सौंप दिये हैं।"

उस वृद्ध ने उसे छल लिया। शिवराशि क्षणभर के लिए चकित हो रहा। और वह बड़ी देर तक कुछ बोल न सका।

"शिवराशि! पाशुपत मत का गुरुपद तो समस्त विश्व का गुरुपद है। जहां ज्ञान, तप एवं भगवद्भक्ति है, वहीं उसके अधिष्ठाता का पद है। वह अभिमान से अथवा वासना को भगवदिच्छा मानने से नहीं मिलता।"

"अरे वृद्ध!" शिवराशि ने कहा, "मुझे तुम्हारा पद अपेक्षित नहीं है। तुम्हारा भीमदेव महामाया के कोप का पात्र बन गया है। तुम्हारी मौत तुम्हारे सिर पर मंडरा रही है।"

"मैं भले ही मर जाऊँ। गगनराशि पाशुपत मत को तुझ जैसे व्यक्ति से छुटकारा दिला देगा।" इतना कहकर गुरुदेव धीमे-धीमे त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर से चल दिये।

वे जब लौट रहे थे तब हरदत्त ने उनपर थूक दिया। गुरुदेव ने फिर पीछे की ओर देखा और कहा, "मैं गुस्से हो जाऊं—यह तेरी इच्छा है? रे मूर्ख! तुझ जैसे बालकों को मैं—तेरा गुरु—न चरा सकूं तो कौन चरायेगा।" और करुण-स्निग्ध नेत्रों से सबको निहारते हुए वे खिन्न हृदय से बाहर चले आये। हरदत्त तथा अन्य साधु उनके प्रति धिक्कार के शब्द निकाल रहे थे।

: ६ :

जूनागढी द्वार पर मामला कुछ अधिक गम्भीर था। आबू के युवक परमार ने उसकी रक्षा करते हुए भीमदेव महाराज की आज्ञानुसार मरुस्थल में वहां भी कुछ घुडसवारों को आहत किया था। परन्तु उस

स्थान पर कवचधारी सैनिक कम होने से दुश्मनों के तीरों ने विनाश करना शुरू किया था। और पत्थर तैयार रखने की दूरदर्शिता जैसी भीमदेव महाराज ने रखी थी वैसी वहां किसी ने न रखी। परिणाम यह हुआ कि वैरियों ने पूर्व निश्चयानुसार शीघ्रता के साथ आगे बढ़ना शुरू किया, कछुए यथासमय मोट मे पैरने लगे, और उनके संरक्षक घुडसवार कोट पर खडे हुए तीरन्दाज़ो को उनसे लडने से रोक सके और हाथी वाले सैनिक आगे बढ़कर कछुए सैनिको को उचित अवसर पर निसरणी दे सके। घुटने टेककर बैठे हुए धनुर्धारियो ने कछुओं को मारने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु उनकी धातुनिर्मित मज़बूत लम्बी चौडी ढाल पर गिरकर अनेक तीर निष्फल हुए।

परमार ने सैनिको को प्रेरित करने मे और अपने शौर्य को आजमाने मे तनिक भी कमी न की। उनके आधीन सैनिको ने भी अथक परिश्रम किया और अनेक सैनिकों ने भगवान् की सेवा मे अपने प्राण भी अर्पण किये। इतना करते हुए भी कछुए सैनिक मोट पार कर इस ओर सीढियां लगाने लगे थे। घुड़सवारों ने भी पानी मे उतर कर कछुओं को मदद देने के लिए दौड मचाई। हाथी दूसरे किनारे तक आने लगे और उनपर सवार धनुर्धरों ने कोट पर चढे हुए सैनिको का विध्वंस करना शुरू किया। सौभाग्यवश दुश्मन ने मुख्य आक्रमण मध्य द्वार पर ही किया था और महमूद एवं उसके सेनापतियों का ध्यान वही पर केन्द्रित था। इसी कारण जूनागढी दरवाजे पर मिली हुई सहूलियत का लाभ वे न उठा सके।

"जा, जा—"परमार ने अपने विश्वास पात्र नायक से कहा, "महाराज एवं राय से जाकर कह दे कि यदि कुछ सैनिक और न भेजे जायंगे तो जूनागढ़ी दरवाज़ा दोपहर तक गिर जायगा।"

"अच्छा बापू!" कहकर नायक महाराज एवं राय के पास उस संदेश को देने गया।

भीमदेव महाराज को जब यह खबर मिली तब मध्यद्वार पर दोनों

पक्ष में शिथिलता हो रही थी। आक्रमण का वेग कम हो चुका था। पट्टनियों की भीषणता भी घट गई थी।

नूतन घुडसवारों की भरती होनी भी बंद हो चुकी थी नये कछुए भी आने बन्द हुए। लगभग तीन सौ आदमी खाई का मन्थन कर रहे थे। और ऊपर से पट्टनी पत्थरों के प्रहार से उनका प्राण हर रहे थे। परन्तु कोई भी कोट पर सीढियां लाने का सौभाग्य न ले सका।

"विमल ! तू यहां ध्यान रखना—मैं जूनागढी द्वार पर जाता हूं। वहां परमार कठिनाई में है—और अपने आधे सैनिक मेरे साथ रहें—परन्तु इस चाल का पता दुश्मनों को न लगने पावे।" स्वयं वे वहीं हैं यह बतलाने के लिए अपनी पगडी विमल के सिरपर रखकर उसका टोप स्वयं पहिन कर परमार की मदद करने दौडे।

राय ने भी द्वारिका के द्वार पर रंग बांध रखा था। उनकी होशियारी और उनके सोरठी तीरन्दाजों की अचूक विनाशकता के कारण दुश्मन की सेना उनका सामना न कर सकती। अतएव ज्योंही उन्हे परमार का सन्देश मिला त्योंही लगभग तीन सौ सैनिकों को लेकर वे जूनागढी द्वार पर जा धमके।

वहां स्थिति कठिन हो गई थी। पचासो तैराक घुडसवारों ने व्यूह रच लिया था। और एक प्रकार सजीव वाहन बनाकर उस पर कछुए चढ चुके थे; और वे सीढियां लगाने का प्रयत्न कर रहे थे। मोट की दूसरी बाजू पर खड़े हुए हाथियों पर से बाण ऐसे छूटते थे कि गढ पर खड़े हुए धनुर्धर बडी कठिनाई से उनसे बच पाते या उनका प्रतिरोध कर सकते थे। ऊपर बरसते हुए तीरों की परवाह न करते हुए दृढ कछुए और घुडसवार पटिये बांध कर तैरने का साधन बना सके, और देखते-देखते खाई में पुल तैयार हो गया। नए कछुए आये और वे भी पुलपर खडे होकर जूनागढी दरवाजे की कडियों में रस्से बांधकर उन पटियों को मज़बूत करने लगे। सीढ़ियां लगाई गईं और उनपर कछुए ढ़ाल नीचे करके ऊपर चढने लगे। दुश्मन की सेना में हर्ष व्याप्त हो गया।

कोटपर तीरन्दाज़ बडी संख्या में काम आये।

परमार के शौर्य ने दिल खोलकर दुश्मनो की तरणियो को डुबाने का यथाशक्य प्रयत्न किया और अकेले ही उन्होंने कई कछुओं का संहार भी किया। परन्तु क्षीण होती हुई उनकी सेना पर्याप्त न हो सकी। थोडी देर मे "भीमदेव महाराज कहां"—ऐसा वे पूछते। उनके मित्र और आदमी जब तक वहां आ पहुंचे तब तक जूनागढी द्वार को वे सम्हाले रहे यही उनकी इच्छा थी। द्वार के कगारे पर खडे होकर उन्होंने कई एक कछुए और घुडसवारों के प्राण हरण किये थे। परन्तु जहां वे एक को मार पाते वहां चार और नये खडे हो जाते। अन्ततः वे एक बडी गदा को लेकर कगारे पर जा खडे हुए। उनका कवच मध्याह्न के उत्तरकालीन सूर्य के प्रकाश में जगमगा रहा था। उनके सिरपर तीरों की वर्षा हो रही थी तथापि वे अपने स्थान पर डट कर, सीढियों पर चढते हुए कछुओं को हराने मे उद्यत थे।

परमार के शौर्य ने उनके सैनिकों मे जान डाल दी। कुछ और भी सैनिक उसी तरह दरवाजेपर खडे होकर परमारको मदद देने लगे। सामने हाथी पर खडे हुए तीरन्दाजो ने भी वही तीर बरसाने शुरू किये। सब ओर की अपेक्षा सच्चा युद्ध उसी दरवाज़े पर केन्द्रित हुआ।

सच्ची परीक्षा का समय था। सौ कछुए सीढियां चढ रहे थे। ऊपर दरवाज़े के सिरे पर लगभग पच्चीस कवचधारी योद्धा को लेकर परमार दुश्मनों से झूम रहे थे। और वहां सामने से दुश्मनों के बाण भी चले आ रहे थे। यदि परमार एक कछुए को नीचे गडबडा देते तो कोई उनका साथी भी बाण से विद्ध हो नीचे खाई मे गिरता ही था। "भीमदेव महाराज! आओ, आओ।"

परमार को उत्तर न मिला। सीढी पर एक राक्षसी कॉकेशियन योद्धा अपनी ढाल से शरीर को बचाता आगे बढ रहा था। एक ही क्षण की देर थी। उस योद्धा के हाथ कोट पर थे। एक छलांग मारकर वह ऊपर आने के लिए कूदा। नीचे दूसरा प्रवहण तेजी से तैयार हो रहा था।

दूसरी सीढियां लगाने की तैयारियां चल रही थीं—और और कछुए निस-रणी पर चढ रहे थे। भयङ्कर परिस्थिति हो रही थी। परमार ने "जय सोमनाथ" की गर्जना के साथ कोट पर चढने के लिए पैर रखते हुए योद्धा को फेंकने का प्रयत्न किया। पीछे-पीछे आते हुए कछुओं ने उसे बचाने का भरपूर यत्न किया।

एकदम एक उड़ता हुआ तीर आया और परमार के गले मे लगा। उसी क्षण परमार को चेतना हुई और उन्होंने मृत्यु को आमन्त्रित किया। उन्होने उस प्रचण्ड योद्धा को हाथ मे भीचकर, "महाराज!" ऐसे एक ज़ोर से अन्तिम आवाज़ दी। और खाई में गिरने के लिए ताक़त लगाई। उस अकल्पित ताक़त के लगने से यवन योद्धा के पैर उखड गए और एक निमिष मात्र के लिए दोनों हवा में निराधार लटके—और नीचे गिरे—परन्तु गिरते-गिरते परमार ने निसरणी के पहले पगथिये पर अपना पैर अटकाया। आँख खुलने से पहले ही एक दूसरे के हाथ में लिपटे हुए परमार और यवन योद्धा नीचे आये और साथ-ही-साथ अनेक कछुए वाली सारी निसरणी पानी में ढसक गई। तैरने का साधन हिल उठा। कछुए पानी में जा गिरे। उनके अरक्षित शरीर पर ऊपर से बाणो की वर्षा होने लगी। परमारने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर जूनागढी द्वार की रक्षा की।

: ७ :

परमार गिरे और सैनिकों में हाहाकार मच गया। उसी क्षण भीम-देव महाराज और उनके बाणावलि आ पहुँचे। महाराज ने परमार को गिरते देखा, निसरणी को सरकते देखा, नीचे जल में कछुओ की संख्या, घोडे और तैरने के साधनों को भौरा देखा। परमार उनका शिष्य था। पुत्र से भी अधिक प्रिय और मित्र से भी अधिक विश्वस्त था। उन्हीं की इच्छा का अनुकरण कर वृद्ध माता-पिता और नव परिणीता वधू को छोड़ वह रण चढ़ने आया था। "भीमदेव, भीमदेव!" पुकारता वह मौत के घाट उतरा था, भीमदेव ही के लिए, उनके पाटण के लिए अपने इष्ट

देव के लिए। महाराज और सब कुछ भूल गये–एक मात्र स्नेही त्रिलोचन पाल का स्नेह ही उन्हें याद रहा। उन्होंने नीचे देखा। घायल परमार अकेला बाघ के समान लडता था। "परमार! हिम्मत रख।" कह कर महाराजने गर्जना की और वे एक छलांग मारकर मोटमें जहां परमार सौ योद्धाओं के बीच पानी में लड रहा था वहां जा पहुँचे। इस धृष्टता के कारण सब वीरों के हृदय कांप उठे परन्तु पट्टनी बाणावलि मालिक की सेवा में मृत्युको खेल समझते थे। एकके बाद एक पच्चीस वीर महाराज के पीछे कूद गये और शेष बाणों के द्वारा पार खडे हुए हाथी और सैनिकों को वेधने के लिए कोट पर ही रहे। नीचे खाई में भयानक युद्ध चला। भीमदेव महाराज ने गिरते ही परमार को मारने के लिए उद्यत योद्धा का शिरच्छेद किया और पास ही खाली तैरते हुए घोडे पर वे जा चढे।

"परमार! घोडे पर चढ जा।"

"महाराज चढता हूं" परमार ने कहा, और अन्धेरा छाई हुई आंखों से वह घोडा ढूंढने लगा। यवन योद्धागण व्याकुल हुए। प्रतिपल ऊपर से एक योद्धा खाई में कूदता और किसी-न-किसी को डुबो देता। पानी में ही हाथमहाथी शुरु हुई। खन्जर और तलवारें चमकने लगीं। परन्तु पट्टनी तो थे पच्चीस और दुश्मन थे असंख्य।

राय आ पहुँचे और भीमदेव महाराज का अप्रतिम साहस देखकर उनमें भी शौर्य का संचार हो गया। परन्तु वे चतुर भी थे। युद्ध की कला में अनिर्धारित आक्रमण ही अकल्पित विजय दिलाता है—यह उन्हें मालूम था। तुरन्त अपने योद्धाओं को साथ ले कोट की सीढ़ियां उतर नीचे द्वार के पास दौड गये और पलक में उन्होने दरवाज़ा खोल दिया। क्या हो रहा है इसका भान किसी को न रहा। बाणों की मारामारी चल रही थी, अतएव धनुर्धारी तो देख भी न सके। इतने ही में राय रत्नादित्य और उनके सोरठी भटों ने पुल की डोरियां तोड डालीं और उस पर बैठे हुए मनुष्यों को मार डाला या डुबो दिया और

पानी में लड़ते हुए महाराजा की मदद के लिए तैरते-तैरते जा पहुँचे।

"जय सोमनाथ !" राय ने गर्जना की।

"जय सोमनाथ !" महाराज ने प्रतिशब्द किया।

"जय सोमनाथ !" परमार ने प्रयत्न पूर्वक अन्तिम जय घोषणा की।

पाव घड़ी तक मनुष्यों का ओघ उमड आया, शस्त्रों की बिजली चमकी, घोषणा की गर्जना हुई, ऊपर तीरों के बादल छा गए और उनके भटों ने भीमदेव महाराज, परमार और जीवित बचे हुए सत्तर पट्टनियों को दरवाज़े मे ले लिया।

जिस तरह जूनागढ़ी दरवाज़े की अर्गला खुली थी वैसे ही फिर वह बन्द हो गई। कोट के ऊपर स्थित पट्टनी धनुर्धर दद्दा की सरदारी मातेहती में यवन सैनिकों को भगाने में लगे थे। लहूलुहान परमार को गोद मे सुलाकर भीमदेव महाराज ने उसे पानी पिलाया। उस बालवीर ने आखे खोली और अपनी निज़र भीमदेव पर लगा दी। "भीमदेव महाराज !" उसने टूटते हुए स्नेह भरे मन्द स्वर से कहा।

"परमार ! परमार !" आँख में आंसू के साथ भीमदेव उससे लिपट गए।

"तूने आज अमर कीर्ति पाई है।"

"महाराज, जय सोमनाथ !"......परमार का मन्द होता हुआ स्वर यथा कथाञ्चित् निकला—"अब तो म...हा...रा...ज" और उसने अपनी गर्दन नीचे गिरा दी।

और परमार की छाती पर सिर पटक कर महाराज लम्बी सांस लेने लगे। पीछे आकर गुरुदेव ने महाराज के कन्धे पर हाथ रखा, "महाराज ! परमार ने तो कर्त्तव्य की वेदी पर अपना सिर चढ़ाया और वह कैलाशवासी हुआ। अभी अपना कर्त्तव्य हमारे सिर पर है। खड़े होओ तुम्हारा घाव मैं अभी बांध देता हूं"—यों कहकर गुरुदेव ने

महाराज के हाथ पर लगे हुए घाव पर पट्टी चढाई।

"सच बात है। गुरुदेव!" इतना कहकर भीमदेव उठ खडे हुए और मित्र की आँखें मीच कर उसके शव को गुरु को सौंप कर वे पुनः कोट पर गये।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

वही रात

: १ :

महाराजा भीमदेव वीरा को लेकर सब ओर निरीक्षण करने निकले। मुख्य द्वार पर तो दुश्मन पीछे हट चुके थे और धीरे-धीरे हाथी पर बैठे हुए सैनिक मुँह मोड रहे थे। घुड़सवार तीर छोड़ रहे थे और उनका जवाब पट्टनी बराबर दे रहे थे।

भीमदेव महाराज उस मोर्चे को दृढ़ बनाकर विमल मन्त्री को सौंप कर स्वयं द्वारिका-द्वार की ओर गये। उस द्वार के सामने ही खाई और समुद्र का संयोग था अतएव उसका संरक्षण सहल था। वहां मन्द-मन्द युद्ध चल रहा था और राय खड़े-खड़े गहरा विचार कर रहे थे। महाराज जाकर उनसे लिपट गए।

"राय! धन्य हैं आप, आज आपने मुझे प्राणदान दिया" उन्होंने कहा।

"इसमें क्या है, आपको बचाने में तो मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया है" राय रत्नादित्य ने कहा।

"आपने दरवाज़े खोलने का खूब साहस किया—दूसरा कोई होता तो थरथरा जाता।"

"परन्तु इतने ऊँचे कोट पर से कूदने की मुझमें हिम्मत न थी" राय ने हँसकर उत्तर दिया और फिर दोनो वीरों ने आलिङ्गन किया।

"यह लोग यहां पर यह खेल-कूद क्यो कर रहे हैं?" महाराज ने पूछा।

"मैं भी यही विचार कर रहा हूं—उनकी खुशी खोटी नज़र

आती है" राय ने कहा । वे विचार-विचार ही में अपनी मूछों पर ताव देने लगे। "मुझे ऐसा मालूम होता है कि सांझ पड़ने पर कुछ थोड़े-बहुत सैनिक यहा रखने पड़ेंगे।"

"ठीक, मैं कुछ लोगों को यहा भेजता हूं।"

"और महाराज! आप सुबह से परिश्रम कर रहे हैं, मुझे तो बहुत कम थकान हुई है। इस समय चारो ओर कुछ शान्ति है अतः ज़रा विश्राम कर आओ, तो ठीक होगा—किसे मालूम रात को क्या होगा?"

भीमदेव महाराज कोट पर से नीचे उतरे। उस समय एक ओर कुछ साधु मरे हुए सैनिको के शवो को एकत्र कर रहे थे। गुरुदेव अन्तर-कोट के मन्दिर में घूम रहे थे, आहत सैनिको की साल-सम्हाल मे लगे हुए थे। वे गङ्ग सर्वज्ञ, जिनकी चरण-रज राजा महाराजा सिर चढाते थे, उस समय एक साधारण वैद्य के समान पीड़ितो के दुःख को दूर करने में संलग्न थे। दीपा कोठारी, जो आये उसे खिलाने-पिलाने में लगा हुआ था। इसी सारी व्यवस्था को देखते, किसी को किस तरह, तो किसी को किस तरह प्रोत्साहन देते महाराज जो मिले उससे अभिनन्दन स्वीकार करते हुए अपने आवास की ओर चले गये।

परकोट में मन्दिर के सामने हरदत्त आता हुआ मिला। वह भीमदेव महाराज के सामने खड़ा रहा और सिर पर चिमटा रखकर बोला "तेरे सिर मौत घूम रही है—महामाया को भ्रष्ट करने वाले!" भीमदेव ने पहले तो तलवार आधी खीच ली परन्तु फिर निःशस्त्र बाबा को देखकर हँसकर चल दिये, और हरदत्त अपने रास्ते चला गया।

जब महाराज अपने आवास पर पहुंचे तो उनके पैरो मे स्फूर्ति थी, भीतर आकर उन्होंने आशापूर्ण नयनों से चारो ओर दृष्टिपात किया। वीरा समझ गया। "महाराज! वह जो पागल छोकरी है—वह अटारी देखी, वहां मा के साथ सारे दिन बैठी-बैठी आप ही को निहारती रहती है।"

"वीरा ! सारा ही जगत् ऐसा पागल हो जाय तो कैसा ? मैंने एक बार उसे अपनी ओर देखते हुए देखा था।"

"अभी तो उसे तुम्हारे सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं।" वीरा ने उपहास किया।

"खड़ा तो रह ! तुझे भी और कुछ नही सूझता।"

महाराज ने बख़्तर उतार दिया, कुछ खाया और सो गए। नींद आने से पहले जैसे कोई हिरण हो इस तरह दौड़ता हुआ मालूम हुआ। उन्होने आंखे खोली और चारो ओर देखा।

गुलाबी पैर दौडते थे। उड़ते हुए वस्त्रो में एक सुकुमार शरीर उछल रहा था। खुले बिखरे हुए केश-पाश में हाँफता हुआ लाल मुख। और वही कहता था "मां, मां,महाराज ने तो आज हद कर दी।"

भीमदेव हँसे और धीरे से बोले "हद कर देना बाकी है।" चौला ने महाराज को देखा और वह शरमा गई।

......और अपने वस्त्रों को सङ्कलित कर उसने नीचे देखा और वह हँसती, शरमाती चल दी। थके हुए भीमदेव पासा बदल कर सो गए। और दौडते गुलाबी पैर, हाँफता हुआ मुँह और सुमधुर नयनों का सव्रीड सत्कार उनके स्वप्न मे निनाद कर रहा था।

महाराज लगभग एक पहर सोये होंगे कि एक बडे कोलाहल ने उन्हें जगा दिया। वे एकदम चौंक उठे और शस्त्र लेकर बाहर छत पर गये। सैनिको की टोलियाँ कूदती, उछलती, नाचती, गाती, "जय-सोमनाथ" की घोषणा करती उनके आवास पर आरही थीं। सबसे आगे गुरुदेव, राय, दद्दा चालुक्य मशाल लेकर आ रहे थे। विमल मन्त्रि सबसे आगे बधाई के लिए दौडता आ रहा था। महाराज ने छत से नज़र डाली। वहां बड़ी दूर गुरुदेव के आवास की बिलकुल दूसरी बाजू पर गङ्गा और चौला झुक-झुककर उस सत्कार करने वाले समूह को देख रही थी।

"विमल ! क्या हुआ ?" हंसते हुए महाराज ने कहा।

"यवन की सेना पीछे हट गई।"

"क्या सचमुच हमला करना छोड दिया?"

"हमले की क्या बात? तीनों तरफ सारी सेना ठीक आधे योजन पीछे हट गई है। आप जीते।"

ज्यों-त्यों महाराज शस्त्र-सज्जित हो नीचे उतरे और सारी सेना ने "भीमदेव महाराज की जय" के नारो से उनका अभिनन्दन किया।

महाराज ने गुरुदेव को साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। "गुरुदेव! आप के आशीष से ही है ही हमारी शक्ति।"

"वत्स! चिरञ्जीव! कृपा तो भोलेनाथ की है, मै तो केवल उनका दास हूँ। परन्तु तू अपने शौर्य के कारण अनन्तकाल से उपमेय है। धन्य है। उठ वत्स! आ मुझसे मिल तो ले—यों कहकर गुरुदेव ने महाराज को गले लगाया और फिर राय, दद्दा, विमल और बाद में अन्य सेनापतियो से वे मिले। "जय सोमनाथ" और "भीमदेव महाराज की जय"का नाद होता ही रहा। शङ्ख और भेरी,मृदङ्ग और नगाडे सैनिको ने बजाये। कितने ही सैनिक तो हर्ष के आवेश में रास खेलने लगे।

"महाराज! सांझ की आरती का समय है। समस्त यश के दाता भगवान् के चरणों में जाना चाहिए" और सब हँसते, कूदते और किलोल करते भगवान् के मन्दिर में गये। सारे कोट में सेना फैली हुई थी। गुरुदेव ने ध्यान किया और भगवान् की आरती की। सारी जनता शान्त थी। उन्होंने आरती नन्दी के आगे रखी और आशीर्वचन कहे। सबने उन्हें शान्तिपूर्वक श्रवण किया।

"वत्स! भगवान् की रक्षा के लिए तैयार हुए योद्धाओ को मेरे अनेक आशीर्वाद है। तुम शत शरदों तक जीते रहो और अधर्म का विनाश करके इस संसार में कीर्ति और परलोक मे कैलाशवास प्राप्त करो। महाराज! आपका राज्य अमर रहे। आपकी यवन विनाशिनी कीर्त्ति यावच्चन्द्र दिवाकर वीरो के लिए पथ-प्रदर्शिनी हो। युग-युग जीओ महाराजाधिराज परम भट्टारक श्री भीमदेव चालुक्य!" पल-भर के लिए

सर्वत्र अभङ्ग शान्ति व्याप्त होगई।

एक अन्धेरे खम्भे के पीछे से एक जटाधारी ऊँची भयङ्कर आकृति आगे बढी। गुरुदेव खडे थे। वहां से कुछ दूर—मानो स्वयम्भू शङ्कर प्रकट हुए हों इस तरह अपना चिमटा गुरुदेव के सामने रखकर, सबको सुनाई देने वाली भयङ्कर आवाज़ से वह आकृति बोली—

"धर्मद्रोही! तेरे अभिमान के द्वारा रचित ये सब प्रासाद धूल में मिलेंगे। महामाया को भ्रष्ट करने वाले भीम! तू, और धर्म का कलङ्क-रूप यह गुरु दोनों हो मरोगे। और जहां तुमने अपनी अनीति के काण्ड रचे थे वहां गिद्ध उडेंगे और कुत्ते रोयंगे।" स्वर प्रौढ, भयानक एवं कम्पित करने वाला था। एक हज़ार योद्धा तलवार निकाल कर बोलने वाले को टुकड़े-टुकडे करने के लिए उद्यत हो गए। भीमदेव ने तलवार निकाली, राय ने कटार खींची, देहा थर्राते हुए आँख मींचकर बैठे। एक भीषण कोलाहल और धमा-चौकड़ी मच गई।

गुरुदेव आगे बढ़े और एक भव्य एवं अजेय अभिनय से भीमदेव और राय को बिठाकर "वीरो! वीरो! मेरे वीरो!"—उन्होंने बोलना शुरू किया और मशाल के तेज में श्वेत दाढी और विशाल त्रिपुण्ड से तेजस्वी वृद्ध के अभेद्य गौरव का प्रभाव पड़ा और "शी—शी—सुनो—चुप रहो"—ऐसी ध्वनि उत्तरोत्तर मन्द होती गई और शान्ति स्थापित हुई—"मेरे वीरो! तपश्चर्या और वर्त्तमान युद्ध की तैयारी के बोझ के फलस्वरूप मेरे शिष्य शिवराशि का मस्तिष्क फिर गया है। उसके कथन पर आपको ध्यान नहीं देना चाहिए। आप जैसे वीरों का तो क्षमा ही भूषण है।"

इतना कहकर वे शिवराशि के निकट आए। मानो भयङ्कर, उग्र जटा और कम्बल धारी रुद्र और खुले श्वेत केश और दाढ़ी के कारण सौम्य, दयालु एवं भोले शम्भु हों: इस प्रकार दोनों ऊँचे और तेजस्वी—एक अस्वस्थ, व्याकुल परन्तु कठोर; दूसरा शान्त, स्वस्थ एवं दयार्द्र। कुछ देर तक गुरु-शिष्य एक दूसरे की ओर देखते रहे और तत्पश्चात्

स्नेहशीला माता के स्वर के समान गुरुदेव के वचन सुनाई दिए—"शिवराशि ! जो संयम छोड़ देता है वह अधोगति को प्राप्त होता है। चल, तेरा स्वास्थ्य तेरे काबू से बाहर होगया है—तू बीमार है।"

बिना कुछ कहे शिवराशि ने होंठ पीसे और बोलने का निष्फल प्रयत्न किया।

"चल बेटा चल" गुरुदेव ने स्नेह पूर्वक कहा। शिवराशि के अन्तःकरण में एक प्रचण्ड ज्वाला उठी, उसका गला भर आया और उसके सिर में अग्नि की चिनगारियां उडने लगी। उसे चक्कर से आने लगे, और भीषण अंधकार उसकी आँखों के आगे छा गया। उस परिचित वृद्ध के मुँह पर एक तमाचा मारने की उसकी इच्छा हुई, परन्तु हाथ ने हुक्म नहीं माना।

"चल, बेटा चल !" मानो साँप को मन्त्र-वश करते हो इस तरह गुरुदेव ने कहा।

"चल बेटा" इन शब्दों में कछ अधिकार की ध्वनि थी।

शिवराशि ने एक बार प्रयत्न किया, परन्तु बरसों की आदत और उस सौम्य एवं स्नेहार्द्र आवाज की मोहिनी वह दूर न कर सका। उसने चारों ओर उग्र शस्त्र-सज्जित योद्धाओं को देखा। पुनः गुरुदेव की निर्भय आँखों को देखा और उसे भान हुआ कि वह भव्यता यों ही संगृहीत न हुई थी।

"चल !" कहकर गुरुदेव ने उसके कन्धे पर हाथ रखा, और शिवराशि, अन्दर-ही-अन्दर मन में कुछ-का कुछ सोचता, अनेक विचारों में उलझता, पालतू जानवर के समान पीछे-पीछे हो लिया।

दोनों अदृश्य हुए। राय ने "भीमदेव महाराज की जय" की गर्जना से मौन भङ्ग किया। मानों सब स्वप्न से जगे हो इस तरह बोलने लगे। घोषणा हुई, और मृदङ्ग एवं शङ्ख के नाद से सबने आज्ञा स्वीकार की।

"मेरे वीरो ! हर्ष में मग्न हो हमें बैठे नहीं रहना चाहिए। अभी

हमें अपने कैलाशवासी मित्रों का अग्नि संस्कार करना है और खा-पीकर सबको अपने-अपने स्थान पर तैयार रहना है, कारण दुश्मनों के कैसे-कैसे प्रपञ्च होंगे, यह कौन कह सकता है।

और वहां से सब लोग द्वारिका-द्वार पर गये और अपने साथियों का अग्नि-दाह किया। तीन हज़ार और दो सौ वीरों ने कैलाशवास किया था, और डेढ़-एक हज़ार घायल पडे हुए थे। सबको सन्तोष इसी बात का था कि एक-एक गुजराती ने कम-से-कम पांच-सात यवनों का संहार किया था। रात को भीमदेव महाराज और राय फिर कोटपर पहुंचे, और नीचे सारी व्यवस्था की जांच कर आये। आगामी कल की तैयारियां यथोचित हो रही थीं अतएव वे अपने-अपने आवास लौट गये।

"महाराज!" राय ने कहा, "मैं कुछ देर आराम करके वापिस आता हूं—यह अमीर पीछे हटा है इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य प्रतीत होता है।"

"ठीक, अवश्य मुझे भी आकर जगा देना" भीमदेव महाराज ने कहा।

: ३ :

महाराज भीमदेव जब अपने आवास पर गये तब उनके कानों में स्वर्गीय सङ्गीत गूंज रहा था। उन्होंने अप्रतिम शौर्य दिखाया था। दावानल के समान महमूद को पीछे हटाया था। सेना से सत्कार एवं अमर कीर्त्ति उन्हें मिली थी। अब बाणावलि भीम का नाम कुन्तीपुत्र भीम के साथ जगत् के वीरों में परिगणित होगा। भगवान् भोलानाथ की दी हुई शक्ति की सफलता को सिद्ध कर वे कैलाश में भी अपना स्थान निश्चित कर चुके थे। साथ-ही-साथ पर्वतों से बहती हुई स्रोतस्विनी के समान वही नर्तकी कल्लोल करती, आनन्दित होती, उनसे मिलने को उत्सुक, उछलते हुए श्वेत अंगों की अधीरता के कारण मनोहारि उनके पास दौडी चली आ रही होगी। हर्ष से प्रफुल्ल हो उनका मस्तिष्क चौला का विचार करने बैठा। वह गुरुदेव की कन्या कहलाती

और वह स्वयं अपने को पार्वती मानती थी। वह अद्भुत बालिका थी। पृथ्वी पर तो उसका पैर टिकता ही न था। जगत् का प्रपञ्च उसे स्पर्श भी नही करता था। जिस तरह वह मन्दिर मे नाचती थी उसी तरह सारे जीवन के पल-पल मे अपूर्व छटा से वह नाचती रहती थी। चन्द्रिका युक्त निर्मल जल की एक छोटी-सी लहरी के समान वह पाषाणों पर से नाचती जा रही थी। उसके हास्य मे, अश्रु में, भय मे विचार न था, केवल सरसता के सत्व के समान जीवित रहने और भोगने का कौतूहल-मात्र था।

उनकी दो रानियां थीं, सुन्दर, सुशील एवं चतुर। उन्होने उसके जीवन का भार हलका किया था। एक आँख की पलक से भी उन्होंने कभी उनका वचन टाला न था। उन रानियों के कारण उनका जीवन सुखी एवं समृद्ध था, तथापि चौला का स्पर्श केवल सुख तथा समृद्धि तक ही सीमित न था। उसके साथ वे कुटुम्ब की, राज-पाट की बात-चीत नहीं कर सकते थे। ऐसी बातचीत करने का उनका मन भी न होता था। चौला के साथ राजकीय खटपट की बातचीत करना किसी सुवासित मधुर पुष्प के द्वारा घोड़े की टूटी हुई जीन को जोड़ने का यत्न करना था। वह तो चन्द्र के तेज से, पुष्पों के सुवास से, जलतरङ्गो के नृत्य से निर्मित थी। उसके साथ तो पृथ्वी तल से दूर और अति दूर जाकर, अगाध सागरो से ऊपर, हिमाच्छादित गिरिवरो से कही उच्च विशाल व्योम में विहार किया जा सकता था। उसका जीव पार्थिव बन्ध को तोड़कर किसी अद्भुत निरङ्कुशता मे उड़ता रहता था। उसके विचार पल-पल निष्कलङ्क सरसता में भरे नूतन अवतार लेते, और उसकी शक्ति अगाध और उसका उल्लास सहस्रधा हो जाता था।

ऐसे-ऐसे विचार करते वे अपने आवास पर आ पहुँचे। उन्होने शस्त्र निकाले, फिर कुछ खाया और वे छत पर गये। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का चाँद गगन में उदित था। क्षण-क्षण मे चारों ओर होती हुई आवाज़ कुछ कम हुई और शान्ति उस रुधिरस्रावी दिन को भुला

रही थी। महाराज अधीरता के कारण इधर-से-उधर चक्कर लगा रहे थे और थोड़ी-थोड़ी-सी देर में कान लगाकर चौला की पद-ध्वनि की राह देख रहे थे।

परन्तु चौला की चरण-चाप कहाँ से सुनाई दे ? वह किसी छप्पर की पांख के नीचे अन्धेरे कोने में छिपकर अधीर बने हुए महाराज को हँसते नयनों से देख रही थी।

सारे दिन उसके मनमें थनगन-थनगन की ध्वनि होती रही। मन्दिर के शिखर की अटारी कैलाश थी, महाराज की पीली पगड़ी पिङ्गल केश की जटा थी। महाराज की कलगी तो चन्द्रकला थी। उसकी दृष्टि में पाटण नरेश भीम रण में न चढे थे, परन्तु भगवान् शम्भु स्वयं त्रिपुरासुर के साथ युद्ध में उतरे थे। ब्रह्मा स्वयं गङ्ग सर्वज्ञ हो, उनके सारथी बने थे। विष्णु उनके बाण बने थे, वेद उनके अश्व थे और ध्रुवादि ज्योतिर्गण उनके आभूषण बने हुए थे।

सर्वदेवमय शिव पृथ्वी को कम्पायमान करते इधर-से-उधर घूम रहे थे। और उसे आकाश में अप्सराओं से वलयित ऋषि वृन्द उनकी स्तुति करते सुनाई दे रहे थे। दण्ड को हाथ में लिये हुए जटाधारियों को नृत्य करते उसने देखा।

वह सबको पहचानती थी। वीरा चावडा नन्दी का स्वरूप था। विमल मेहता गणपति था। राय रत्नादित्य देवताओं मे श्रेष्ठ इन्द्र थे और चारों ओर गण जय घोषणा कर रहे थे।

कैलाश पर वह—हिमवान् पर्वत की कन्यका बैठी हुई पतिदेव की बाट जोह रही थी। अभी आवेंगे, साथ ले जावेंगे और दोनों त्रिपुर-विजय करेंगे।

सामने त्रिपुर की नगरी विस्तृत थी, उसने त्रिपुर दैत्य को भी देखा था—हरी पगड़ी और लाल दाढी में-भयङ्कर। उसने अपने शम्भु को पाशुपतास्त्र खींचते देखा था। हज़ारों दैत्य विद्ध हो प्राण खो चुके थे।

उसने महादेव का क्रोध देखा था। भयभीत देव सेना चारों ओर से

प्रणाम करती उसने देखी थी। अन्ततः त्रिपुर विजय हुआ। हर्ष में उत्फुल्ल देवगण जिसमें ब्रह्मा और इन्द्र प्रमुख थे, वहां आकर स्तुति करके चले गये, यह सब उसने प्रत्यक्ष देखा था।

उसने उस समय अपने अद्भुत शिवजी देखे थे, कोटि सूर्य के समान प्रभा वाले, सुचारू नेत्र एवं तेजस्वी और अनुभव आभरणों से अलंकृत वस्त्र धारण किये हुए और मनोहारी मुकुट से सुशोभित। उसी समय उसके मुख कमल से शिवपुराण के अनेक भार उत्साह मे कहे हुए श्लोक निकल रहे थे, विजयी महादेव उस समय बाट जोह रहे थे।

भीमदेव के मन में अशान्ति एवं उद्विग्नता का भीषण समुद्र ठाठे मार रहा था, वह सोच रहा था कि अभी तक चौला क्यों न आई। उसने पैरों की ठुमकी दी। उन्होंने कान लगाकर सुना। अधीरता से आकुल भीमदेव को देखने में उसे बडा आनन्द आ रहा था, किन्तु वह हँस पडी। उसकी हँसी भीमदेव को सुनाई पडी। वे छप्पर की पाख में जा घुसे, पैर पकड कर उसे उन्होंने खींच लिया और फूल के समान उसे हाथ में उचक लिया। उनका विजय हास्य चौला को आकुलित कर रहा था, परन्तु भीमदेव ने इतने ही मे उसे अपने परिरम्भ मे ले लिया।

"ओ, ओ, ओ, ओ—दब गई।"

"अच्छा दब गई हो। मुझे कभी से यहा खडा कर रखा था।"

"आपको मेरी प्रतीक्षा कहां थी, महाराज! मैं कभी से आपका सत्कार करने के लिए यही बैठी थी।"

"अरे तुझे ढूँढ कर तो मेरी आंखे थक गई।"

"खड़े रहिए शिवजी! मै आपकी अर्चना के लिए फूल और चन्दन लाई हूं, आज आपने त्रिपुरासुर को पराजय किया सो पूजा किये बिना कही काम चल सकेगा?" यों कहकर वह महाराज के हाथों मे से कूदकर नीचे उतरी।

"चौला ! यह हार एक के लिए नहीं दो के लिए है", कहकर भीमदेव ने चौला के गले में अपना हार डाल दिया। और दोनों खूब हँसे।

"भोले नाथ ! प्रसन्न हो जाओ ! भगवान् प्रसन्न हो जाओ, और यह भी बताओ कि ऐसे-के-ऐसे ही बने रहोगे क्या तुम सदैव ?"—चौला ने कहा "पार्वती और परमेश्वर"। और फिर चौला भीमदेव की भुजाओं में उपगूढ़ होगई। अद्भुत रात्रि थी। चन्द्र भी पीयूष की वर्षा कर रहा था। नयन निमीलित करके चौला अपने भगवान् की शरण में गई। ऐसे सुख की उसने कभी कल्पना भी न की थी। वह जन्मतः नर्त्तकी थी, भक्ति भाव के कारण वह प्रगल्भ होगई थी। दोनों भुजाओं को महाराज के गले में लिपटाकर वह झूल रही थी। भीमदेव की रगों में भी तूफान उठने लगा। उसे उठाकर वे अपने कमरे में ले आये और कपाट मुद्रित किये।

हाथ में नंगी तलवार लिये सोपान पर बैठा हुआ नन्दी चन्द्रमा की ओर एक आंख मीचकर देखता हुआ मुसकराता रहा।

: ४ :

राय को चिन्ता हुई थी वह खोटी न थी। महाराज गये और तुरन्त ही उसके कानों में कुछ आवाज़ सुनाई दी। जहां उनकी दृष्टि न पहुँच पाती थी वहां दरिया के किनारे कुछ ठोका-ठोकी, कुछ पानी में गिरने का धमाका, हो रहा था; दूर किनारे पर कोई नौका पानी में गिरी हो, अथवा किसी व्यक्ति के तैरने जैसी आवाज़ हो रही थी।

चन्द्र की किरणों में वे कुछ देख न सके, तथापि आदमियों को भेजकर रात ही में भिन्न-भिन्न कंगूरों पर पहरा देते हुए सेनापतियों को उन्होंने सूचना दे दी और हलचल किये बिना ही उन्होंने हज़ार धनुर्धर देखते-देखते एकत्रित कर लिए। दूर जहां चन्द्रिका की आभा गिरती न थी वहां कुछ आदमियों की हलचल भी दिखाई दे रही थी।

समुद्र जहां खाई से मिलता था वहां भूशिर के ऊपर कुछ दूर एक

बड़ा-सा आम्रकुञ्ज था। उसके नीचे मनुष्य एकत्रित थे, यह स्पष्ट दिखाई पड़ता था। उस समय कोई कोट पर हमला करेगा यह सम्भव न था, कारण महमूद की सेना खाई से दूर थी। अतएव उस प्रवृत्ति का उद्देश्य कुछ भिन्न ही प्रतीत होता था।

बड़ी दूर क्षितिज पर राव कमा लाखाणी के प्रवहण पटे थे। उनमें से एक बहुत धीरे धीरे प्रभास की ओर आ रहा था। यह भी सम्भव था कि यवन सेना की प्रवृत्ति उस आते हुए प्रवहण को अटकाने या पकड़ने की हो, और यह भी संभव था कि यह प्रवृत्ति यवन-सेना की न हो। कुछ सैनिक चांदनी में नौकाओं में भी पड़े हुए थे।

आवाज़ देकर या मशालों के इशारे से प्रवहण को न आने के लिए स्पष्ट रीति से सुझाना जोखम का काम था। कारण, यदि दुश्मन का ध्यान उस ओर न गया हो तो वे उस ओर आकर्षित हो जाय। दुश्मन की उधर निगाह नहीं है नाहक इस भरोसे चली आती हुई उस नौका को आने देने में भी भारी खतरा था।

राय ने कुछ देर विचार कर, साहस के साथ भय का सामना करने का निश्चय किया। उसकी सेना में वीरावलके दो कुशल तैराक खारा और नीरा नाम के थे। राय ने उन्हें बुलाया और मशालें बुझा देने का आदेश दिया। और रस्से मंगवा कर गढ पर से दोनों तैराकों को खाई में उतार दिया। दोनों के द्वारा दिन-भर के समाचार और प्रभास की ओर आने में हानि का संकेत कराया।

जब खारा और नीरा दोनों लगभग पांच सौ हाथ दूर गये होंगे तब राय को अमराई में चल रही हलचल का रहस्य समझ में आ गया। सैनिक चुपचाप किनारे से तैरने के साधनों की कतार-की-कतार खींच रहे थे।

राय व्याकुल हुए। कारण, द्वार से मनुष्यों को बाहर निकाले तो वे उन तरणियों के पास पहुँचने से पहिले ही समाप्त हो जायं। यदि दुश्मन तरणियों को एकत्रित कर लें और उसके मध्य यदि नौका आ

लगे तो वह संकट में पड़ जाय, और वह दुश्मनों के हाथ पड़ जाय तो प्रभास को धक्का पहुंचे।

वे सैनिकगण तरणियों को जोड़ कर वहां से चले जायं तब तक रुके रहना राय ने योग्य समझा। शत्रु ने सैकड़ों तरणों को एक दूसरे से बांध कर एक बड़ा भारी सेतु बना लिया था, और खाई के मुंह से कुछ दूर, जहां तीर न पहुंच सके वहां किनारे पर ठोके हुए खूँटो के साथ बांध भी दिया था।

जब युद्ध का प्रारम्भ हो तब उसे खाई में खींच लाने का विचार भी मालूम देता था जिससे कोट पर चढ़ना सहल हो जाय। उस महातरण को तो डुबो ही देना चाहिए, परन्तु किस प्रकार? यह गहन प्रश्न राय को व्याकुल कर रहा था।

प्रथम प्रवहण तो दूर जाकर रुक गया था और उस पर बैठे हुए सैनिक उतरने लगे थे। राय को कुछ आश्वासन हुआ। खारा और नीरा पहुंच गये ऐसा प्रतीत होता था और वह प्रवहण दुश्मनो के हाथ में पडने से बच गया था।

सैनिक जब सेतु को खूंटो से बाँध रहे थे उस समय छलक-छलक-छलक दूर से पतवारो की आवाज़ आ रही थी। उस समय राय ने बडे ध्यानके साथ उधर देखा अवश्य था परन्तु बराबर कुछ दिखाई नही दिया था। बाद में वह आवाज बन्द हो गई थी। जब सेतु बांधने वाले सैनिक चले गये तब जो भी हो सो सही, इस निश्चय पर पहुंचकर राय ने पचास सर्वोत्तम तैराक सैनिक बुलाये और उन्हे दुश्मनो की तरणि डुबोने के हेतु कोट पर से उतारने का प्रबन्ध करने लगे।

रस्सो को तैयार कर, कोट से लटका कर सैनिक उतरने के लिए तैयार हुए और मानों शेषनाग सोकर उठे हों इस तरह सारा सेतु हिल उठा। तैरने के साधन एक दूसरे से कुछ जुदे होने लगे और जैसे किसी ने उन्हे बुला ही लिया हो इस प्रकार वे तेज़ी से बहते हुए पानी के साथ खिचे हुए जाने लगे।

वे स्वयं जाग रहे थे या ऊंघ रहे थे इस बात का भी निश्चय राय को न था। वे केवल अपनी आंख मसल रहे थे।

तरणियां कहीं बड़ी दूर तक जब बह गईं तब अमराई में कोलाहल मचा। राय मन ही मन हंसे। भोले नाथ की कृपा के बिना ऐसा चमत्कार कभी न हो सकता था।

इतने ही में कोट के नीचे तीन आदमी तैरते आये और द्वार की सीढ़ियां चढ़े।

"बापू!" खारा ने जल कुकड़ी के समान स्वर से कहा। दूसरे तैराकों ने उसका स्वर पहिचाना। राय ने तुरन्त कोटपर से रस्से छोड़े और दो के बदले तीन पुरुष हांपते-हांपते ऊपर चढ़ आये।

"ये कौन है?" तीसरे अपरिचित पुरुष को देख राय ने खारा से पूछा।

"मुझे नहीं पहिचाना? मैं सामन्त चौहान।" राय ने आवाज़ पहिचानी। कुछ मुछ परिचित सी मालूम हुई और उन्होंने सामन्त को गले लगाया।

"कौन चौहान राज! इन शत्रुओं के तरणों को चलता कर दिया?"

"क्या करूं, हम तैरते-तैरते आरहे थे और मैंने उन तरणों को देखा और मेरी समझ में सारा चक्र आगया। आपके इन खारा, नीरा ने और मैंने जाकर तरणों की सब रस्सियां काट डाली," कुछ शरमाते हुए सामन्त ने कहा।

"चौहान! तुमने तो प्रभासगढ बचाया" राय ने आनन्द से कहा, "मैं कभी से विचार कर रहा था कि इस विपत्ति से कैसे बचा जाय। धन्य है चौहान!"

"धन्य तो आप सबको है। मैंने आज दिन की सब घटनाएं सुनी। भीमदेव महाराज कहां हैं?"

सारे दिन उन्होंने इतना कठिन परिश्रम किया है कि उन्हें इस समय कष्ट नहीं देना चाहिए। वे अभी सोये हैं। परन्तु आप अभी यहां

कैसे आये ?"

"राय !" आप सब पाटण छोड़कर जब यहां, आये, तब ही गुरु नन्दीदत्त, मैं और आपके दिये हुए तीन सौ मनुष्य आसपास के जङ्गल में घुस रहे। महमूद वहां आया और पाटण को निर्जन देखकर दुःखी हो गया। बाद हमने घोघाबापा के भूत की कथा सेना में फैलाई। अतएव महमूद पाटण छोड़कर सीधा इधर ही आया।

"और पाटण ?"

"जब वह चला जा रहा था तब महाराज का पद भ्रष्ट भाई दुर्लभसेन आया और महमूद की शरण गया। महमूद ने उसे पाटण की राजगद्दी दे दी और पांच सौ राजपूत योद्धा दे दिये और स्वयं लौट आने तक पाटण सम्हालने का काम दुर्लभसेन के सुपुर्द किया।

"ऐसा ? तो फिर तुम्हारा क्या हुआ ?"

फिर तो बात सहल होगई थी। दुर्लभसेन ने प्रातःकाल से ही आनन्दपूर्वक राज्य करना शुरू किया। दोपहर को नन्दिदत्त नामक ब्राह्मण घोघाबापा के भूत से घबराकर दुर्लभसेन की शरण गया। दूसरे दिन आसपास के समस्त ग्रामीण जनता ने भूत से व्याकुल हो पाटण की शरण ली। भूत की कथा से पाटण के वीर काँपने लगे। महाराज दुर्लभसेन ने कपाट बन्द कर अन्दर-ही-अन्दर रहना शुरू किया।

राय खिलखिला कर हँसे और पूछने लगे, "फिर ?"

"तीसरी रात को वृद्ध ब्राह्मण नन्दिदत्त को भूत आता दिखाई दिया। योद्धागण घबराकर घर मे घुस गये, गढ के द्वार पर चामुण्डेश्वर भगवान् के मन्दिर में नन्दिदत्त ने भूत को भगाने के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया और बाहर से आये हुए गाँव वाले सब वहां जमा होगये।

"फिर क्या हुआ ?"

तत्पश्चात ठीक मध्यरात्रि में किसीने गढ़ के दरवाजे खटखटाये। सब थरथर कांपने लगे। घोघाबापा का भूत भीतर आना चाहता था। मना करने की किसी की हिम्मत न हुई। गढवई ने दरवाज़ा खोला। भूत भीतर

आया और नन्दिदत्त ने उसका सत्कार किया । ग्रामीण लोग सब शस्त्र सज्जित योद्धा बने और उन्होंने राजगढ़ अपने अधिकार में किया। भूत ने ढिंढोरा पिटवाया कि पाटण पर घोघावापा ने कब्जा कर लिया है और भूतों के सिवा वहां कोई रह नहीं सकेगा। जो यवन थे उन्हें मार डाला, राजपूतों में से जिन्होंने सामना किया वे भी पूरे किये गये और जो शरण आये उन्हें साथ ले लिया।

"और दुर्लभसेन का क्या हुआ ?"

"वह तो घोघाबापा के चरणों में लोट गया। राज्य की अभिलाषा सदा के लिए छोड देने की शपथ ली और उसे और उसके दो चार अनुचरों को फिर वनेचर बना दिया गया।"

"शाबाश, शाबाश, चौहान ! फिर क्या हुआ ?"

"लूला मेहता को पाटण सुपुर्द कर भीमदेव महाराज के नाम पर सेना एकत्रित करना प्रारम्भ किया। मेहता जी भी खम्भात से सेना ले आये हैं। और जो घोघाबापा की सलाह से जङ्गल में छुप कर बैठे थे वे भी आने लगे हैं। मेहता जी ने उज्जयिनी से मदद मांगी थी वह भी प्राप्त हो सकेगी ऐसा शुभसंवाद मिला है। और महमूद के यहां आने से पहले दरमञ्जिल कूंच करता हुआ उज्जयिनी का सैन्य उसके पीछे लगा है।"

"उस सैन्य का सेनापति कौन है ?"

"दामोदर मेहता नाही-नाही करते आखिरकार सेनापति हुए हैं।"

"परन्तु तुम क्यों न हुए ?"

"महमूद के साथ मेरे बापदादा लडे, मेरे लडने की वारी अभी नहीं आई थी। मैं वहां से खम्भात आया।"

"फिर घोघावापा यहां चले आये।" राय ने हँसकर कहा।

"जहां शौर्य और टेक हो वहीं घोघाबापा विराजमान हैं"—म्लान वदन से सामन्त ने कहा। "आपके लिए अपेक्षित वस्तुओं को लेकर आज ही प्रातः यहां आया हूं" और "वहां" कहकर सामन्त ने दरिया की ओर निर्देश किया। मुझे राव कमा लाखाणी मिले। वे वहा बैठे हैं,

और मैं यहां आया हूं।"

"चलो। भोलेनाथ की कृपा चारों ओर है। अब इस गज़नवी को भी गुजराती हाथ बतावेंगे।"

"चलो, अब तो महाराज को जगाकर मिल ही लूं। मुझे पौ फटने से पहले अपने जहाज़ पर चले ही जाना चाहिये।" दोनों वीर फिर से गले लगे और मार्ग प्रदर्शन के लिए एक सैनिक को साथ ले सामन्त महाराज के आवास पर आ पहुँचा।

परकोट में आते हुए सामन्त को कुछ ही दिन पूर्व के स्मरण नूतन हुए। जिस स्तम्भ के नीचे वह बैठे-बैठे रोया था उसे देखा; कुण्डला की याद आई, त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर का स्मरण हुआ; वहां महामाया की जो आरती हो रही थी वह फिर दिखाई दी और जिसकी आरती हो रही थी उसके साथ वार्त्तालाप में व्यतीत की हुई रात्रि का स्मरण हुआ; कैसा हास्य, कैसा स्नेह और कैसा उल्लास?

आंधी से टकराते हुए अपने जीवन-रण मे उसे उस बाला का भाव ही एक मात्र आश्वासन था। मानव-सम्बन्ध की तृष्णा से आर्त अपने निराशा के जीवन मे उसे वही आशा का बिन्दु था।

आसपास के विनाशक तूफ़ान मे आन्तरिक दुःख-स्मरणों की दाहक सिकता मे जब कभी उस सुखमय ऊर्मि के अनुभव का थोड़ा-सा भी लाभ होता तब ही तुरन्त वह ऊर्मि उस सुरेख, सुकुमार लावण्यवती के आसपास लिपट जाती थी। वह जब खम्भात पहुंचा तो उसे ज्ञात हुआ था कि प्रभास की नर्त्तकियां नौकाओं मे बैठकर वहां आई है, यह जानकर उसे उल्लास का कुछ-कुछ अनुभव भी हुआ था, स्यात् चौला भी आई हो?

परन्तु गगनराशि के दर्शन करने पर विदित हुआ कि गङ्गा और चौला दोनों गुरुदेव के साथ प्रभास ही रही थीं। अतएव प्रभास पहुंचने पर उसका समाचार गुरुदेव के पास प्राप्त हो सकेगा इस निश्चय के कारण सामन्त वहां जाने के लिए अधीर हो रहा था।

पहला कर्त्तव्य महाराज से मिलकर उन्हे सूचना देने का समझकर वह पहले वहां गया।

सैनिक ने महाराज का कमरा दिखाया और वहाँ जाने के लिए वह सीढी चढा। सबसे ऊपर के सोपान पर हाथ मे नंगी तलवार लेकर वीरा चावडा बैठा था।

"कौन हो ?" वीरा ने पूछा।

"मै हूँ सामन्त चौहान ! तुम कौन, वीरा। महाराज उठे ?"

"बापू ! आप हैं" चौंककर वीरा मन्द स्वर से बोला।

"हां, मैं खम्भात से जहाज़ से आया हूँ और तैरकर महाराज से मिलने के लिए यहा आया हूँ और अभी ही मुझे लौट जाना है।"इतना कहकर उसने सीढी पर चढना शुरू किया।

वीरा ने सामने तलवार रखी और कहा, "नही बापू।"

सामन्त का मुँह कठोर बन गया "क्यों ? मैं कह रहा हूं सो सुनता नही। मुझे अपनी आवश्यक बातचीत करनी है।"

"खड़े रहो, बापू ! मै उन्हे जगा देता हूँ।"

"मै ही जगा लूंगा।"

"नही बापू ! अन्नदाता अकेले नही है।"

"साथ कौन हैं–यहां–इस समय ?"

वीरा का मन्द एवं विशाल हास्य सामन्त को सुनाई दिया। उसमे एक प्रकार का विनोद भरा था जिसे सामन्त ने देखा।

"ऐसा कौन है ?" सामन्त ने पूछा।

वीरा हँस पडा "वही चौला, नर्त्तकी।"

सामन्त के कानो मे ये शब्द पड़े और उसका सारा ब्रह्माण्ड उसके सिर आ गिरा। पहले उसने दीवार पर हाथ टिकाया, फिर सीढी पर बैठकर अपनी आंखो पर हाथ रखा।

"बापू ! बैठो, मै अन्नदाता को जगाता हूँ।"

"वीरा, कितनी देर हुई उन्हे सोये ?"सामन्त का स्वर त्रुटित स्वर--

स्वर एव मन्द था, जैसा किसी मरणासन्न पुरुष का हो।

"चार-छः घड़ी हुई होगी।"

"नहीं, सोने दे।"—आक्रन्द करता हुआ सामन्त बोला।

: ५ :

गुरुदेव के साथ शिवराशि अपने आवास तक मूक वदन से चले आये इसका रहस्य उनके सिवाय किसी अन्य को विदित न था। जब गुरुदेव उनके सामने थे तब उनके समक्ष भगवान् लकुलेश खड़े हुए थे और उनसे कहते थे कि "चल बेटा, चल", और वे चलने लगे थे।

राशि को अपनी तपश्चर्या का फल मिला। पाशुपत मत के प्रणेता उन्हें उस पापाचारियों के धाम से बाहर ले जा रहे थे। दिव्य तेज के पुञ्ज के तुल्य महामाया त्रिपुरसुन्दरी के झणत्कार करते हुए सुकोमल गुलाबी पैर उनके आगे चल रहे थे। उनका अन्तःकरण दीन बन गया था। उस अन्धःकार से उनके गुरु एवं इष्ट देवी तेज में ले जा रहे थे।

वे बड़ी देर तक खुली आखों से अन्धकार में एकाग्र हो देखते खडे रहे। तदनन्तर सिद्धेश्वर ने आकर उन्हें अपने ध्यान से खींचने के लिए खासी की आवाज़ की।

"सिद्धेश्वर !" नम्र एवं प्रेरित स्वर से शिवराशि बोले, "भगवान् अभी साक्षात् आये थे।"

सिद्धेश्वर चकित हो गया। सर्वज्ञ को फिर भगवान् किस तरह बना लिया ?

"भगवान् लकुलेश ने हाल ही आज्ञा की है।"

"भगवान् लकुलेश ?"

"हां, अभी उन्होंने—शङ्कर के अवतार ने—मुझे दर्शन दिये और मुझसे कहा", शिवराशि ने आदर प्रकट किया, "कि यह सारा स्थान घोर-से-घोर पापाचार से दूषित है।"

"यह तो मुझे मालूम है।"

"और उस पाशुपत मत के आद्य प्रणेता ने मुझसे कहा कि 'धर्म

और सम्प्रदाय के ये सब द्रोही कुत्ते की मौत मरने वाले है। ये पाप के मन्दिर जलकर भस्म हो जाने वाले है। इन पर गिद्ध उडने वाले हैं', और फिर मुझे उन्ही तपस्वी वर ने कहा, 'इस पापाचारियो के धाम को छोड तू चला जा, जा—जहां इनकी छाया का भी स्पर्श न हो वहां—और कोई नवीन तीर्थ धाम को ढूंढ निकाल और जगत् को सिखा—पाशुपत धर्म की विजय, और वहां स्थापित कर भगवान् सोमनाथ और महामाया त्रिपुर सुन्दरी की नव भक्ति को, जैसे मैंने पहिले तुझे सिखाई थी'।"

कुछ दिन मे शिवराशि मे हुए परिवर्तन को सिद्धेश्वर व्याकुल भाव से देखा करता था। अब वे एक निर्बल खिलौने न थे; उनमे तेज, आत्म-श्रद्धा और किसी दैवी पुरुष के समान भयङ्कर आतङ्क शाली व्यक्तित्व समाया था।

"गुरुदेव!" जब से राशि ने गङ्ग सर्वज्ञ का गुरुपद छीन लिया था तब से सिद्धेश्वर ने यह पदवी अपने गुरु शिवराशि को दी थी, "मैंने तो जब से गज़नवी की सेना यहा देखी तब से जान लिया था कि अब यहां रहने मे तत्व नहीं है और गुरुदेव को—अरे गङ्गसर्वज्ञ को आप कहे कि हमारे खम्भात जाने की व्यवस्था कर दे। राव कमा लाखाणी जहाजों मे बैठे हैं।"

छूटे हुए बाघ के समान शिवराशि सिद्धेश्वर की ओर घूरने लगे। "इन पापाचारियो की मदद लेकर यहां से जाने की अपेक्षा मेरी आत्म-शुद्धि मे रहना अधिक उचित है।"

"तो फिर जायंगे कैसे?"

"मुझे जान बचाने थोडे जाना है, मुझे तो भगवान् लकुलेश की आज्ञा के अधीन रहना है। और भगवती महामाया दिव्य तेज से बनी त्रिपुरसुन्दरी मुझे पथ प्रदर्शन कर रही हैं। वे जहा जायंगी मै वहीं जाऊँगा, और उनके आदेश का अनुसरण कर पाशुपत मत का उद्धार करूंगा। महामाये जगदम्बे!" कहकर अन्धकार मे विस्फार नयनो से

देखते वे वहां स्तब्ध खड़े रहे।

वहां तेल के दीपक के प्रकाश से बाह्य रात्रि के अन्धकार में खड़ी हुई त्रिपुर सुन्दरी को उन्होंने देखा—सौम्य तेज से घटित। उल्लसित नयनों द्वारा वे उन्हें बुला रही थीं, झङ्कार करते हुए उन गुलाबी पाद-पद्म में मनोहर, छोटे-छोटे सुकुमार अङ्गों के सुचारु सौन्दर्य में अजेयता को लिये हुए महामाया हँस रही थी। यह वही हास्य था जो उनके हृदय में अङ्कित था।

"सिद्धेश्वर! आदेश हुआ है महामाया मार्ग-प्रदर्शन कर रही हैं। चल, इस पांच तीर्थ को छोड़ दें।"

"परन्तु किस तरह?" गुरु की भूमिका तक पहुँचने में असमर्थ सिद्धेश्वर ने श्रान्त होकर कहा।

शिवराशि स्वप्न से जगे हुए पुरुष के समान चारों तरफ आकुलता के साथ देखते रहे, तत्पश्चात् वे कुछ स्वस्थ बने।

"सिद्धेश्वर! जा, दद्दा चालुक्य को बुला ला।"

"वे तो जूनागढी द्वार पर चौकी कर रहे हैं।"

"जा, उनसे कहना कि मेरी आज्ञा है, अभी-के-अभी यहां चले आवें।" शिवराशि ने कहा।

सिद्धेश्वर दद्दा को ढूंढने गया और कुछ देर बाद हरदत्त और एक साधू आये।

"नमः शिवाय, गुरुदेव!"

"शिवाय नमः", शिवराशि ने कहा, "क्यों?"

"गुरुदेव! चलो, हमने त्रिपुरसुन्दरी की पूजा के लिए सब तैयारियां कर रखी हैं आपकी ही देर है, आप पधारें तो हम अभी चौला को उठा लाते हैं।"

"चौला को, महामाया को?"

"हां"।

"मूर्खों, अन्धो! पूजा पूरी करने से क्या बनेगा?" क्रोध के कारण

दाँत पीसते हुए शिवराशि ने कहा, "हमें तो इस पापतीर्थ को छोड किसी पुण्यधाम में जाकर त्रिपुरसुन्दरी की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। भगवान् लकुलेश की आज्ञा है,और महामाया स्वयं मुझे खींच रही है।"

"पर जायं कहां ?"

"अभी, इस पापाचारियों के धाम को छोड। तुम्हारी साथ आने की सम्मति है ? कल ये सब जलकर भस्म हो जाने वाले हैं।"

"हां सम्मति है, परन्तु चलें कैसे ?"

"महामाया मार्ग बतलावेगी, चलोगे ?"

"हां।"

"ठीक, तो फिर जाओ चौला को यहा ले आओ," राशि ने आज्ञा दी, "परन्तु देखना किसी को मालूम न हो। एक घडी में हम प्रभास छोड चले जायंगे।"

और उन भगवान् शङ्कर जैसे प्रतापी गुरुकी आज्ञा पूरी करने के हेतु हरंदत्त और उसका साथी चले गये।

शिवराशि को चौला-रूपी, त्रिपुरसुन्दरी, सागरों एवं शिखरों के उस पार उन्हे नवीन तीर्थ,नूतन मन्दिर तथा नव सम्प्रदाय के स्वामी बनाती हुई, आगे-आगे बढती हुई दृष्टि के सामने उपस्थित हुई। सृष्टि ने नव पल्लवों का कन्चुक धारण किया, सूर्य की किरणों ने सुवर्ण मेरु की रचना की जिस पर त्रिपुरसुन्दरी महामाया के रूप में खडी थीं और जिसकी उपत्यका पर वे स्वयं जगद्गुरु के स्वरूप में प्रणिपात कर रहे थे।

: ६ :

सिर पर हाथ रखकर, रुदन करने मे भी असमर्थ सामन्त बडी देर तक बैठा रहा। जहां तक उसकी दृष्टि पहुँच सकती थी वहां तक उसे अपने लिए जलविहीन, मृत्यु के आश्वासन से भी शून्य रण विस्तीर्ण दिखाई देता था। वह एकाकी,एकाकी और सदैव एकाकी,कुटुम्बहीन,भाग्यहीन, आश्रयहीन, आशाहीन, जीवित ही मृत अवस्था में था। वह

हँसा, भयङ्कर रीति से हँसा। भोलेनाथ ने उसके भाग्य मे कुछ भी न लिखा था।

"चौहानराज चलिये" वीरा ने ऊपर से शब्द किया, "महाराज आपको बुलाते हैं?" सामन्त भी खड़ा हुआ, कपाल पर हाथ फेरा, और ऊपर गया। भीमदेव हाथ फैलाकर खड़े थे।

"सामन्त! मेरे वीर आओ, तुम कहां से आये?"

खड़े हुए शव के समान सामन्त महाराज के गले लगा।

"कौन चौहान!" कमरे के द्वार के भीतर ही से चौला की आवाज़ आई और वह बाहर निकली। बहिन भाई को जिस तरह बलैयां लेती है उस तरह चौला ने सामन्त की बलैयां लीं।

थरथर काँपता हुआ वह चौला का स्पर्श सहन कर रहा था। उसने वीर राजा देखा रानी बनने के योग्य चौला को देखा और दोनों की उत्साह भरी आंखो मे एक दूसरे के प्रति रमी हुई उत्सुकता देखी। सामन्त ने आती हुई हिचकी को दबाया और सिर झुकाकर उसने दोनो को हाथ जोड़े।

"महाराज! चौला! आप दोनो का अहो भाग्य है कि आपने एक दूसरे को पाया।" मानों घोवाबापा की सन्तान राज्य स्थापित करने में भाग्यशाली बनी हो और मानो चौला उसकी अर्धाङ्गिनी होकर राज्य सिंहासन को सुशोभित करती हो, ऐसा विचार किसी समय स्वप्न में अथवा अर्ध-जाग्रत अवस्था में उसे होता था। उस समय जब उसने अपना सिर झुकाया, तब उसी विचार ने उपस्थित होने की धृष्टता की। परन्तु उसी क्षण उसने उसे बेध डाला, कुचल डाला—नहीं—उसने टुकड़े-टुकड़े बीन कर उन पर कूदने लगा।

"सामन्त! मुझे मालूम न था कि तुम चौला को पहिचानते हो।"

"महाराज! जगत् के एकान्त मे एकाकी सन्तप्त होता हुआ मैं हूं। इसने तो मेरी सगी बहिन की साध पूरी की है। इसका सौभाग्य सदा अखण्ड रहे। बहिन! अब मुझे महाराज से कछ एकान्त मे चर्चा

करनी है। मुझे घड़ी-आध-घड़ी में यहां से चले जाना होगा। तू अन्दर चली जा।"

चौला चली गई और सामन्त दूर छत के एक सिरे पर भीमदेव को ले गया। "महाराज ! समय अत्यन्त स्वल्प है और काम बहुत है। मैंने सारी घटनाएं राय रत्नादित्य से कह दी हैं आप उनसे पूछ लें। पाटण में आपकी आन क़ायम है, दामोदर मेहता सेना लेकर महमूद के पीछे लगे हैं। मारवाड़ और उज्जयिनी की सेनाएं दो-चार दिन में आकर मिलेंगी, खम्भात से मैं जहाज़ लाया हूं। उनमें अन्न एवं शस्त्र हैं।"

"क्या कह रहे हो ? शाबाश, सामन्त ! शाबाश।"

"अभी मैं तुरन्त लौट रहा हूं और कल वापिस आऊँगा।"

"सामन्त ! तू मनुष्य नहीं, देव है।"

"मैं मनुष्य तो हूं ही नहीं, मनुष्य होता तो कभी से इतने कष्टों में मर मिटता।"

"यों मत बोल। तू तो मेरा दाहिना हाथ है।"

"अब एक अपनी बात"—सख्ती के साथ सामन्त बोला।

"क्या ?" और भीमदेव अचम्भे के साथ पीछे हटे। सामन्त उग्र एवं भयङ्कर हो गया। उसके हाथ में खन्जर खेलने लगा।

"चौला का मोह क्षणिक है, थकी हुई रात का विश्राम ही है।" और इस बात में छिपे दृढ़ सङ्कल्प ने भीमदेव के वीर हृदय को भी व्याकुल कर दिया।

"किस ने कहा ?"

"यह जन्म से और वृत्ति से नर्त्तकी है। अवसर बीत जाने पर पाटण के चालुक्य के घर में यह कौन ?"

भीमदेव की समझ में आया और वे हँस पड़े। "सामन्त ! तेरी भीति व्यर्थ की है। चौला मेरे जीवन का हार है। मैं इसे कभी भूलूं यह न होगा।"

"यह गुरुदेव की पुत्री है, मेरी धर्म भगिनी है । और आज रात के बाद यदि वह पाटण-पति की पत्नी रहने वाली न हो तो हम अभी यहीं निर्णय करलें" । इतना कहकर सामन्त ने खन्जर खींची और भीमदेव की खुली छाती पर रखी । सामन्त दृढ, भयङ्कर और कुपित था ।

भीमदेव खिलखिलाकर हँस पडे । "चौहान ! मुझे क्या खबर कि चौला के ऐसे भाई हैं । घबराओ नही । जब से मैंने इसे देखा है तब ही से मैंने इसे अपनी पत्नी माना है । जो स्त्री सत्कार करने योग्य हो वह पत्नी होने के योग्य होती ही है ।"

सामन्त ने खञ्जर फिर रख लिया । "महाराज ! क्षमा करें, क्षमा करें, मैंने आप पर व्यर्थ ही आरोप लगाया ।"

"नही, तू मेरा भाई नहीं, तुम मेरी पत्नी के भाई हो । इसमे क्या हुआ ? यह युद्ध निपटे कि तुम ही कन्यादान कर देना ।"

सामन्त फिर गम्भीर बना । "आज यह पत्नी हो चुकी । कल न करे, भोलेनाथ को क्या हो ?"

भीम ने विचार किया और कहा, "सामन्त ! तेरी बात सही है ।" "वीरा ! जा, राय, विमल, दद्दा इन तीनो को गुरुदेव के पास बुला लाओ । अनिर्धारित मुहूर्त के समान अन्य मुहूर्त नहीं । चलो, चौहान वीर ! चौला ! चल, गुरुदेव के पास चलें, अपना विवाह सम्पन्न कर डालें ।"

जब भीमदेव एवं चौला का विवाह सम्पन्न होगया, गुरुदेव ने आशीर्वचन कहे, और गङ्गा हर्ष के कारण चौधार रोई । तब सामन्त खडा होगया, "गुरुदेव ! महाराज ! मैं जाता हूं अभी अरुणोदय हो जायगा ।"

भीमदेव और चौला गुरुदेव के कमरे से बाहर तक पहुँचाने आये ।

"भाई ! मेरे सगे भाई !" चौला रो पड़ी, "जल्दी ही लौटना भाई !"

"किसी दिन, बहिन ! किसी दिन जीता रहा तो रक्षा बन्धन के

लिए आना और नहीं तो•••" और सामन्त भी रो पड़ा "बहिन ! किसी दिन याद करना ।" इतना कहकर सामन्त नीचे सिर से द्वारिका द्वार की ओर दौड़ गया ।"

: ७ :

जब सिद्धेश्वर आया तब शिवराशि अधीरता के कारण तिलमिला रहा था।

"क्यों ?"

"दद्दा चालुक्य तो नही मिले । सब गुरुदेव के पास गये हैं ।"

"तो फिर बाहर-खड़ा रह, जब उतरते दीखे तो बुला लेना।" राशि ने कहा और सिद्धेश्वर बाहर जा खडा हुआ ।

कुछ देर बाद हरदत्त और उसका साथी लौट आये । दोनों के मुख व्याकुल थे ।

"गुरुदेव ! गुरुदेव ! ग़ज़ब हो गया ।"

"कौनसा ?"

"चौला को गुरुदेव गङ्गसर्वज्ञ ने भीमदेव से ब्याह दिया ।"

"क्या कहा ?" पागल जैसे शिवराशि ने गर्जना की ।

"अभी ही उन्हे ब्याहा। हमने आकाशी पर से हाल ही देखा ।"

यह सुनते ही शिवराशि का मुख विकृत होगया । उसकी आँखें मानो बाहर ही निकलती हों इस तरह विशाल बन गईं। उसने अपने हाथों से अपने बाल नोच लिये । उसकी रगरग मे ज्वालाएं उठीं। उसने गुरुपद का आडम्बर त्याग दिया ।

तपस्विता की आत्मश्रद्धा लुप्त होगई । चौला—उसकी चौला—उसकी त्रिपुरसुन्दरी अब पाटण के भीम की पत्नी हो चुकी थी । मानों जमे हुए हलाहल से निर्मित हो ऐसा शिवराशि का स्वरूप हो गया ।

"गुरुदेव ! अब हम क्या करें ? जायं कि नहीं ?"

"अब जब तक ये पापाचारी जलकर भस्म न हो जाय तब तक कैसे जा सकते हैं । जाओ, आवश्यकता होने पर बुला लूंगा ।" राशिजी

के नयनो में छाये हुए तेज को देखकर दोनों साधू चले गये।

थोड़ी देर बाद सिद्धेश्वर और देहा चालुक्य दोनों आये और राशि के भयावह स्वरूप को देख स्तब्ध हो रहे।

"दद्दा! मेरी एक आज्ञा सिर चढ़ानी होगी।"

"कौनसी?"

"सिद्धेश्वर को जैसे हो सके वैसे कोट के बाहर जाने का रास्ता कर दो।"

"मुझे?" गुरु के मन का परिवर्त्तन समझने में असमर्थ सिद्धेश्वर बोल उठा।

"हां! तुझे।" राशि ने चिल्लाकर कहा और घबराया हुआ सिद्धेश्वर एक अक्षर भी बोल न सका।

"परन्तु गुरुदेव, मैं किस तरह कर सकूंगा? महाराज को मालूम हो जाय तो वे मेरे प्राण ले लें।"

"दद्दा! मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे पुत्र हुआ। मेरे शाप से उसे मैं छीन सकता हूं। सिद्धेश्वर को कोट के बाहर छोड़ सकते हो कि नहीं?"

दद्दा काँप उठा। उस भयङ्कर तपस्वी को किस तरह इन्कार किया जाय?

"ठीक! थोड़ी देर बाद उसे द्वारिका दरवाज़े भेज देना। मैं तैयारी करता हूं।"

दद्दा ने राय से सामन्त की बातें सुनी थीं अतएव उसे उपाय सूझा और ज़रा भी देर और न रुकते हुए वह उस उग्र मूर्त्ति के पास से चलता बना। जो कुछ सिद्धेश्वर से कहना था वह जब शिवराशि ने उससे कहा तब तो वह भी काँप उठा। आखिरकार वह प्रभास की मृत्युशय्या पर से उठकर भाग जाने का लोभ रोक न सका।

सिद्धेश्वर जब थोड़ी देर बाद द्वारिका दरवाज़े पर पहुँचा तब खारा और नीरा सामन्त को नीचे दरिया मे उतार चुके थे। वहां दद्दा तथा दोनों खारा नीरा के सिवा और कोई न था।

"खारा !" दद्दा ने कहा "महाराज ने इसे भी उतारने के लिए कहा है। यह भी चौहान के साथ ही जाने वाला है।"

"जैसी आज्ञा" कहकर खारा ने सिद्धेश्वर को दरिया में उतार दिया।

सोलहवां प्रकरण

दूसरे दिन

: १ :

सूर्योदय हुआ। राजपूत सेना सुसज्जित होकर कोट पर खड़ी हुई। परन्तु गज़नवी की सेना ने अभी तक कुछ हलचल शुरू नहीं की थी। द्वारिका द्वार और जूनागढ़ी द्वार पर कुछ छोटी-सी टुकड़ियां थी परन्तु उधर से कोई विशेष भय न था। जो जमाव हो रहा था वह मुख्य द्वार के सम्मुख ही था। आक्रमण का स्वरूप क्या होगा यह कुछ कहा नहीं जा सकता था। समस्त सेना को मुख्य द्वार के आसपास एकत्रित करने का आदेश महाराज ने दिया।

कल के समान अपने शिविर से महमूद बाहर निकला और स्थान-स्थान पर घूम कर देखने लगा। आखिर उसने आज्ञा दी। डंके बजे, रणसिंगे फूंके गए और घुड़सवारों की दो फौजें बीच में खाली जगह को रखते हुए खाई की ओर आगे बढ़ीं।

आदेश होते ही सैकड़ों सैनिक, छोटे बड़े पटियो से बने हुए कच्चे पुल को लेकर मध्यद्वार के सामने खाई की ओर दौड़े। उनके साथ अनेक मनुष्य बढ़ई के औज़ार लेकर आ रहे थे। और ज्यों ही वे मनुष्य आगे आये त्यो ही दोनों ओर की घुड़सवार फौज़ उनकी रक्षा के लिए साथ हो ली। खाई के ऊपर पुल बांधने का ही यह सारा प्रयास था।

भीमदेव ने सारी धनुर्धारी सेना मध्य-द्वार के सामने एकत्र की। एक टुकड़ी विपक्षी के घुड़सवारों को थकाती और दूसरी पटिया लेकर

आते हुए सैनिकों को और सुतारों को वेधती थी। "अल्ला हो अकबर" और "जय सोमनाथ" की घोषणाओं से गगन गूंज उठा था।

परन्तु दुश्मनों का वह हमला ऐसा-वैसा न था। ज्यों ही एक सैनिक मरता त्यों ही कोई नया सैनिक उसका स्थान ग्रहण करता। घोड़े गिरते और उनका स्थान दूसरे घोडे ले लेते। ऊपर से बुरी तरह से राजपूतों के बाणों की मार पड रही थी। नीचे मुर्दों के ढेर पर नये सैनिक घुसे जाते थे।

मध्यद्वार को तोडने के इस प्रयत्न को रोकने के हेतु महाराज और राय ने नवीन योजना बनाई। हाथियों के पास बडे-बड़े पत्थर जमा करके अन्दर से दरवाज़े को भरना शुरू किया और साथ-ही-साथ पुल डालने के लिए प्रयत्न करने वाले सैनिकों पर पत्थर बरसा कर उन्हे कुचलना शुरू किया। आकाश में उभय पक्ष के वीरों का एक छत्र सा बन गया था। नीचे महमूद की सेना पुल बनाने के लिए और ऊपर भीमदेव की सेना उसे तोडने के लिये जीतोड प्रयत्न कर रही थी।

तीरो से आहत राजपूत कोट पर से नीचे गिरते और नीचे तीरों की मार खाकर और पत्थरों से पिस कर महमूद के सैनिक मौत के घाट उतरते।

महमूद ने आज मनुष्यों की परवाह करना छोड दिया था। चींटियों की तरह उसके सैनिक एक के पीछे एक लगे रहते और खाई में तथा खाई के बाहर शवों का ढेर अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था।

मध्याह्न होने तक पुल डालने के लिए तुमुल युद्ध चला। आखिरकार जैसे-तैसे गज़नवी सेना ने पुल टिकाया और दरवाज़े के साथ लोहे की जंजीर जकड कर बांध दी।

कोट के भीतर बड़े-बड़े पत्थरों से दरवाज़ा डाट दिया गया था। जिससे कपाट हिल न सकें और कदाचित् हिलें भी तो यकायक न खुलें। चबूतरो, घरों और मन्दिरों में से पत्थर उखाड़-उखाड़ कर कोट पर तैयार रखे गए।

दोनों दल महाप्रयत्न कर रहे थे।

दूर से महमूद की हरी पगड़ी और रुपहला चाँद दिखलाई पड़ा, और वह तुरन्त ही अदृश्य हो गया।

एक के बाद एक छः हाथी अपनी-अपनी सूँडों मे एक दारुण काष्ठ रखकर दौड़ते आये और पुल पर होकर उस काष्ठ को ज़ोर से कपाट से टकराया। किवाड़ खिटखिटा गए। ऊपर की कगार तक उसकी आहट आई।

परन्तु बड़े-बड़े पत्थरों से सुरक्षित कपाट टूट न सके और राजपूतों ने 'जय सोमनाथ" का हर्षनाद किया। तथापि इस युक्ति को देखकर भीमदेव महाराज चिन्ताग्रस्त हुए। वे सोचने लगे कि आख़िर वे कपाट इतनी ताकत को कहां तक सहन कर सकेंगे, और पतली लोहे की जंजीरों से गुथी हुई चादरों से ढके हुए वे मस्त हाथी किस प्रकार बाँधे जायंगे।

महाराज और राय ने कुछ देर तक मन्त्रणा की। तब मृत्यु के मुख में से विजय लाये बिना दूसरा कोई चारा न था।

सब सैनिक जान देने के लिए तैयार होगये। राय स्वयं तैयार हुए परन्तु गुरुदेव ने उन्हें मना किया और महाराज को भी जैसे-तैसे रोका। कारण, अभी तो युद्ध का दूसरा ही दिन था, उनका जीवन अभी से क्यों सङ्कट में डाला जाय।

दुश्मन का एक हाथी काम आया था परन्तु उसकी जगह दूसरा रखा गया। अब छः हाथियों के बदले आठ हुए और फिर सब आगे बढ़ने लगे। पुल डोलने लगा और वह प्रचण्ड काष्ठ आठ हाथियों के वेग से वज्र समान हो कपाट से फिर टकराया। हंस के शरीर से जैसे जल बिन्दु टपक जाते हैं उस तरह बख़्तर से सुरक्षित उन हाथियों की देह पर से तीर बहे जाते थे।

दरवाज़े के पीछे अधिक-से-अधिक पत्थर ढकेले गए और उनके पीछे चार हाथी ऊंचे पैर करके सहारा लगा रहे थे। दरवाज़े के लकड़ हिले, परन्तु

टूटे नहीं। महमूद के हाथी पीछे लौट गये।

सारी देर तक उस पुल के ऊपर दोनों ओर तीरों की मारामार चल रही थी और चीख मारते हुए धनुर्धारी धराशाही होते जा रहे थे।

राय को चोट लगी थी। विमल मन्त्री घायल हो गये थे। केवल महाराज ही मानों इन्द्र का कवच पहना हो इस तरह चारों ओर घूम रहे थे।

द्वारिका दरवाज़े पर कुछ ही चौकीदार निगहबानी कर रहे थे। जूनागढ द्वार पर पिछले दिन के समान कछुए और घुड़सवार खाई से दूर स्थिर स्तब्ध खड़े थे। और वहां दद्दा सोलङ्की पर्याप्त सैनिकों के साथ गढ की रक्षा कर रहा था।

अब तीसरी बार दो हाथी की ओर बदली हुई; और फिर आठ हाथी आगे बढ़ते हुए एक बड़े पाट को ले आये। सबसे अगला हाथी पुल पर कुछ दूर आया।

ऊपर से "जय सोमनाथ" की गर्जना हुई, और हाथी के शरीर पर जलती हुई लकड़ियों की वर्षा होने लगी। प्रत्येक लकड़ी पर तेल और गन्धक में डुबोया हुआ कपड़ा भड़भड़ जलता रहता था।

चारों ओर गन्धक की दुर्गन्ध फैल रही थी। पहला हाथी दुर्गन्ध एवं जलते हुए काष्ठ से चौंक कर एकदम पूरे वेग में पैर रोकने लगा। उस का पिछला पैर खिसका। पीछे के हाथी के वेग से पहला हाथी कुछ आगे खिसका—रुका—फिसला। ज्योंही उसका पैर उखड़ा त्यों ही उसने अपना समतोल खोया और वह नीचे जा गिरा।

इस धूमधाम का लाभ उठाते हुए पचास मर मिटने वाले वीर अपने एक हाथ में जलती हुई मशाल और दूसरे हाथ में एक बड़ी रेती लेकर पुल पर कूद पड़े।

पुल पर हाथियों की धमाचौकड़ी और चिंघाड़ मच रही थी। बीच के चार हाथी जहां-के-तहां खड़े थे। पिछले तीन हाथी जो ज़मीन की ओर थे, पूंछ ऊंची करके भाग गये।

घुड़सवारों को कुछ समझ में न आया अतएव वे आगे घुसने लगे।

कितने ही पुल बचाने के लिए आगे बढे। कोट पर "जय सोमनाथ" की भीषण गर्जना हो रही थी।

जितनी धूमधाम थी उतना ही घोर रव था। दोनो ही पक्ष अन्धाधुन्ध बाणों की वर्षा कर रहे थे,घड़ी-आध-घड़ी तक किसी को कुछ सूझ न पड़ी। इस गड़बड में बीस वीर रेती के द्वारा लोहे की जंजीर काट रहे थे और बीस मशालों द्वारा पुल को आग लगाने का यत्न कर रहे थे। थोड़ी देर के बाद अमीर के धनुर्धर उस पुल पर काम करनेवाले मनुष्यों को जैसे-तैसे देख सके और उन्होंने उन पर तीरो की वर्षा करनी शुरू की। जो पुल पर या उसके निकट आये उनका गुजराती धनुर्धारियों ने कचूमर निकालना शुरू किया। कितनी ही देर तक यह भयङ्कर युद्ध चलता रहा। भीमदेव ने कितने ही वीरों को मौत के घाट उतारा। घायल हो जाने पर भी राय तनिक न चूकते थे। विमल मन्त्री ने जितने बाण छोड़े, उनमें से एक भी व्यर्थ न गया।

महमूद के सैनिक पुल पर चढे और पचास गुजराती वीरों ने "जय सोमनाथ" की घोषणा की और ऊपर से वार करना प्रारम्भ किया। पुल तोडने वालो मे से जो शेष रहे थे वे उनकी ढाल बने।

हाथों-हाथ युद्ध चला। मरते हुए सैनिकों की चीख कान के परदे फाड़ने लगी। शव एक के बाद एक खाई में गिरने लगे।

क्षणभर दोनो सेनाओं की भविष्य अनिश्चित-सा प्रतीत होता था। कुछ ही देर में उस पुल की रस्सी टूटी। पुल बीच मे से जलने लगा। जंजीर कट चुकी थी। पुल हिलने-जुलने लगा और जो भाग द्वार के साथ बंधा हुआ था वह छूट पड़ा और सारा पुल पानी मे नीचे जा गिरा।

कोट पर से भीमदेव ने "जय सोमनाथ" की गर्जना की और हज़ारों वीरो ने उनका साथ दिया।

: २ :

सुबह से सारा दिन शिवराशि गणपति के मन्दिर मे बैठा था,उसका चक्ष शङ्कर की ओर न था,और न गणपति पर ही था। सामने की दीवारके

पास पड़े हुए एक पत्थर पर उसका चित्त गड़ा था। राक्षसी प्रमोद से भरी हुई उसकी दृष्टि के सामने प्रभास का विध्वंस साक्षात उपस्थित था।

सिद्धेश्वर को उसने दरिया मे कूदते देखा और अपने विश्वासपात्र शिष्य को—जो किसी दिन उसका स्थान पायगा—तैरते हुए देखा। चाँदनी में शीतलसागर की उत्तुंग तरङ्गों को अपने विशाल बाहुसे पार करते हुए और अमीर के किसी नायक से मिलते हुए उसने देखा। वह नायक उसे अमीर के पास ले जा रहा था, यह भी उसने देखा।

पाशुपत मत के गुरुदेव के सन्धि विग्रहिक के अधिकार से सिद्धेश्वर को अमीर के सामने पहुँचते हुए उसने देखा। अमीर नीचे झुक कर प्रतापी तपस्वी के प्रतिनिधि का पाद प्रक्षालन कर रहा था। तत्पश्चात् सिद्धेश्वर ने अमीर से वचन मांगा, घबराए हुए अमीर ने वचन दिया। सिद्धेश्वर ने स्वयं आकर संकटेश्वर महादेव की बावडी दिखलाई। शिव-राशि हंस पड़ा।

"वह गधा भीम और उसका मन्दमति गुरु! गत सप्ताह मे वह बावड़ी उन्होंने भरवा दी थी ताकि बाहर से कोई उस मार्ग से अन्दर न आ सके। मगर वे भूल गए कि जिस दिन उसे पट्ट शिष्य बनाया था उसी दिन गङ्ग ने उसके सामने उस प्रच्छन्न मार्ग की चर्चा की थी। उस मार्ग से दो ही व्यक्ति परिचित थे—गङ्ग और वह स्वयं। गङ्ग ने उसे बन्द करवाया और उसने उसे खुलवाया। जिस तरह गङ्ग ने पाशुपत मत को डुबोया और उसने उसे उभारा! हा—हा—हा—हा। ....."

अपने हास्य से वह स्वयं ही चौंक उठा—"हालही में इस सुरंग से अमीर—कालभैरव के समान विनाशक—प्रभास में आ धमकता होगा।"

शक्ति के मान मे उसका हृदय उत्फुल्ल हुआ। उसके उन पाखण्डी गुरु का, चौला को ब्याहने वाले उस मूर्ख का, और उसकी सारी सेना का जीवन उसके हाथ मे था। एक चुटकी में, पिस्सू के समान वह उन मनुष्य जन्तुओं को मसल रहा था।

ज्यों-ज्यों समय बीतता था त्यो-त्यो उसकी अधीरता बढती जाती

थी। 'सिद्धेश्वर समुद्र में डूब गया हो तो—नमकहराम बनकर गङ्ग के पास जाकर सब कुछ कह दिया हो तो ?'

यदि ऐसा हुआ होता तो उसका कोप शान्त होने वाला न था। आज यदि अमीर न आ पहुंचे तो वह अकेला ही उस रास्ते से बाहर जाने को सोचने लगा था। काम पडने पर अपने हाथ से भरी हुई बावडी में से वह रास्ता भी खोद निकाले। वह जगन्त्रय को भस्म करने वाले शम्भु के समान था। उसका तृतीय नयन खुल चुका था। प्रभास जलकर ख़ाक हो रहा था। और उस भयङ्कर दाह में चौला को लेकर जानेवाले भीम की राख भी हाथ में आने वाली न थी। वह चौला भी जिसने उसे छोडकर एक जड़ सैनिक को स्वीकार किया भस्म होने वाली थी—परन्तु वह उसकी भस्ममात्र को ढूंढ निकालेगा।

विचार परम्परा इस प्रकार चल पडी। बाहरसे "जय सोमनाथ" की गर्जना की प्रतिध्वनि सुनाई पडती और उसके अन्तःकरण में क्रोधाग्नि भडक उठती और उसकी आंच भी लग रही थी।

मध्याह्न समाप्त हुआ, सूर्य अस्तङ्गत होने लगा, और, और··· जहां वह बैठा था वहीं नीचे कुछ धमाका सुनाई पडा······कुछ पोली आवाज़ हुई।

वह दौड़कर उस पत्थर के पास पहुंचा, चिमटे से आसपास की धूल दूर की और पत्थर को हटाने का प्रयत्न किया। वह राक्षस के समान वीभत्स हर्ष से कूदने लगा। आख़िरकार वह भीम, चौला और गङ्ग भस्म होने ही वाले थे। पत्थर को कोई नीचे से ठोक रहा था। एक—दो—तीन—चार—पाँच और पत्थर उखड पड़ा।

शिवराशि ने जङ्गली पशु के समान हर्षनाद किया। सुरङ्ग द्वार से सिद्धेश्वर का सिर बाहर निकला—जगद्गुरू के सन्धि विग्रहिक का जैसा चाहिए वैसा नहीं—परन्तु कीचसे लथपथ भरा हुआ, क्षतों से रक्तपात होता हुआ, मकड़ी के जालों से भरे हुए बालवाला, बिलकुल गन्दा।

वह थककर लाश के समान बाहर निकला। उसने कटि पर ज़ंजीर

बांध रखी थी, जिससे पीछे रस्सी बंधी हुई थी जिसका दूसरा सिरा उसके पीछे-पीछे आने वालों के हाथ में था।

शिवराशि शिष्य के गले मिलने के लिए आगे बढ़ा। सिद्धेश्वर दूर हटा "मेरे हाथ से यह कर्म क्यों करवाया, दुष्ट !" उसने दांत पीसते हुए कहा और थकावट से, भूख से और मार से अभिभूत होकर वह फिसल पड़ा। उसने भूमि पर सिर पटका और शिवराशि को घृणा हुई—उसे ऐसे शिष्य की अपेक्षा न थी।

बारह सैनिक ऊपर आये। एक यवन था और ग्यारह हिन्दू थे। ऐसा काम करने के लिए अमीर ने काफिरों को ही योग्य समझा था।

"तू शिवराशि !"—एक ने कहा।

अपमान सहन कर शिवराशि खड़ा रहा। दूसरे ने उसे पकड़ कर हिलाया। "जूनागढ़ी दरवाजा बता। आगे चल।"

भीम, गङ्गा और चौला का काल उपस्थित हुआ, आखिरकार। और सांझ पड़ने से पहले प्रभास जलकर भस्म हो जाने वाला था।

शिवराशि आगे चला।

: ३ :

शिखर की अटारी पर गुरुदेव, गङ्गा और चौला तीनों ही उस देवासुर संग्राम को देख रहे थे।

चौला के हर्ष का तो आज पार ही न था, वह तो पार्वती थी, शम्भु की पत्नी भी थी, पाटण की रानी थी। उसका प्रियतम वहां कोट पर शत्रुओं को दल रहा था। सांझ के समय विजय कर लौटने पर उन्हें कुङ्कुम और अक्षत से बधाई देने की वह सोच रही थी।

गुरुदेव शिव कवच का सतत पाठ कर रहे थे और शम्भु से संरक्षण की याचना कर रहे थे। गङ्गा सुखी थी। गुरुदेव थे, चौला थी और चौला का ब्याह भी हो चुका था। अब उसे किसी किस्म की आकांक्षा न थी।

पुल टूटा और राजपूतों की हर्षभरी गर्जना से इन तीनों ही ने

जयनाद किया। मुख्य द्वार के ऊपर के कोट पर सब विजय के आनन्द में नाच रहे थे। नीचे पुल टूटा, हताश अमीर की सेना तितर-बितर हुई। नये पुलके लिए और नये हाथियों के लिए दौड़ादौड़ मच रही थी। यह तो सच्ची विजय थी""और गुरुदेव की दृष्टि जूनागढी द्वार पर कंगूरे की ओर गई।

"अरे वह पागल क्या कर रहा है?"—कहकर वे चिन्तातुर हो नीचे उतरे। वहां शिवराशि और दद्दा सोलङ्की कुछ झकझक कर रहे थे।

यह एक दम क्या हुआ—कैसे हुआ यह किसी की समझ में न आया और जूनागढी द्वार के सामने खाई के पेले पार सुबह से जमा हुआ अमीर का बल जो अभी तक निश्चेष्ट था उसमें अचानक जान आई। डङ्के और निशान गडगडाये। महमूद जो अभी तक दिखाई न पडता था वह भी उसी बल के पीछे काले घोडे को दौड़ाता हुआ आया।

दद्दा ने शिवराशि से झकझक करने में महाराज को सूचना देने में विलम्ब की। भीमदेव ने गज़नी की सेना का आक्रमण देखा और वे दौडते घोड़े पर जूनागढी द्वार पर पहुँचने के लिए रवाना हुए।

चौला घबरा उठी "मां, मां! यह क्या हुआ?"

गङ्गा ने चीख़ मारी और उससे लिपट गई। गौरव मूर्त्ति गुरुदेव उनके वयोमान के अनुकूल तीव्रता से दौड़ रहे थे।

"यह क्या हो रहा है, मां? देख, देख। जूनागढी द्वार पर नीचे कुछ झूमाझूमी चल रही है।" चौला ने कहा।

"अरे वे कछुए तो फिर खाई में कूद पड़े और महाराज तो अभी वहां तक पहुँच भी न पाये।"

कछुए पानी में गिर चुके थे। किनारे पर खड़े हुए घुडसवार तीर लगाकर छोड़ रहे थे। दद्दा के थोड़े से सैनिक नामाकूल जवाब दे रहे थे और दबादब मर रहे थे।

आखिरकार, दद्दा ने शिवराशि को दूर हटाया, और गढ़ को सचेत करने के लिए रणसिंघा फूंका।

भीमदेव, राय और विमल सेना सहित कोट-ही-कोट पर दौड़ते हुए आये। दद्दा पागल के समान बाल नोच रहा था। अपनी कमान खींचने की भी ताकत उसमें न रही थी।

"मां, महाराज आ पहुँचे, पहुंच गये।" चौला ने हर्ष से ताली पीटी।

ऊपर से भीमदेव के धनुर्धारियों ने बाण की वर्षा करना प्रारम्भ किया। सामने किनारे पर से पाच हज़ार घुडसवार खाई में कूदे। पीछे-पीछे काले घोडे पर उछलता हुआ अमीर इधर-से-उधर और उधर-से-इधर दौड लगा रहा था।

चारों ओर से यवनी सेना जूनागढ़ी द्वारपर एकाग्र होती जा रही थी। राजपूत सेना भी द्वार पर पहुँच चुकी थी।

भीमदेव ने दद्दा को गर्दन से पकडा, और "कपटी, हरामखोर" कहकर उसे खाई मे ढकेल दिया।

राय ने सैनिकों का व्यूह रचा और विमल मन्त्री पत्थरों को जमा करने की व्यवस्था में लगा।

"जय सोमनाथ" और "अल्ला हो अकबर" के बारी-बारी मे लगते हुए नारो की ध्वनि चारो ओर आकाश के परदे फाड रही थी।

"मां, मां! ओ मां! अरी मेरी मा रे!" चौला ने चीख मारी।

राजपूत सेना ने कोट पर से लडना शुरू ही नही किया था कि जूनागढी द्वार के कपाट जादू भरे हाथो से मानो उघडे हो इस तरह एकाएक खुल पडे। राजपूत सेना मे हाहाकार हो उठी। कछुए शस्त्र-सज्जित योद्धा बनकर प्रभासगढ में घुस पडे।

सामने से महमूद और उसके घुडसवार सैनिक खाई मे कूदे।

"महाराज! अन्तरगढ़ सम्हालें, चलें, जल्दी करें।"

"विमल! जल्दी योद्धाओ! अन्तरगढ सम्हालो।" भीमदेव महाराज ने आज्ञा दी और वे स्वयं अन्दर आती यवन सेना को रोकने के लिए नीचे उतरे। "अन्तरगढ, अन्तरगढ, अन्तरगढ" की चारो ओर आवाज़

फैल गई।

राय ने 'जय सोमनाथ' की घोषणा करके कोट से नीचे आने के लिए छलांग मारी।

टपटप राजपूत योद्धा कोट से नीचे कूदे और दरवाज़े से रेल जैसी भीतर घुसती हुई अमीर की सेना को रोकने का प्रयत्न करने लगे। जूनागढी दरवाज़े पर बाणों से, तलवारों से, गदा से और हाथों-हाथ युद्ध होने लगा। गुजराती वीरों ने अनसुने पराक्रम कर दिखाए।

राय पागल की तरह घूम रहे थे। एक बार तो दरवाज़े में घुसते हुए घुड़सवारों को उन्होंने पीछे धकेला, परन्तु बाहर से स्वयं अमीर मध्य एशिया के विकराल और प्रचण्ड घुडसवारों को साथ लेकर घुस रहा था।

सारी यवन सेना भीतर घुसने का घोर प्रयत्न कर रही थी, उसका वेग रोका जाने योग्य न था।

एक ओर राय लपकते थे, दूसरी ओर महाराज लड़ रहे थे। दोनों पैदल थे उनके सैनिक भी पदाति थे और विपक्षी सब घोड़े पर सवार थे।

चौला मूर्छित हो मां की गोद में पडी हुई थी। गङ्गा थरथर काँप रही थी। नीचे के विप्लव में गुरुदेव उसे दिखाई नहीं दे रहे थे। उसे शङ्कर की स्तुति करने के अतिरिक्त दूसरी कोई सुधि न थी।

जब भीमदेव महाराज अन्दर लडने के लिए घुसे तब अन्तरकोट बन्द करने की आज्ञा उन्होंने विमल को दी। विमल ने पूछा, "महाराज! आदमी भेजकर दरिया के रास्ते निकल जाने की तैयारी की जाय?"

भीमदेव ने भयङ्कर गर्जना की, "विमल! मैं जान दे सकता हूं, पर पीछे हट नहीं सकता।"

"परन्तु पाटण......"

"जा! जाकर महादेव जी की रक्षा कर"—भीमदेव ने आदेश दिया। विमल मन्त्री ने आज्ञा को सिर आँखों पर रख, उतने आदमियों

को लेकर अन्तरगढ़ में प्रवेश किया और कपाट बन्द कराये। भीमदेव अन्तरगढ के कोट पर से महमूद का युद्ध देखने के लिए उद्यत हुए।

राय ने अभूतपूर्व पराक्रम दिखाया। उनका दाहिना हाथ कट गया था। बहते हुए रक्त के साथ बायें हाथ मे उन्होंने खड्ग लिया और एक सैनिक की मदद से यवनों का संहार करने के हेतु घोड़े पर सवार हुए।

उन्होंने कुछ क्षण के लिए तो यवन योद्धाओं से "तोबा तोबा" कहलवा ही दी परन्तु उनके दाहिने हाथ से मूसलाधार रक्त बह रहा था, आँखों के सामने अंधेरा छा रहा था, कुछ समझ में आता न था और न कुछ दीख ही पड़ता था। इतना होते हुए भी वे बराबर घूम रहे थे। आखिरकार एक बाण उन्हें लगा और बहादुर राय रत्नादित्य घोड़े से गिरे और फिर न उठे।

अप्सराओं ने आकाश से पुष्प वर्षा की।

: ४ :

गङ्गसर्वज्ञ दौड़ते-दौड़ते शिवराशि को पकड़ने गये, कारण वह कुछ गड़बड़ कर रहा था ऐसी उन्हें आशङ्का हुई। कल रात को वह पागल जैसा बोल रहा था। सुबह से गणपति के मन्दिर में अकेला बैठा था, अभी दद्दा को कुछ समझा रहा था—इसमें कुछ रहस्य अवश्य होगा यह प्रतीत हो रहा था।

वे जूनागढ़ी द्वार के पास गये हैं यह देख शिवराशि चलता बना यह भी उन्होंने देख लिया और कपाट खुलते भी उन्होंने देखा था। ज्योंही कपाट खुले त्योंही उन्हें अन्त पास आगया है यह निश्चय होगया था। वे शिखर की ओर देखकर बड़बड़ाये, "भोलेनाथ! यह अन्त है क्या? तुझे क्या हुआ है?"

वे तुरन्त वापिस हुए। गङ्गा और चौला को यवनो के हाथ से अवश्य ही उबारना था और अन्त में उनका अपना स्थान देव के पास ही था। सैनिकों की दौड़ादौड़ जहां न थी ऐसी गलियों से होकर वे

धीरे-धीरे अन्तर कोट तक जा पहुंचे।

वे भगवान् की इच्छा क्या थी यह जानने का निष्फल प्रयत्न कर रहे थे। उनके हृदय मे दीनता ने प्रसार किया। पुरुष प्रयत्न की निष्फलता उन्हे प्रतीत होने लगी।

आज चलीस वर्ष से उन्होने प्रभास को सिनगारा था, धर्म सिद्धान्तों का प्रचार किया था, और भगवान् की आन समस्त भरतखण्ड में फिराई थी। यह सारी साधना पल-भर मे व्यर्थ होती मालूम हुई। उनकी श्रद्धा विचलित होने लगी।

उस समय सदा से सेवित शिव समर्पण का भाव उनकी सहायता के लिए दौड़ा। उनका भोलानाथ जो करे सही ही माना जाय। त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा के नाम पर जहां बीभत्स रस की शिक्षा होती हो, भैरव की अर्चना के नाम पर जहां अत्याचारों का बोलबाला हो, जहां उसके जैसा व्यक्ति कुछ भी करने में समर्थ न हो, जहां शिवराशि जैसे व्यक्ति को गुरुपद प्राप्त होने की संभावना हो, वहां तीर्थ धाम को अमर करने में भला कभी सार्थकता हो सकती थी?

वे भगवान् की आज्ञा का रहस्य समझे। प्रभास का पतन दुष्ट-विधियों के कारण हो और उनसे भी अधिक उन दुष्ट विधियों के करने वालों का वहां से लोप होगा। भगवद्भक्ति नूतन एवं विशुद्ध स्वरूप धारण करके विजय प्राप्त करेगी, यह सब उनके सामने प्रत्यक्ष था। तथापि उस अधःपतन को वे किसी तरह रोक न सके अतएव भगवान् ने उन्हें भी अपने पास ही बुला लिया था—केवल घड़ी-पल का विलम्ब था।

"परन्तु भगवन्! आपका भी इसी यवन के हाथ विध्वंस होगा?" उनके परम आर्द्र हृदय से यह प्रश्न उठा, "जिस तृतीय नयन से त्रिपुर दैत्य का दाह किया, हे भगवन्! आपने उसे क्यों मुद्रित कर रखा है—मेरे प्रभु?" उन्होंने करुण पुकार की। "क्या हम इस कृपा के योग्य भी नहीं?" वे चलते-चलते अन्तर कोट के सामने आ पहुंचे परन्तु तब तक वहां के द्वार बन्द हो चुके थे। "क्या अन्तिम क्षण में

अपने प्रभु का दर्शन भी उनके भाल पर न लिखा था ?" वे निकट किसी घर के चबूतरे पर बैठ गए। आधे खुले हुए कपाट की ओट में किसी घायल मरते हुए पुरुष की परिचित आवाज़ आई, "पानी, पानी।"

वे अन्दर गये। दीपा कोठारी का अन्तिम समय था।

"कोठारी, भाई !"

"कौन गुरुदेव ! धन्य भाग हैं महाराज कि इस घड़ी आपके सामने ही मेरी मृत्यु हो। पानी !"

"ठहरो भाई, मैं लाता हूं"—कहकर गुरुदेव ने उसके सूखते हुए गले में पानी डाला और पूछा, "तू घायल कहां हुआ ?"

"पुलपर जब युद्ध हो रहा था तब मैं पत्थर इकट्ठे करने में व्यस्त था। वहां से भोजन तैयार हुआ कि नहीं यह देखने आरहा था कि गणपति के मन्दिर से शिवराशि और यवन सेना के कुछ आदमी आते हुए मिले। मैं पूछने गया तो एक ने मुझे खंजर मारा और इस रास्ते फेंक दिया। उस घाव के कारण तो मुझे बड़ी बेचैनी मालूम हो रही है और मैं जीवन-मरण के झूले में झूल रहा हूं।"

"कोठारी ! भगवान् की हम पर बड़ी अवकृपा है।"

"महाराज ?"

"उनका पता नहीं परन्तु वे किसी स्थान पर लड़ रहे होंगे। अथवा कदाचित् उन्होंने कैलाशवास किया हो—भोलानाथ जो करे सो सही।"

"गुरुदेव ! परन्तु यह सब क्या ?"

"भोले शम्भु की इच्छा के अधीन रहो कोठारी ! पृथ्वी पर प्रलय काल वर्त्तमान है।"

"गुरुदेव !" कोठारी के गले में टूटती हुई हिचकियां शुरू हुईं।

"कोठारी ! नमः शिवाय बोल नमः शिवाय, नमः शिवाय।" गुरुदेव के हाथों में कोठारी दीपा ने प्राण त्याग दिये।

उसकी आंखें मीचकर गुरुदेव वहां से रवाना हुए। यवन किस

प्रकार आये इसका रहस्य उन्हें अब मालूम हुआ और साथ-ही-साथ अन्दर जाने का मार्ग भी सूझ गया। अन्तरकोट के द्वार के सामने आंगन में जो मारुति का मन्दिर था उसके नीचे से सुरंग जाती थी। सुरंग में हवा पहुंचने को भी मन्दिर की भींत में पोल थी और छत पर हवा बारी रखी थी। और जब शिवराशि यवनों को अन्दर बुला सका तो फिर वह स्वयं उधर क्यों न जा सकते थे।

वे तेजी से आङ्गन में गये। वहां तेजी से भयङ्कर मारकाट चल रही थी। चारों ओर अमीर के घुडसवारों और गुजराती योद्धाओं की गर्जनाएं और चीखें सुनाई देती थीं।

मारुति के मन्दिर की छत पर चारों ओर पत्थर और मूर्त्तियां इकट्ठा करके कुछ योद्धाओं ने गढ बना लिया था और वहां खडे होकर वे बाणों से शत्रुओं को बींध रहे थे। इन योद्धाओं के कौशल के कारण अन्तर कोट के दरवाज़े तक अमीर की सेना पहुँच ही न सकी थी।

एक दूसरे रास्ते की ओर से हल्ला हुआ, रणसिंघे की आवाज़ हुई। और यवन योद्धाओं ने एकदम घोड़े मोड लिए और वे उधर ही दौड़ पडे। गुरुदेव रास्ता उलांघ कर मारुति के मन्दिर की ओर गये।

"गुरुदेव! भीतर आजाइये" ऊपर से किसी की आवाज़ आई।

"कौन, वीरा चावड़ा?" गुरुदेव ने सम्बोधित किया।

तुरत कपाट खुले। गुरुदेव अन्दर गये और वीरा उन्हें देखकर रो पडा। "गुरुदेव, गुरुदेव! महाराज कैलाशवासी हुए।"

"क्या कहते हो?"

"वे तो सिह की तरह लड़े, सैंकडों यवनों का संहार किया परन्तु आखिर······" वह ठण्डी सांसें लेने लगा।

"भोलानाथ! जो तू करे सो सही," निःश्वास छोडकर गुरुदेव ने कहा, "महाराज का शव कहां है?"

"हम सात व्यक्ति साथ थे। महाराज गिरे यह मालूम हो तो सेना हताश होकर अस्त-व्यस्त हो जाय, इस भय से हम उन्हें यहां ले आये

और रास्ता रोक कर हम यहां बैठे हैं। जब हम सातों ही समाप्त हो जायंगे तब मन्दिर गिरेगा और तब ये शव किसके थे उसकी परवाह भी किसी को न होगी", वीरा ने कटुता के साथ कहा।

"वीरा! महाराज की देह हमारी नहीं है, वह चौला की है। मुझे उसको भीतर ले जाने दिया जाय।"

"किस तरह ले जाओगे, महाराज?"

"दो एक हाथ इस गोखड़े के नीचे खोदने से अन्तरकोट में जाने की सुरंग निकल आवेगी।"

"अच्छा तो ज़रा ठहरिये"—इतना कहकर वीरा अपने साथियों को डटे रहनेकी सूचना दे आया और शीघ्रताके साथ उसने और गुरुदेवने सुरंग खोदनी शुरू की। थोड़ी देर खोदी और सुरंग की खिड़की निकल आई।

"वीरा! तू यहीं रहेगा?"

"जी हां, मेरे मालिक गये अब मेरा क्या है? जितनी जल्दी मैं उनके पास पहुंच जाऊं उतना ही अधिक अच्छा हो।" इतना कहकर उसने आखिरी बार महाराज के पैर छुए, आंसू पोंछे और ऊपर आकाशी पर जा चढ़ा।

गुरुदेव को सुरंग का परिचय था। वे नीचे उतरे उन्होंने भीमदेव की देह को नीचे अपने कन्धे पर डाल लिया और चल पड़े।

लड़खड़ाते, फूटते, गिरते वे जैसे-तैसे भीमदेव की प्रचण्ड देह को उचकते हुए, घिसते हुए गणपति के मन्दिर में आ निकले। सुरंग का मुंह खुला था।

मन्दिर मे बैठकर उन्होंने ज़रा विश्राम किया और महाराज की जांच की। महाराज के शरीर पर अनेक घाव लगे थे परन्तु उनकी नाड़ी मन्द-मन्द चल रही थी। गुरुदेव ने कपड़े फाड़कर उनके घाव पर पट्टी बांधी और उन्हें फिर कन्धे पर लाद कर वे बाहर निकल आये।

कोट की ओर उन्होंने दृष्टि डाली तो वहां सैनिक गण जान को

हथेली पर रख कर लड़ रहे थे। कैसा शौर्य, कैसी भक्ति, कैसी टेक—गुरुदेव को विचार आया और उनके हृदय में गर्व की बाढ़ आई।

दूसरे ही क्षण में उनके कानों में एक भयंकर हास्य पड़ा। सामने चबूतरे पर शिवराशि बैठा था।

"क्यों? मैंने कहा था कि नहीं? तुम सब कुत्ते की मौत मरने वाले हो।" और फिर हंसा।

"राशि! जहां तू इतना बड़ा हुआ, जहां तूने दीक्षा पाई, जहां तूने वेदोच्चार किया, जहां देव पूजे वहां यवन को लाकर मित्र, गुरु और देव का घात करवाया। जहां तू हो उस धाम को भोलेनाथ जलाकर भस्मसात् करे यह मैं खूब समझ सकता हूँ।" यह कहकर गुरुदेव भीम को लेकर परकोट मे चले गये।

: ५ :

गुरुदेव ने परकोट मे पैर रखा और उनके हृदय मे नवचेतना जागृत हुई। उस परिचित मन्दिर के सभामण्डप मे वे दीन या दलित न थे। उस स्थान पर उन्होंने चालीस वर्ष तक अखण्ड राज्य किया था—मानवों की देह एवं आत्मा पर। वहां बैठकर उन्होंने चक्रवर्त्तियों के द्वारा समर्पित अर्घ्य ग्रहण किये थे, और वही बैठकर उन्होने भरतखण्ड की विद्वत्ता एवं संस्कार पर आधिपत्य भोगा था। वहां वे भगवान् लकुलेश के उत्तराधिकारी थे और वे ही जगत् के मोक्षद्वार के महामन्त्र को उच्चारित करने वाले थे।

जैसा उनका वास्तविक स्वरूप था वैसा होगया।

गङ्गाने उन्हे आते देखा। वह और चौला घबराती हुई, कांपती हुई नीचे उतरी। चौलाने भीमदेव को देखा, उनका देहावसान होगया यह उसने सोच लिया और विदीर्ण हृदय से रोती हुई वह उनके शरीर पर जा गिरी। गुरुदेव ने सांस लिया और सदैव की भांति वैसे ही सीधे, शान्त, गौरवान्वित एवं भव्य रूप में खड़े हो गए।

"चौला!" गुरुदेव ने कहा "भगवान् की इच्छा जो हमने निर्धारित

की थी उससे कुछ भिन्न ही निकली। बेटा! रोने से काम नहीं चलेगा। तैयार हो जाओ! अभी-अभी अन्तरकोट गिर जायगा और यवन भीतर घुस आयेंगे। तू चौला नहीं है, पाटण के स्वामी की रानी है। यवनों के स्पर्श करने से पहले ही तेरा कर्त्तव्य अग्नि प्रवेश करना है।"

चौला पागल जैसी देखती रही। भीमदेव गये और उनका जीवन-दीप बुझ चुका था।

"महाराज कब आहत हुए?"

"अभी कुछ जीव है। तेरी व्यवस्था करदूं फिर देखूंगा कि उनके जीने की आशा है या नहीं। गङ्गा। जल्दी कर, चौला को तैयार कर। मैं लकड़ियां जुटवाता हूं। इसके भाग्य में परलोक में ही सुख बदा है। और गङ्गा! यवनों के हाथ चढ़ने में सार नहीं है, तू भी तैयार हो जा।"

"सर्वज्ञ! मेरे मरने के लिए अग्नि की अपेक्षा नहीं, मेरी चिन्ता आप न करें।"

एक साधू घबरा कर वहां पड़ा हुआ था। उसके द्वारा गुरुदेव ने लकड़ियां मँगवाई और अपने हाथसे चिता की रचना की। गङ्गाने चौला को चन्दन से अर्चित किया।

चौला के आंसू सूख गए थे। यन्त्रवत् वह गुरुदेव जैसा कहते वैसा ही करती जाती थी। वह भोलेनाथ के पास आई।

लोहू से चिपके हुए बालों को महाराज के कपाल से हटाती हुई वह बड़ी देर तक उनके मुख की ओर टकटकी लगाकर देखती रही।

वह स्वयं भी शव के समान हो गई थी। उसका मुख रस विहीन हो गया था, और आँखे काच के समान फीकी हो गईं थीं।

उसने महाराज की चरणरज सिर चढाई, वह गङ्गा के पैर लगी और गुरुदेव को प्रणिपात किया। गुरुदेव स्वस्थ एवं शान्त हो गए थे। उन्होंने अग्नि देने के लिए कुछ लकड़ियां सुलगाईं।

विमल मन्त्री बाहर से हाँफते-हाँफते आये। उन्हें भी एक दो घाव लगे थे।

"गुरुदेव ! ठहरिये । यहां से चले जाना ही ठीक होगा । अन्तर कोट अभी गिरने ही वाला है । उसके बाद परकोट के गिरने में देर न लगेगी ।"

"हां ! परकोट के गिरते तो देर न लगेगी । मैं चौला को अग्नि-प्रवेश कराता हूँ और मैं अमीर से मिलने को तैयार हूं ।"

"अरे, पर यह क्या ? महाराज गये ?"

"नहीं, अभी जीवित हैं, परन्तु घड़ी-दो-घडी के पाहुने हैं ।"

"विमल ने होंठ पीसे । उस समय रोने का समय न था ।"

"परन्तु गुरुदेव मान जाइये, आपको यहां से भाग जाना चाहिये ।"

"मैं पहले से ही कहता आया हूं कि जहां मेरे भोलेनाथ वहां मैं भी।।" विमल मन्त्री ने निःश्वास छोड़ा और नीचे झुककर अपने स्वामी को प्रणाम किया ।

इतने ही मे पीछे से दौडता, हांफता सामन्त आ पहुँचा ।

"सामन्त बेटा ! तू इस समय ?"

"हां, मुझे प्रतीत हुआ कि प्रभास गिरने वाला है इसलिए मैं तुरन्त आया ! चलो पीछे दरिया की खिडकी खुली है, और बाहर नौका तैयार खड़ी है । जल्दी करो ।"

"वत्स ! तेरे शौर्य की सीमा नहीं है । चौला ! भगवान् की इच्छा है कि तेरा अग्नि-प्रवेश नहीं होगा । तू सामन्त के साथ चली जा । सामन्त! तू महाराज को भी साथ ले जा । वे जीवित रहेंगे तो फिर प्रभास की स्थापना करेंगे ।"

"चलो जल्दी करो । विमल ! तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"मेरा स्थान तो अन्तर कोट पर है ।"

"नहीं, मेरे साथ । भीमदेव अवश्य जीवन-लाभ करेंगे और यदि ऐसा न भी हुआ तो उन्हें मरने पर भी कोई न जानेगा । उनके नाम पर तो अभी महमूद का संहार करना है । तुम्हारे बिना गुजरात का बल टूट जायगा । चल दो यहां से ।"

"विमल ! सामन्त जो कहता है वह ठीक है। महाराज और तुम रहोगे तो गुजरात अपनी भस्म से भी फिर खड़ा होगा और महमूद का पीछा कर सकेगा। जाओ।"

"परन्तु—"

"परन्तु न वरन्तु। मेरी आज्ञा है, जाओ, जाओ।" गुरुदेव ने आदेश दिया।

"परन्तु गुरुदेव ! आप ?"

"जा समय बरबाद न कर ! मैं तो यहीं रहूंगा, भगवान् के चरणों में।"

एक दम तेज़ी के साथ सामन्त और विमल ने मूर्छित भीमदेव को उठाया, चौला को साथ लिया और पिछले द्वार से भाग निकले।

"सर्वज्ञ ! आपने सबकी व्यवस्था कर दी, अब मेरी ही करना शेष है।"

"क्या ?"

गङ्गा ने घुटने टेककर प्रार्थना की, "आप मेरे प्राण हो, गुरु हो, देव हो। आपके चरणों में ही मैं रही हूं और मुझे वहीं प्राण भी त्यागने हैं।"

बिजली के कड़ाके के समान आवाज़ हुई और "अल्ला हो अकबर" की गर्जना चारों ओर सुनाई दी।

"अब समय थोड़ा है। एक ही मेरी विनती है, आपने जन्म भर किसी की हिंसा न की, परन्तु यदि मैं स्वयं अपने हाथों न मर सकूं तो मेरे प्रभु ! अपने हाथों आप मुझे मोक्ष देने की कृपा करें"—कहकर गङ्गा ने अपने सिर गुरुदेव की चरण-रज चढ़ाई।

सर्वज्ञ के हृदय में एक लहर उठी। उन्होंने धराशायिनी गङ्गा के वदन पर जन्म भर की भक्ति एवं एकनिष्ठता का प्रतिबिम्ब पाया। वे नीचे झुके। उन्होंने गङ्गा के केश-पाश को ममता के साथ सँवारा और उसके मस्तक पर हाथ फेरा। "गङ्गा ! तू कैलाशवासिनी हो।"

परकोट के बाहर कोलाहल मच गया था। परकोट के कपाट पर शत्रु घुस रहे थे। "अल्ला हो अक़बर" की गर्जना पास-पास आ रही थी।

गङ्गा ने सिर से सोने की कंघी निकाली और उसके कांटों की नोक की जांच की और उसे अपने गले पर जमा कर खूब ज़ोर से दबा दिया। एक चीख, एक धमाका—और गङ्गा का शव एक ओर लुढ़क गया। मरते दम भी उसने अपने प्रभु के हाथ से हत्या न करवाई।

: ६ :

प्रभास में एक प्रहर तक संहार होता रहा और विधिवश ही वहां कोई जीवित रहा होगा। सारे गाँव में तो कभी से लूट-पाट चल रही थी। आग भी लगाई गई थी। परन्तु महमूद के आदेश के बिना कोई ऊपर कोट में घुसा न था।

गज़नी के अमीर ने सांझ के समय अन्तर कोट में पहला क़दम रखा और वहां रहे-सहे राजपूतों का क़त्ले-आम हुआ। परकोट के अन्तरद्वार तोड़ने का आदेश हुआ। यह तो सरल काम था। भीतर से एक छोटी-सी सांकर लगी थी सो तुरन्त टूट गई।

घोड़े को बढ़ा कर महमूद परकोट मे घुसना चाहता ही था कि सामने हाथ अड़ाकर शिवराशि खड़ा हुआ।

"सबूर, अमीर ! मै ही तुझे यहां लाया हूं" उसने बुलन्द आवाज़ से कहा। हज़ारों सैनिको के क़त्ल के बाद एक निःशस्त्र मनुष्य को जगद्विजेता के सामने खड़े होते देख वह हँस पडा।

"तिलक ! यह क्या कह रहा है ?"

तिलक ने शिवराशि से पूछा और उसका सम्पूर्ण आशय महमूद को समझाया, "जहांपनाह ! यह कहता है कि मैंने ही आप के आदमियों को सुरङ्ग बतलाई और आपने मुझे और मेरे देव को बचाने का वचन दिया है। आप जितनी दौलत चाहो मैं देने के लिए तैयार हूं।"

अमीर महमूद हँसा, और "काफ़िर ! महमूद मूर्त्तियों को बेचने वाला नहीं, वह तो तोड़ने वाला है।" ऐसा कहकर उसने अपनी तलवार

शिवराशि के सिर पर ज़ोर से मारी।

उसने घोड़े को एड़ी लगाई और वह परकोट में जा घुसा। महमूद के आस-पास खड़े हुए योद्धा भी मुस्करा उठे। और मूर्छित शिवराशि एक ओर पड़ा रहा।

परकोट में आते ही महमूद चकित हो गया। वहां किसी भी पुरुष का नामो-निशान दिखाई नहीं देता था। तथापि सब दीपक जगमगा रहे थे, और मणिजटित स्तम्भों से अनेक-रंगी किरणें सभामण्डप को देदीप्यमान कर रही थीं।

महमूद ने अनेक मन्दिर देखे थे और अनेक तोड़े थे। अस्त होने वाले सूर्य के सुन्दर प्रकाश में जगमगाता ऐसा मणिमय प्रासाद उसने अभी तक देखा न था।

क्षणभर उसने अपना घोड़ा रोका, वह अद्भुत सौंदर्य देखा और घोड़े से उतर पड़ा।

सहस्रों वीर राजपुत्रों की आहुति से परम पुनीत उस प्रभास धाम में युगों से अमर एवं भव्य उस मन्दिर में गुरुदेव गङ्गसर्वज्ञ एकाकी, भव्यता में शङ्कर के समान, भगवान् की आरती उतार रहे थे। जगत् का क्षय हो चुका था। केवल वे और उनके देव दोनों ही थे।

अमीर उस वृद्ध की भव्यता को देखता रहा। वह भी एक शब्द न बोल सका। गुरुदेव ने आरती भूमि पर डाली और गर्भद्वार में कमर पर हाथ रख वे खड़े रहे—अपूर्व गौरव से सुशोभित।

अमीर ने होठ दबाये और कहा, "बुड्ढे! दूर रह।"

"नहीं" हाथ के अभिनय से गुरुदेव अमीर के अर्थ को समझे, और "यवन!" शान्ति को न खोते हुए कहा, "मेरा भोलानाथ और मैं दोनों ही साथ हैं। विनाश में भी सनातन—अनादि एवं अनन्त।" वह हंसा।

उस समय अमीर बातचीत करने की धुन में न था। उसने एक छलांग मारी। उसके हाथ में उसकी तलवार चमकी..

गुरुदेव का शीश धड़ से अलग हो बाहर लुढ़क गया।

एक और छलांग मार कर अमीर गर्भद्वार में घुसा। उसने एक गहरा सांस लिया, पास खड़े हुए एक योद्धा से लोहे की गदा ली और उसे सिर पर घुमा कर मारा.......

सृष्टिकाल में सृजन किये हुए भगवान् सोमनाथ के बाण के तीन टुकड़े हो गए।

: ७ :

वदी दूज का चांद आकाश में चढा। मध्यरात्रि हुई। शवों से भरपूर प्रभास पर गिद्ध मंडराने लगे। वहा केवल मरते हुओं की चीखें सुनाई देतीं और चारो ओर दुर्गंध फैल रही थी।

परकोट के सामने पडे हुए मुर्दे और घायल व्यक्तियों में से एक बिखरी हुई जटावाला आदमी उठा। उसकी चाल का कोई ठिकाना न था। उसे आखो से कुछ नहीं दिखाई देता था।

लडखडाता हुआ वह मुर्दोंमे से निकल कर सभामण्डप मे गया और उसने गर्भद्वार पर जाकर नमस्कार किया।

वह जहां भगवान् की मूर्त्ति थी, वहां पहुंचा।

उसने हाथ घुमाया परन्तु उसके हाथ बाण न आया।

उसने आँखे फाड कर शोध किया।

मानों वह नींद में हो उस तरह अन्ततः उसके हाथ में पत्थर के टुकडे आगए।

अन्धे के समान उसने शिवजी के बाण को ढूंढा।

वह थर्राता हुआ उठा और गर्भद्वार के बाहर आया।

उसके पैर में कुछ अटका, उसने उसे हाथ में लिया और वह आगे जहां चांदनी का प्रकाश पड़ रहा था वहां उसे उठा लाया। उसने उसे ऊंचा उठाया—देखा—उन आंखों को पहिचाना—वह मुख, वह सफेद जटा उसने चीन्ह ली।

"अरे, अरे, अरे···" उसने सिर नीचे गिरा दिया आँखों पर हाथ रखा।

उसने थोड़ी देर बाद फिर सिर ऊंचा किया। मानो उसे सुध आई हो इस तरह उसने आंख मूंद ली। और हजारों बार देखा हुआ मणिमय सभामण्डप गुरुदेव से सुशोभित देखा।

उसने आंखें खोलकर चारों ओर देखा। एक सांस उसके गले में से निकली।

उसने मुकुरमय स्तम्भ को दोनों हाथों से पकड़ा और उससे अपना सिर टकराया। वह गिरा। `

उड़ते हुए गिद्ध उस पर मंडराने लगे।

सत्रहवाँ प्रकरण

चौला का नृत्य

: १ :

सामन्त और विमल, खारा और नीरा की मददसे मूर्छित महाराज को और चौला को जहाज़ पर ले आये। महाराज को अनेक घाव हुए थे, परन्तु जीवन का संशय न था ऐसी अनुभवियो की धारणा से सबकी चिन्ता कम हुई।

राव कमा लाखाणी सामन्त और विमल तीनो ने मिलकर पूरी-पूरी सलाह की। परिणाम स्वरूप यह निश्चित हुआ कि भीमदेव महाराज जीवित हैं और महमूद के साथ लडे जा रहे हैं, ऐसा प्रचार किये बिना पाटण की सेना का डटा रहना सम्भव न था। और महाराज अच्छे ताज़े लड़े ही जा रहे हैं ऐसी प्रतीति होने के हेतु भीमदेव महाराज को राव कमा कच्छ ले जाय यह भी निश्चय हुआ। सामन्त और विमल खम्भात जायं। चौला को वहां छोडकर, दामोदर मेहता से जा मिले और महमूद का पीछा करें, यह भी निश्चय किया गया।

जब से प्रभास छोड़ा तब ही से चौला बिलकुल बेसुध हो ऐसी ही बैठी रहती। जितना कहा जाता केवल उतना ही वह करती। भीमदेव के पास भी जब वह बैठती तब भी मूढ के समान स्तब्ध रहती।

उसके प्राण मानों निकल ही गए हों ऐसा प्रतीत होता था। कोई यदि सोमनाथ महादेव की चर्चा करता तो वह ध्यान से सुनती, और अन्य किसी भी बात को सुनने के लिए उसके पास कान ही न थे। थोड़ा बहुत वह बोलती तो सामन्त से। जब उसे खम्भात

जाने को कहा गया तो भी उसने कुछ न पूछा। भीमदेव को कच्छकोट क्यों ले जाया जा रहा है इस बात की भी उसे जिज्ञासा न हुई। जैसे उसका सत्व ही उतर गया हो ऐसी वह हो गई थी।

अश्रु-विहीन निश्वास-मात्र पर निर्वाह करती हुई चौला खम्भात के राजगढ़ में भीमदेव महाराजकी रानीके स्वरूपानुरूप रखी गई। परन्तु उसे किसी भी चीज़ मे रस न था। किसी समय "मेरे नाथ, मेरे भोलेनाथ !" कहकर वह गहरी निःश्वास छोड़ने लगती।

और जब गगनराशि उससे मिलने आया तब उसकी आंखों मे पलभर के लिए तेज आया। गुरुदेव के जिन अन्तिम शब्दो को गगनराशि ने सामन्त से सुना था उनका उल्लेख होने पर उसकी आंखो से आंसू टपकने लगे।

वह बोलती न थी, रोती न थी,केवल दूर दरिया पर दृष्टि स्थिर कर बैठी रहा करती।

सामन्त और विमल जब जाने के लिए उसकी अनुज्ञा लेने आये तब उसने नीरस भाव से अनुज्ञा दी। दो-चार दिन मे जब गगनराशि आकर कुछ बातचीत करता तब वह कही दिवास्वप्न से जगी हो ऐसी प्रतीत होती थी।

एक दिन जब गगनराशि ने खम्भात में पशुपत मठ की स्थापना की और सोमनाथ के मन्दिर बंधवाने की इच्छा प्रकट की तब कही उसके मुख पर लोहू उतर आया। कुपित जैसी वह गगनराशि की ओर देखती रही।

"गगनराशि ! मेरा भोलानाथ तो एक ही हो सकता है, दो नही।"

उसकी आखो मे दीप्यमान उग्रता को देख गगनराशि विस्मित हुआ और उस दिन से उस सम्बन्ध की चर्चा करने का उसे साहस न हुआ। और किसी दिन गगनराशि ने नर्त्तकियो की चर्चा की।

"राशि जी ! नृत्य करते समय जैसे वस्त्र एवं आभूषण मैं पहनती थी वैसे यहां मिल सकेंगे ?"

"हां, अवश्य।" गगनराशि ने चकित होकर कहा।

दूसरे दिन नखशिखान्त सुन्दर वस्त्राभूषण लाये गए और उसने उन्हे हर्ष से स्वीकार किया। इतने दिनों मे दास-दासियो ने पहली बार रानी को मुद्रित देखा और वे चौला के पास उपस्थित हुईं।

उसके बाद उसने कुछ दिन बोलना फिर वन्द कर दिया। सारे दिन वह दरियाके सामने देखती रहती और रात्रिको दीपक जलने के समय से वह अपने वस्त्राभूषण निकालती, उन्हें खंखेरती और बाहर निकालकर रख देती। प्रतिदिन मध्यरात्रि पर्यन्त वह कान पर हाथ रख बाट जोहती बैठी रहती, और फिर गहरा निःश्वास छोड वस्त्रो को यथास्थान रखदेती।

यह क्रम नित्य बगैर चूके चलता रहा। परिचारक उसके विषय मे मनमानो बातें करते।

गगनराशि और दासीजन कुछ-न-कुछ नई बात लाते और चौला को रिझाने के लिए कहते। महमूद की सेना में अब उत्साह न रहा था। उसके सैनिकों को अपने-अपने घर लौटना था। महमूद को लौटते हुए पाटण का राज्य स्थापित करना था। परन्तु यदि वह सब मनमानी करे तो उसकी सेना अवश्य ही बलवा मचा दे। अब वह घबराया हुआ है और भाग जाना चाहता है।

और नई बाते फैलीं। सामन्त में भगवान् सोमनाथ ने सचमुच शक्ति रखी है। वह सामन्त भरतखण्ड मे घूम रहा है। घोघाबापा की यशोगाथा घर-घर गाई जा रही थी और जहां-जहां सामन्त जाता था, वहां-वहां उसका क्रोध एवं उत्साह दूसरों मे भी प्रकट होता था। उसे तो महादेव ने अक्षय्य शक्ति दी है। उसे दिन और रात नहीं, भूख और प्यास नहीं, श्रम और विश्राम नही। वह तो महमूद का विनाश करने वाली उत्कण्ठा की ज्वाला मूर्ति बनकर भ्रमण कर रहा है।

फिर और बाते सुनाई पड़ी जिनसे प्रत्येक गुजरवासियो के हृदय मे उत्साह एवं आशादीप ज्वलित हो उठे। उज्जयिनी और मारवाड़ के सैनिक आ पहुंचे। साम्भर के चौहान की सेना सामन्त स्वयं ले आया।

अन्य राजन्य वर्ग गुजरात के पक्ष में खड़े हुए और पाटण से नल-कोट तक गुजरात की और उसके मित्र राज्यों की फौज फैल गई।

परन्तु इनमें से किसी भी बात में चौला को रस न था। विशाल निस्तेज नयनों से वह संवाददाता की ओर देखती और जो भी कुछ कहता जाता उसे वह धीरज से सुनती। बात पूरी होने पर वह श्वास छोड़ती और समुद्र की ओर देखने लगती।

दो महीने बीत गए, और एक दिन उससे कुछ खाया न गया। खाते ही उलटी हुई। पन्द्रह दिन बीते और उसे प्रकट हुआ कि वह सगर्भा थी। यह विदित होते ही उसने एक चीख मारी और मूर्छित होगई।

जब उसे चेतना आई तब उसके नेत्रों में अश्रुधारा वह रही थी। वह पार्वती न थी, भीम शम्भु न थे, वह शम्भु से व्याही न थी; परन्तु अपने भगवान् को छल कर चञ्चल मनोवृत्ति के वशीभूत हो उसने एक मनुष्य से विवाह कर लिया था। अब वह उसके पुत्र की माता होने वाली थी।

दिन और रात वह स्वयं किये हुए उस अत्याचार पर अश्रु वहा रही थी।

जिस रात को उसने माना था कि उसे मोक्ष मिल गया वही रात अब उसे पल-पल त्रास देने लगी। वह भ्रष्ट होगई थी। स्वयं वह देव की दयिता राजी खुशी से अपने रोम-रोम से अधम बनी थी। उस समय वह अधम से भी अधम थी। वह अपने शरीर में मानवीय सम्बन्ध कर कलङ्क धारण कर रही थी।

वह अपनी खटिया खिड़की के पास बिछवाती थी। समुद्र पर दृष्टि स्थिर करके, अश्रु वहाती, प्रतिदिन रात को अपने नृत्यकालीन वेश-भूषा को दासी के द्वारा निकलवाती, उन्हें तैयार करवाती और मध्य-रात्रि व्यतीत हो जाने पर उन्हें फिर ऊंचे रखवा देती थी।

अब तो दिन-प्रतिदिन उत्साहप्रद समाचार आते रहते थे, परन्तु

उन्हें सुनना उसे रुचिकर न होता था।

हिन्दू सेना संघ आगे बढा जा रहा था। महमूद की उस रास्ते जाने की हिम्मत न थी अतएव वह कच्छ के मार्ग से गुजर रहा था। गज़नी का अमीर आया, उसने प्रभास गिराया, भगवान् की प्रतिमा को भङ्ग किया, परन्तु उसका कुछ भी सार उसके हाथ न लगा। साहस की दिवाली मनाकर उसके हाथों में राख और नाक मे गन्ध-मात्र रही, और कुछ नहीं।

महमूद भागा। पाटणकी चमू उसका पीछा कर रही थी। रास्ते भर स्वयं महाराज और राव कमा लाखाणी उसे खूब सता रहे थे।

दीपावली आई, और साथ ही अच्छी-से-अच्छी खबर मिली। महाराज ने महमूद को कच्छ के पार मार भगाया और अब वे पाटण आ पहुंचने वाले थे।

गांव-गांव से लोग हर्षनाद करते हुए खम्भात आ पहुंचे। खम्भात में घर-घर दीये जले। राजगढ में डंके निशान गड़गडाये। "भीमदेव महाराज की जय" से राजगढ गूंज उठा।

चौला रानी के दर्शनार्थ गांव-गांव से लोग आये, परन्तु चौला मे तनिक भी चेतना न आई। दिन-प्रतिदिन उसके शरीर मे मालिन्य बढता जाता था। और ज्यो-ज्यो वह कलंकपूर्ण मालिन्य बढता जाता था, त्यों-त्यों उसका जीव अधिकाधिक गंभीर अधमता में निमग्न होता जाता था। अश्रु की धारा बहती रहती थी—सन्तत। नयन निस्तेज एवं मलिन हो गये थे। गगनराशि की दैवक विद्या निरुपाय हो गई थी।

कुछ दिन बाद गगनराशि महाराज के निमंत्रण पर पाटण गये और उसके जीवन के साथ की जो एक सांकर थी वह भी अदृष्ट हो गई।

धीरे-धीरे उसका मान बढता गया। अब वह विजयी बाणावलि की पत्नी थी। जहां वह रहती थी वह राजगढ़ अब नये रंग से रंगाया गया और वहां दासियों की दौड़ादौड़ रहती। गीत एवं वाद्य द्वारा उसे

रिझाने के प्रयत्न किये जाते। परन्तु वह उन सबसे निर्लिप्त थी। न उसमें उत्साह आया और न उसके आंसू ही सूखे।

एक दिन महाराज के आदेश से विमल मन्त्री उसकी खबर लेने आये। महाराज पाटण पहुंच चुके थे। भरतखण्ड के राजाओं ने उनकी वीरता को अर्घ्य समर्पित किया, पाटण का गढ नया बनने लगा और महाराज ने प्रभासपट्टन का पुनर्निर्माण कर, सोमनाथ भगवान् की पुनः स्थापना करने का आदेश दिया। इस काम को हाथ में लेकर गगन सर्वज्ञ—कारण अब उनका यह सर्वज्ञ पद स्वीकृत हो चुका था—प्रभास जाने वाले थे।

यह अन्तिम संवाद चौला विस्फार नयनों द्वारा सुनती रही। यह सूचना जानते ही उसकी आखो मे चेतना आई। वह कैसे भी कर उठ कर बैठी।

"भगवान् की प्रतिष्ठा मे कितना समय लगेगा ?"

"एक वर्ष तो सही।"

"तो मुझे तब तक नही मरना है। मेरे नाथ ! मेरे भोलेनाथ ! मुझे नहीं मरना है। प्रभो ! मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ है।"

इतना शारीरिक प्रयास भी उसके लिए भारी हुआ और वह मूर्छित हो बिछौने में जा गिरी।

: ३ :

दूसरे दिनसे चौला होठ पर होठ पीसकर बैठी। वह खाने-पीने लगी। उसकी आँखो मे आते हुए तेज की झाकी दिखाई देने लगी, कारण उसे अब मरना न था। किन्तु जीना था। अब वह जीवित रहने के लिए भगीरथ प्रयत्न करने लगी।

उसने बडी कठिनाई के साथ फिर से खिडकी के पास बैठकर समुद्र का ध्यान करना शुरू किया। अपने नृत्यकालीन वस्त्राभरण को दासी के हाथ निकलवाना अब उसने छोड दिया और पहले के भांति स्वयं ही उन्हें निकालने लगी।

अब उसे पूरे दिन जा रहे थे। महाराज स्वयं चौला रानी से मिलने आने वाले हैं, यह भी समाचार मिला। भीमदेव के नाम से सारा भरत-खण्ड गाजता था। गुजरात उत्साही होगया था और नर-नारी उसके स्तोत्र गाते थे। उन्होंने महमूद गज़नवी को मार भगाया था। उन्होंने गुजरात को महान् बनाया था। वे पाटण और प्रभास दोनों ही का पुनर्निर्माण करवा रहे थे। उन्होंने शौर्य में कार्त्तिकेय के साथ स्पर्धा की थी। उनके प्रताप से सूर्य फीका पड गया था, देव और ऋषिगण अहर्निश उनके गुणों का गान करते थे।

वे रानी उदयमति के साथ चौलारानी से मिलने खम्भात आरहे थे। घर-घर तोरण बांधे गये। गली-गली में जयनाद होने लगा। राजगढ ने नूतन स्वरूप धारण किया और विजयी भटो की धूमधाम चारों ओर होने लगी। बाणावलि भीम आरहे थे—यवनों के विजेता एवं गुजरात के नाथ।

जिस दिन सुबह भीमदेव पधारने वाले थे उससे पहली रात को वह बड़ी अस्वस्थ रही। उसने स्वप्न में अपना प्रभास देखा, वृद्ध एवं भव्य गुरुदेव को आरती उतारते देखा, गङ्गा को नर्त्तकियों पर शासन करते देखा और गई प्रबोधिनी एकादशी पर अपने-आपको नृत्य करते देखा। फिर से उसने अपने भगवान् के साथ सम्बंध जोड़ा और उनकी प्रणयिनी दासी बन गई। परकोट मे मन्दिर के पत्थर-पत्थर पर बैठ उसने प्रेम-विह्वल गीत गाए थे, उसने तपश्चर्या की थी। उसने नन्दी को अपना बनाया था, उसने शङ्कर अपने कर लिये थे। भगवान् से आलिङ्गित हो वह सारी रात असीम आनन्द का अनुभव कर रही थी।

वह चौंककर उठी। उसकी रगों में जैसा पहले था वैसा उत्साह व्यापने लगा। अपने नाथ का संस्मरण उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में औत्सुक्य की प्रेरणा कर रहा था। उसकी आँखों में तेज आया, वह उठी और दासियों को बुलाकर वस्त्राभूषण धारण करने लगी।

दोपहर के बाद सामन्त-चक्र-चूडामणि महाराजाधिराज परम

भट्टारक श्री भीमदेव महाराज पाच सौ योद्धाओं के सहित नगरमें पधारे। गाँव की सारी जनता उन्मत्त हो, वस्त्र एवं आभरणों से सज-धज कर, अबीर गुलाल उड़ाती हुई बाहर निकली। राजगढ़ की अट्टालिका पर रानी के स्वरूप के अनुरूप सुवर्णजटित मञ्च पर चौला ,रानी चँवर डुलाती हुई, दासियोंके मध्य स्वामीके अवलोकनके लिए विराजमान थी। जैसे-तैसे दासियों ने उसे सुन्दर परिधान एवं अलङ्कार पहना दिये थे।

फीकी, सूखी, निर्बल वह राजगढ़ के चौराहे पर आँखें लगाकर बैठी थी। परन्तु वास्तव में उसकी दृष्टि, त्रिपुर विजय करने के लिए रणपर चढ़े हुए रुद्र को देख रही थी। उनकी आँखों में युद्ध का उत्साह, उनकी गंभीर आवाज़ में भरी हुई गर्जना, उनके शीश पर शोभायमान चन्द्रमा उसे शङ्ख और भेरियों के नाद से गूंजते हुए आकाश में दिखाई दिये। रण पर चढे हुए अपने स्वामी को देखने के लिए उसका हृदय अधीर हो रहा था। उसके गौर कपोल पर लालिमा छाने लगी और उसका श्वास भी ज़ोर से चलने लगा।

परम भट्टारक श्री भीमदेव महाराज की सवारी जनता के जयनाद से सत्कार पाती हुई राजगढ़ में आई। चमकती हुई पगड़ी पहने हुए घुड़-सवारों का झुण्ड आया; ऊँटों पर डङ्के निशान आये और आख़िर में एक प्रचण्ड हाथी पर रत्नजटित सोने के होदे पर विराजित महाराज आये। वे पालती मार कर बैठे थे। उनके शरीर पर ज़री व जगमगाते वागे थे, और कन्धे पर यवन संहारी धनुष्य था। उनके कान पर कुण्डल लटकते थे, कपाल पर केसरिया त्रिपुण्ड्र था और सिर पर मणिजटित मुकुटमणि और सुवर्ण की जगमगाहट मध्याह्नकी सूर्य-किरणोंमें सहस्रधा प्रकाण्ड में परिवर्धित हो जनता की आँखों को चकाचौंध कर रहे थे। हमारे भीमदेव—हमारे महाराज—हमारे बाणावलि—हमारे अन्नदाता—हमारे देव—इन विचारों से प्रेक्षक गण की छाती एक-एक बलिश्त फूलती थी।

चौलाने तेजःपुञ्ज से दे दीप्यमान गुजरात के स्वामी को देखा। उसने

इन्द्र के यौवन के समान उनमें सनातन यौवन देखा। उनकी आँखों में वर्त्तमान विजयी गर्व, उनके मुख पर रमता हुआ राजाओं जैसा हास्य, उनकी फक्कड़, संवारी हुई और हर्ष से फरांती हुई दाढी उसने देखी। और उसकी दृष्टि, शुष्क एवं तटस्थ, पलक भर मे वापिस हटी। उसकी आँखें त्रास से फट गई थी और उसके होंठ अकथ्य वेदना से कम्पायमान होने लगे।

"मां, मां! महाराज कैसे सुशोभित हो रहे है?"

तदनन्तर चौला रानी ने सिर तकिये पर उलटा रखा और हिचकियां उसके सारे शरीर को कम्पायमान करने लगी।

: ४ :

सवारी पर से उतरने पर भीमदेव महाराज वस्त्रालङ्कार उतारे बिना ही अधीर हो, प्रणयिनी शीघ्रताके साथ प्रियतमासे मिलने अन्तःपुर मे गये। नीचे झुक कर दास-दासियों ने उनका अभिनन्दन किया।

"चौला, मेरी चौला!" उन्होंने पुकारा और दौड़ते हुए चौला के मन्च पर जा पहुँचे।

सूखी, निस्तेज चौला ने, विशाल काले नयनों स पति को भय के साथ देखते हुए मन्द स्वर से स्वागत किया, "महाराज!"

"अररर, तू एकदम ऐसी हो गई है, मुझे क्या मालूम चौला! तू अच्छी हो जा, तेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, नहीं तो पाटण ही तुझे ले जाता, कारण ऐसी स्थिति मे यात्रा का परिश्रम तुझसे नही उठाया जा सकता। चौला! गत वर्ष तो अद्‌भुत बीता। स्मरण है प्रिये! जब हमारा विवाह हुआ। वे दिन थे दुःख के—और कहां आज का दिन! मैंने महमूद को ऐसा थकाया; और मालूम है चौला? सपादलक्ष मारवाड, और स्थानक ये सब मुझे कर देने लगे है। पाटण अब ऐसा सुन्दर बनेगा। और मैंने तेरे लिए एक ऐसा सुन्दर महल बनवाया है। जब तू जायगी तब देखना। चौला! तेरे लिए देश-देशान्तरो से मैंने आभूषण मँगवाये हैं।"

भीमदेव की उत्साह भरी वाग्धारा बहती गई, और विशाल फीके

नेत्र स्थिर कर मानो उस धारा से जमे हुए हिम की बनी हुई हो, इस तरह चौला का शरीर जड़ हो गया।

"चौला! लगभग पन्द्रह दिन में तेरा छुटकारा हो जायगा। पुत्र हो तो बड़ी ही अच्छी बात है, कारण मेरे भाग्य में बस इतनी ही कमी है। फिर तू वहां आजाना। मैं स्वयं लेने आऊंगा। नहीं तो विमल को भेजूंगा, उसे तेरे प्रति बड़ी भक्ति है। सम्भव है, मैं मालव के भोजराज पर कदाचित् चढ़ाई करूं, कारण वह आजकल बहुत गड़बड़ मचा रहा है। उसे भी ऐसा ही स्वाद चखाना है।"

उस भोले प्रणयपूर्ण भीमदेव को भान न रहा कि इस प्रकार के शब्द उसकी प्रियतमा के अन्तःकरण पर भयंकर आघात कर रहे थे।

फिर प्रणय-प्रवाह के कारण महाराज निकट आये, चौला के वदन को दोनों हाथों में लेकर उन्होंने चुम्बन किया।

समस्त जगत् चौला को दोलायमान दीखा। वह मुख और पसेवा की गन्ध, उस संवारी हुई सुवासित दाढ़ी का सुहावना स्पर्श, उन विशाल नयनों की विलासिनी कामुकता, चौला को किसी परकीय अपरिचित भाव-सी हृदयङ्गम हुई। वह नेत्र निमीलित करके उस स्नेह को सहन कर रही थी...।

"और भोलेनाथ! मुझे ऐसे चक्कर में डाल कर आप कहां चले गये? मुझे क्यों भूल गए मेरे नाथ!" चौला ने मानसिक क्रन्दन किया।

"और चौला! भीमदेव महाराज कहने लगे "वह सामन्त चौहान अभी आयगा—वह तो विलक्षण है। मेरे साथ ठाठबाठ से आने के बदले वह रात को चोर सरीखा आयगा। परन्तु चौला! मैं एक बात कहूँ—किसी से कहना नहीं—वास्तव में जो महमूद भागा मेरी वजह से नहीं, वह तो भागा सामन्त चौहान की वजह से। रात-दिन वह देश-देश घूमा है, राजा-राजा को उसने समझाया है। दामोदर मेहता तो केवल उसकी ही परम श्लाघा करते हैं। वह न होता तो हम लोग कभी के पाटण में काट दिये गए होते।"

"और चौला ! हम दोनो जीवित हैं यह भी उसी के कारण; वह न होता तो प्रभास से हमें किसने निकाला होता? परन्तु है वह अत्यन्त मूर्ख! मैंने उसे सोरठ का दण्डनायक नियुक्त करना चाहा। इतना ही नहीं मैंने उसे अन्त मे एक छोटा-सा राज्य भी देने को कहा। परन्तु वह तो टस-से-मस नही होता। वह तो कहता है कि अब मेरा कर्तव्य पूरा हुआ, अब मैं घोघागढ जाता हूं—वहां तो कौव्वे भी नहीं उड रहे हैं। मैं उसे तेरे पास भेजूंगा, तू उसे समझाना। हमारे पास रहेगा तो वह हमारे गुजरात की कीर्ति को उज्ज्वल करेगा।"

"महाराज !" आखिरकार जो प्रश्न वह बहुत पहले से ही पूछना चाहती थी, उसे पूछने की चौलाने हिम्मत की "प्रभास कब तक बंध जायगा ?"

"लगभग आठ महीने लगेंगे।"

"तो फिर ज्योंही फ़ारिग हो जाऊं वहां चली जाऊं ?"

"अरे ऐसा भी क्या हो सकता है ? तुझे तो पाटण आना है न ? वहां हम आनन्द से रहेंगे, मज़े लूटेंगे।"

"मेरा तो मन प्रभास मे अटका है। अपने भोलानाथ की मुझे पूजा करनी है।"

"अरे ऐसे सुशोभित मन्दिर का मै निर्माण करवा रहा हूँ, और नये बाण की स्थापना जब मैं करूंगा तब देखना क्या आनन्द आता है!"

"नया बाण ? मेरे भगवान् का क्या हुआ ?"

"वह बाण तो महमूद ने भग्न कर दिया। और उसके टुकड़े गज़नी को ले गया।"

चौला की आँखें स्थिर हो गईं। व्याकुल हो पागल के समान वह चारों ओर देखने लगी। उसकी चक्कर खाती हुई आँखें देख महाराज घबराए और दासियों को बुलाया। जब दासियां आईं तक तक चौला मूर्छित हो गई थी।

दूसरे दिन सामन्त मिलने आया—सूखा,श्याम और कठोर आकृति, दो-दो घावों से अनाकर्षक, सन्तत भोगी हुई आकुलता के कारण

भयङ्कर। बरामदे में आते ही वह पल भर खड़ा रहा और क्षीण हुई चौला को देखता रहा।

"देवी! मेरा प्रणाम" कह कर सामन्त ने चरण-स्पर्श किया।

"चौहान! तुम भी..." आक्रन्द के साथ चौला बोल उठी और रो पड़ी।

"क्या है, क्या है?"

"कुछ नहीं" आकुल चौला ने कहा।

"चौहान! तुम भी चौला को भूल गए?" सामन्त के मुख पर मृदुता छाई—वह समीप आया और हाथ जोड़ कर बोला "मैं कैसे भूलूँ—परन्तु जगत् बदल गया है—मैं क्या करूं?"

"सही है, सामन्त! प्रभास गया, गङ्गा गई, गुरुदेव गये...भगवान् के टुकड़े हो गए और फिर भी न जाने क्यों भगवान् की दासी मैं जीवित ही रही।" चौला की छाती सांस से भर आई।

सामन्त के हृदय के तार झनझनाये। उसका हृदय भी संवादिनी वेदना से गूंज रहा था। वह चौला की व्यथा को समझा।

"चौला!" उसने मन्द स्वर से कहा, "समझता हूं, सब समझता हूं—मेरा भी सब कुछ चला गया—घोघागढ़—घोघाबापा का कुल—गुरुदेव और सब कुछ।"

समदुखी एक दूसरे को जैसे समझ पाते है वैसी ही गहरी समझ से दोनों एक दूसरे की ओर देख रहे थे।

"सामन्त!" चौला ने आक्रन्द भरे हुए स्वर से कहा, "तुम भी चले जा रहे हो?"

"क्या करूं? मै तो घोघाबापा और गुरुदेव के समय का हूं—इस नवयुग मे मै पराया, अनजाना, असमझ हूं।"

"चौहान! मै भी इस लोक की नहीं—एक समय पूर्ववर्ती जन्म में तुमने मेरे हाथ से विजय तिलक करवाया था—उसके बदले में एक याचना करती हूं—दोगे?"

"बोल, बहन ! बोल ।"

"मेरे भोलेनाथ फिर प्रभास मे विराजमान हों तब तक तुम यहीं रहो—जो मै जीवित रही तो······?"

सामन्त को विजय तिलक का स्मरण हुआ । उस रात को की हुई मीठी गोष्ठी का स्मरण हुआ । उस रात को उसने भाई बन कर उसका कन्यादान किया था—वह सब उसे याद आया ।

"ठीक, चौला ! कबूल—फिर क्या ?"

"सामन्त ! शतायु हो मेरे वीर !"

चौला के मुख पर मन्द हास्य रम रहा था और जिसने महीनो से सुख, हर्ष अथवा शान्ति देखी भी न थी ऐसा सामन्त भी प्रत्युत्तर में हँस पडा और दो अकुलाये अकेलो को जगत् का भार कुछ हलका लगा ।

: ५ :

महीने भर बाद परम भट्टारक श्री भीमदेव महाराज की चौलादेवी की कोख से प्रथम पुत्र का जन्म हुआ । खम्भात में, पाटण में, सारे गुजरात मे आनन्द का महोत्सव मनाया गया । महाराज के सुख का पार न रहा । वे स्वयं खम्भात आये, पुत्ररत्न को खिलाया, दास-दासियो को सिरोपाव दिये । चौला उनकी प्रिय रानी थी । उन्हे पहला पुत्र हुआ था । उनके सुख एवं विजय पर कलश चढा था ।

जब प्रसव कालीन वेदना से चौला मुक्त हुई और जब उसे भान हुआ तब तो उसका मन पुत्र की ओर देखने का भी न हुआ । और जब उसने पुत्र को देखा, जब उसकी विस्तीर्ण छाती, सिंहसमान कटि और विशाल आँखे देखीं तब वह थरथर कांप उठी । वही छाती, वही कटि, वे ही आंखे—परन्तु अधिक बडी, अधिक वयस्क और अधिक प्रभावशाली—उसकी स्मृति में उपस्थित हुईं । उसे ऐसी कल्पना हुई कि जैसे उसने किसी हृदयवेधक स्वप्न में किसी भयावह राक्षस को ही देखा हो । उसे चक्कर आने लगे ।

देवाधिदेव महादेव जी की वचनदत्ता वह उस बालक को पार्थिव

अधमता की शृंखला समझती थी। जब वह उसे देखती तो उसके दुःख का पार न रहता।

दो महीने बाद विमल मन्त्री उसे पाटण ले जाने के लिए आये। क्योंकि मना कर देना संभव न था इस लिए वह तैयार हुई, और पालकी में लेटे-लेटे उसने पाटण का रास्ता धीरे-धीरे काटा।

आखिरकार वह गुजरात के पाटण नगर में जा पहुंची और राज-प्रसाद के अन्तःपुर में रही। रानी उदयमती आकर चौला से मिल गई—तीखी नाक वाली, स्वरूपवती, ऊँची, राजपूतनी—भीमदेव के अनुरूप अर्धांगिनी। दास-दासियों की दौड़ादौड़ हो रही थी, चौला रानी को सब तरह की सुविधा पहुंचाने के लिए सारा राजगढ़ ऊपर नीचे एक हो गया।

चौला की प्रकृति कुछ सुधरी थी, परन्तु इस भड़कीले महालय में उसे खम्भात में जितनी चैन थी उतनी भी चैन न हुई। खम्भात में सामने सागर था और उसके पेले पार भगवान् विराजते थे। वहा के राजमहल में मनुष्य भी कम थे, इतना आडम्बर भी न था और न इतनी दासियों का झुण्ड ही था।

आते ही पहले दिन उसे ऐसा लगा—कौन जाने कैसे यह हुआ—कि वे सब बाहरी सम्मान होते हुए भी उसे परकीय एवं अधम गिनते थे। "बात भी सही है"—दांत दबा कर उसने सोचा—"मैं न तो राज कन्या और न राजपूतनी, मैं तो देव की नर्त्तकी हूं। मुझे यहां कौन सा अधिकार ?"

और रोते हुए उसके हृदय में असह्य आघात हुए।

भीमदेव महाराज ने बड़े उत्साह से अपना काम समाप्त किया। उनकी रगों में नव सङ्गीत गूंज रहे थे। उनकी कल्पना उस भयङ्कर एवं रमणीय रजनी के चित्र उपस्थित कर रही थी—वही छत, वही चन्द्रिका, वही सङ्कीर्ण शय्या—छोटी और सुविधा से शून्य, और सामन्त से वार्तालाप, लग्नविधि और उन सब उपकरणों पर राज्य

करती हुई चन्द्रकिरणों से निर्मित चौला, उछलती, कल्लोल करती एवं रस से आप्लावित रहती। ऐसे-ऐसे विचार करते महाराज अन्तःपुर में पधारे।

चौला बैठी-बैठी अपने नृत्यकालीन वस्त्रों में मोती गूंथ रही थी। उस समय भी अन्तःपुर के अन्धेरे मे वह नील मेघ मे अन्तरित चन्द्रिका से शोभायमान निर्मल आकाश के भाग के समान दिखाई देती थी।

"चौला! क्या कर रही हो?"

चौला ने आंखे उठाकर देखा और महाराज पर थकी हुई निस्तेज दृष्टि डाली।

"अपने कपडो में मोती भर रही हूं।"

"कपडे? दासियां वहां गईं? और ये कपडे?"

"ये तो मेरे नृत्य के कपडे हैं—दासियां इन्हे छू ले तो ये अशुद्ध हो जायं।"

"ऊँह!" हॅस कर महाराज ने कहा "मैंने सुना है कि तुम रोज रात को नए कपडे बनाती हो—क्या ये वही हैं?"

चौला ने सिर के अभिनय से 'हां' कहा।

"परन्तु यह क्या पागलपन है, तू तो अब पाटण की रानी है, तुझे अब नर्तकी के इस वेश से क्या करना है?"

चौला उठ खडी हुई। लालिमा से देदीप्यमान उसके कपोल फीके, सुन्दर मुख को अनुपम बना रहे थे।

"महाराज! मै तो नर्त्तकी थी और रहने वाली—अपने देव की।" उसके स्वर मे कम्प था।

भीमदेव महाराज को वैसी रमणीय रजनी व्यर्थ कलह में खोनी न थी। वे तुरन्त शरण हो गये, "चौला मेरी भूल हुई। देव की नर्त्तकी ने तो मेरा सिंहासन उज्वल बना दिया। आओ···" कहकर उन्होंने हाथ बढ़ाकर उसे अपनी भुजा में लेना चाहा।

चौला ने प्रेमवश महाराज को आते देखा और कुछ देर तो वह कुपित नयनों से देखती रही। इतने ही में महाराज के हाथ ने उसका स्पर्श किया। जैसे कोई नाग डसने आया हो उस तरह समीप आते हुए हाथों की ओर वह विस्फारित नयनों एवं विवर्ण वदन से देखती रही। उसके रोमांच खड़े हो गए। उसका सारा शरीर भयत्रस्त हो सङ्कुचित हो गया। वह पीछे हटी और आते हुए फण का निवारण करने के हेतु उसने दोनों हाथ आगे रखे और साथ-ही-साथ उसके मुंह से दारुण चीख निकल पड़ी।

"चौला! चौला! यह क्या कर रही हो?"

"नहीं-नहीं-नही" उसने जैसे-तैसे अपनी इच्छा अभिव्यक्त की।

"क्या होगया? क्यों?" उस अस्वाभाविक व्यवहार के समझ में न आने से भीमदेव ने चिन्तातुर स्वर से पूछा।

चौला ने अपने हाथ आक्रन्दमय प्रार्थना के साथ जोड़े और अश्रुपूर्ण हो गद्‌गद् स्वर से कहा "महाराज! नहीं, नहीं—आज नहीं।"

"क्यों, आज क्या है?"

"भगवान् सोमनाथ"—और हिचकी पर हिचकी चलने के कारण वह अधिक न बोल सकी ... "भ—भगवान्..."

"क्या कोई व्रत लिया है?"

"हां"—एक रास्ता दीखने से चौला ने स्वीकार कर लिया, "अभी भगवान् की प्रतिष्ठा नहीं हुई।"

"ऊंह" भीमदेव ने हंस कर कहा "अब मैं समझा। परन्तु ऐसा कहीं व्रत लिया जाता है, ज़रा मेरा तो विचार करना था। मुझसे पूछना तो था?" महाराज शान्त हो पीछे हटे।

चौला को भी जरा शान्ति हुई "महाराज! भगवान् की छत्र-छाया में हमारा सम्मेलन हुआ और भगवान् के तो टुकड़े होगए"—और बोलती-बोलती वह छाती फाड़ कर रोने लगी।

"चौला! ज़रा भी चिन्ता मत कर। मैं ऐसा सरस मन्दिर बनवा रहा

हूं। और भगवान् की प्रतिष्ठा भी ऐसे भभके से करवाऊंगा—तू देखना तो सही, सारे भरतखण्ड को देखने के लिए निमन्त्रित करूंगा।"

"यह सब कब होगा?"

"सारा मन्दिर बंध जाय तभी तो हो न?"

डूबती चौला के हाथ में आशा की नौका आई। "महाराज! मुझे वहां भेज दीजिए—मैं मन्दिर बंधाऊंगी।"

"तू?"

"हां, मैं भगवान् की नर्त्तकी हूं" चौला ने कुछ उत्साह से कहा।

"पागल! तू तो गुर्जर भूमि की महादेवी है। तेरा और नृत्य का अब क्या सम्बन्ध है?"—महाराज ने हंस कर कहा।

महाराज ने तो एक सामान्य रूप से समझदारी की बात कही, परन्तु सारे जगत् के देखते किसी ने मानो तमाचा मार दिया है इस तरह चौला मान भंग तथा निराशा से कुचली हुई सी खड़ी हुई।

"मुझे प्रभास भेज दीजिए" चौलाने साश्रु नयनों द्वारा याचना की।

"चौला! तू चली जायगी तो मुझे यहां अच्छा कैसे लगेगा?"

"परन्तु मेरा व्रत", आई हुई आशा मानो फिर नष्ट हो रही हो इस भय से उसने फिर हाथ जोड़ विनती की।

भीमदेव का प्रचण्ड पुरुषत्व चौला के आकर्षण का वशंवद अवश्य था, परन्तु साथ-ही-साथ उनका उस कुसुम-सुकुमार नववधू के प्रति निःसीम प्रेम भी था। वही प्रेम चौला के प्रति उदार होने के लिए उसे प्रेरित कर रहा था। और महाराज हँस दिये।

"अरी भोली! तू मांगे और मै ना कह सकता हूं? जा, तू अपना व्रत पूरा कर। उस रात को विजय प्राप्त कर हम मिले थे, उसी तरह जब भगवान् की प्रतिष्ठा भरतखण्ड के राजन्य वर्ग के समक्ष मैं कराऊंगा तब ही हमारा पुनः समागम होगा",—और उन्होंने अपनी आशा से भरी हुई प्रणयपूर्ण ऊर्मि को व्यक्त किया, "और तब ही अनेक दिनों का उत्साह एक रात में पूरा करेंगे।"

"महाराज !" चौला पैरों मे गिरी, "आप तो कृपा निधि हैं। इस उपकार का बदला मैं कैसे अर्पण कर सकूंगी। मैं तो केवल एक किङ्करी मात्र हूं।"

उसने उभरते हुए आंसुओं को जैसे-तैसे बहाया।

: ६ :

परम भट्टारक श्री भीमदेव महाराजकी प्रिय पत्नी भगवान् सोमनाथ का मन्दिर बंधवाने प्रभास गई। साथ में दासीगण एवं कुछ सेना भी गई। कुछ दूर तक स्वयं भीमदेव महाराज मन्त्रिमण्डल के साथ उन्हें पहुंचाने गये। प्रभास पर्यन्त दामोदर मेहता भी गये, कारण सोमनाथ के भक्त उन भावुक ब्राह्मणको भगवान् को प्रतिष्ठा करवाने की त्वरा थी। कुंवर क्षेमराज के स्वास्थ्य के निरीक्षण के लिए साथ राजवैद्य भी गये।

प्रभास की ओर पैर बढ़ाते चौला के हृदय में कुछ उत्साह सा हुआ, परन्तु वह अधिक काल तक नहीं रहा। वहा पहुँचने पर चौला ने ऊंचा, विशाल, नवीन कोट बंधता हुआ देखा, नये मार्ग एवं नये कुंए बावड़ी बनते देखे, थोडी वस्ती वाले मुहल्ले देखे, नये घाट के नये प्रकार के आधे बंधे हुए शिखर बद्ध मन्दिर देखे, राजप्रासाद जैसा गगनराशि का मठ देखा और पाटण के राजमहल को उत्तम अनुकृति हो ऐसा महाराज का प्रासाद देखा। जहा पहले नर्त्तकियों का आवास था वहा ब्राह्मणों के लिए नई वस्ती बनाई जा रही थी और भगवान्‌के मन्दिर का शिखर बड़ा मोटा परन्तु भिन्न आकृति वाला—जिन अटारियों पर वह बैठा करती थी उन अटारियों से विहीन—आधा बंधा हुआ पड़ा था।

यह तो नवीन एवं सुन्दर सृष्टि किसी अपरिचित विश्वकर्मा ने बनानी शुरू की थी। उसके भगवान् का तो वह धाम न था। वह महल गई। भीमदेव महाराज द्वारा उसी के लिए विशेषरूप से बनवाए हुए अन्तःपुर में वह गई और अपरिचित वातावरण में आकुलता का अनुभव करती हुई अश्रु बहाने लगी।

हिम गिर कर जिस प्रकार भूतल को आच्छादित करता है उसी

तरह ग्लानि उसके अन्तस्तल को आच्छन्न कर रही थी। उसका इकरंगा विस्तार उसके प्रत्येक भाव, ऊर्मि एवं कृत्यों को वही स्वरूप दे रहा था।

पूर्वजन्म की अपूर्ण वासनाओं से प्रेरित होकर जैसे कोई प्रेत लोक का अधिवासी इस लोक में पर्यटन करे उसी तरह महादेवी की मर्यादा से कितनी विलग हो सकी उतनी विलग होकर. अधूरे पत्थरों मे, ईंटों के किनारे, कारीगरों और लकडियां बीनते हुए मजदूरों के बीच मे वह घूमती-फिरती और अपरिचित एवं पारकीय-सी प्रतीत होती हुई उस नवनिर्मित इमारत में, अपने हृदय मे अङ्कित—नष्ट परन्तु अविस्मरणीय—सृष्टि खड़ी करती थी।

यहां वह बचपन मे खेली थी। यहां गङ्गा ने यथोचित ताल न रखने की त्रुटि पर उसकी चिमटी भरी थी। यहां बैठकर उसने आलाप लगाना सीखा था और यहां गुरुदेव ने उसे ठपका दिया था। और यहां वह कुण्डला से लड़ी थी। दूसरी ओर जहां अब दीपमालिका बनाई जा रही थी—वहां वह भीमदेव से अलग हुई थी, त्रिपुर सुन्दरी का छोटा-सा मन्दिर जो बन्द दीवारों के मध्य स्थित था, तथा जहां शिवराशि उसे पकड़ लाया था, वहां महामाया का विशाल मन्दिर खुले चौक के बीच मे खड़ा किया जा रहा था। परकोट मे जहां अब गगन सर्वज्ञ का मठ खड़ा हो रहा था वहां वही औसारा था जिसकी छतपर भगवान् पिनाकपाणि को वरने के हेतु वह पाटण के स्वामी के वश में हो गई थी ....।

और जब वह भगवान् के नये बंधते हुए गर्भगृह के सामने पहुँची तब उसकी आँखो के सामने अन्धेरा छा गया। ईंट और पत्थर अदृश्य हो गये, मणि-मण्डित सभामण्डप जैसा-का-तैसा होगया और उसने गङ्गा और गुरुदेव को उसकी चिता तैयार करते देखा।

उससे भी भयङ्कर दर्शन की उसे याद आई—जहां उसके प्रियतम देवाधिदेव महादेव विराजते थे वहां अब खाली कोठरी बँध रही

थी; सृष्टि के समय ब्रह्मा और विष्णु के बीच जिन्होंने कलह मिटाया था वे उसके साथ वहां न थे···।

और प्रलय काल में लीन होती हुई सृष्टि की भयङ्कर निर्जनता में अवशिष्ट रही हुई अन्तिम मानवीय आकृति मानो वह स्वयं हो, इस तरह निराशामय दृष्टि चारों ओर डालती हुई चौला साक्रन्द से निज हृदय को विदीर्ण कर रही थी।

: ७ :

सूर्य उगता और अस्त होता। पत्थर के मन्दिर और मकान धीरे-धीरे ऊँचे उठने लगे; हाटों और चौकों में मनुष्य की बस्ती बढ़ती जाती थी।

परन्तु मानो प्रेतपुरी में ही वह वास करती हो इस तरह चौला दिन-पर-दिन अन्दर-ही-अन्दर घुलती जारही थी। इस अखिल रचना में कुछ भी उसे अपना प्रतीत न होता था, वे इमारतें भी उसे अपनी नहीं लगती थी। वह उसका प्रभास न था, वह उसके देव का धाम न था। गगन राशि—गगन सर्वज्ञ भी उसका न था। वह तो एक मोटा, पुष्ट, दुकूलधारी साधू था।

उसका जगत् केवल उसके हृदय में था—वहां पूर्वकाल के मन्दिर में घण्टानाद होता था, वहां गङ्ग सर्वज्ञ अभी भी गौरव के साथ आरती करते थे, वहां गङ्गा अभी नर्तकियों को गीत और नृत्य सिखाती थी वहां अभी भी वह नाचती, कूदती और गाती, हँसती-हँसती अपने भोलेनाथ को रिझाती और प्रणयोन्मादिनी सारिका के समान वह बिल्वदलों के द्वारा प्रभु की पूजा करती।

यह थी उसकी सच्ची दुनिया, जहां वह जागती और जगत् सोता। जहां जगत् जागता था वहां वह यन्त्रवत् खान-पान करती और किसी प्रपञ्च की चर्चा न करती। वह सारे दिन और रात अपने कपड़ों को हीरे, मोती और माणिक्य से भरा करती। उन पर अद्भुत कलाकारता करने के अतिरिक्त उसके जीवन में रस न था। दम्भ

दासियों ने उस महादेवी की उत्सूत्रता में कौतुक रखना छोड़ दिया। वह विक्षिप्त थी या नहीं इस तत्व का निश्चय वह न कर सकी। परन्तु सब परिचारक उसे देखकर डरते। वह जहां जाती वहां से पार्थिव लोककी ऊष्मा चली जाती और जिस स्थान को वह छोडकर चली जाती वहां कुछ समय तक सबको सूना-सूना-सा लगता था।

जब सांझ होती और भगवान् की आरती का समय आता तब चौला मानो चौंककर जागती और उसे जगत् की सुध आती। जिन वस्त्रों को असीम उत्साह से वह तैयार करती उन्हें वह अपनी शय्या पर फैलाती और बड़ी देर तक देखा करती।

उन वस्त्रों को धारण करके प्रियतम को कभी रिझाने की, और उसकी क्षमा याचना करने की आशाएं उसके हृदय को उल्लसित करतीं।

उसे उस प्रबोधिनी एकादशी का स्मरण होता, जब उसने अपने नृत्य के द्वारा भोले शम्भु को वश में किया था।

किसी दिन फिर—फिर से गङ्ग सर्वज्ञ के समक्ष वह भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण करेगी।

थोड़ी देर वह देखती रहती; यदि कहीं दूर से शङ्खनाद होता अथवा किसी वृषभ के घूंघरू की ध्वनि सुनाई देती तो उसका हृदय उछालें मारता था। वह एक बार फिर उत्साहिनी बालिका बन जाती थी। वह चारों ओर देखती, खड़ी रहती और यदि कुछ भी सुनाई न देता तो बड़ी देर तक बाट जोहती और अन्त में रो पड़ती।

"नहीं आवे, नाथ फिर नहीं आवे!" इस तरह वह असम्बद्ध शब्द बोल उठती, अपने बाल खींचती और हिचकियां लेती। निराशा की भीषण अमा उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर व्यापती थी। वह भ्रष्ट होगई थी, उसने अपने प्रियतम को छोड़कर दूसरे मनुष्य के साथ व्यभिचार किया था। उसके स्वामी उससे कुपित हो चुके थे—वे कदापि न आवेंगे। उसे कदापि क्षमा न करेंगे।

उसकी अधोगति पूर्ण हो चुकी थी, इसी तीव्र वेदना में वह तड़फड़ाती और अनेक बार बेसुध भी हो जाती।

प्रतिदिन का यही उसके जाग्रत जीवन का क्रम था। और किसी समय जब वह कुँवर क्षेमराज को लेती तब तो उसमें विष का बिन्दु गिर जाता। दिन-पर-दिन वह भीमदेव की प्रतिमा ही बनता जाता था और वह उसका पार्थिव नागपाश बन उसका गला घोंटता रहता था।

इसी प्रकार नित्य साँझ पड़ती और सुबह होती; और चौला अपने प्रणयोन्माद में मोहित हो उसी एक पल की राह देखती रहती और जीवन की आशा लगाये रहती जिसमें फिर कभी स्वामी पधारें और उसे क्षमा कर फिर अपनी गोद में ले लें।

यों दिन गिनते महीनों बीत गए, शिशिर का अवसान हुआ, निदाघकाल का प्रारम्भ हुआ, ग्रीष्म ऋतु समाप्त हुई और वर्षा का आगमन हुआ।

नन्दी के घण्टानाद की राह देखते उसका धैर्य चुक गया। सेज को सजाते और वस्त्रों को बिछाते-बिछाते रात वैरिन होने लगी—तथापि न तो आये भोलेनाथ और न कभी आया वही पल। उसके मन की भावना मन ही में रही।

: ८ :

असौज का महीना आया। शरद् की उल्लासमयी के दिन भगवान् की प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त आया।

परम भट्टारक श्री भीमदेव-महाराज की ओर से निमन्त्रण भेजा गया और देश-देश के राजा प्रभास में उपस्थित हुए। नगरवासियों में पहले से अधिक चेतना जागृत हुई। व्यापारीगण बाज़ार में बैठे। घर-घर वेद-घोष सुनाई देने लगा। चौक-चौक में समस्त भरतखण्ड से आये हुए यात्रियों ने रहना शुरू किया और लकुलेशमत के अधिष्ठाता गगनसर्वज्ञ ने महारुद्र का प्रारम्भ किया।

प्रभासगढ़ पर डङ्के गड़गड़ाए और निशान फड़फड़ाए। और वह

भगवान् का धाम- म्लेच्छविमर्दन बाणावलि भीमदेव के प्रताप से पूर्व से भी अधिक भव्य बन भगवद्भक्ति की विजय दुन्दुभि बजाने लगा।

चौला अपने महल की अटारी पर खड़ी रही। समुद्र पर दृष्टि को स्थिरकर स्वप्न देखती रही। और चारों ओर गूंजती हुई "जय सोमनाथ" की विजयघोषणा उसके स्वप्नों को नूतन वेग एवं एक अन्य ही चेतना दे रहे थे।

भीमदेव महाराज पधारे—सामन्त चक्र से संवृत, विजय के नशे में चूर सेना से सुशोभित। सारा गाँव पागल बन गया। गगन सर्वज्ञ ने विजेता का सत्कार किया और चालुक्य शिरोमणि ने चारों हाथ दान किया। परन्तु चौला के स्वप्न के गढ जैसे थे वैसे ही अभेद्य रहे।

प्रभास के राजमहालय में भीमदेव महाराज का हृदय गर्व से उत्फुल्ल हो रहा था। आज उनके वैभव एवं कीर्ति की सीमा न रही। म्लेच्छ-विमर्दन और अप्रतिरथ वीर्य की विरुदावली कवियों ने उन्हें समर्पण की थी। उनके प्रताप से नूतन प्रभास अनुपम सौंदर्य से सुशोभित हो रहा था और कौस्तुभ मणिसम तेजस्वी सागर से तिर कर आरहा था।

सोम ने सत्ययुग में, रावण ने त्रेता में और द्वापर में श्रीकृष्ण ने जैसे मन्दिर की स्थापना की वैसे ही कलियुग में वे चालुक्य-श्रेष्ठकर रहे थे।

भीमदेव महाराज अन्तःपुर में पधारे—गर्व मे हरपाते, कीर्ति से तेजस्वी परन्तु थे वैसे ही भोले, रसिक और शूर। भगवान् की प्रतिष्ठा होगी। चौलारानी अपना व्रत समाप्त करेगी और वह युद्ध की रात मनाया हुआ क्षणिक आनन्द अब आजीवन व्याप्त होगा।

वे प्रियतमा से मिलने गये परन्तु उन्होंने चौला की अविस्मरणीय आकृति में किसी परलोकवासिनी अप्सरा के रूप की तरह अपनी रानी के स्वरूप को पाया।

"चौला! आज मेरे जीवन की धन्य घड़ी है। आज मैं भगवान् सोमनाथ की प्रतिष्ठा कराऊंगा। सारा भरतखण्ड मेरी कीर्ति का गान करेगा। चन्द्रमा के द्वारा पूर्व स्थापित मन्दिर आज पुनः मेरे द्वारा

स्थापित होगा।" —साथ ही उन्होंने हंसने का भी प्रयत्न किया।

"महाराज।" खेदयुक्त अपरिचित स्वर से चौला ने कहा, "मैं भी इसी पल की राह देख रही थी। कब मेरे नाथ विराजमान हों। कब फिर उनकी आरती हो और कब फिर उनके सामने नृत्य हो।"

"नृत्य?" भीमदेव ने कहा "अभी तक उसे, तू न भूली—तुझे अब कहां नृत्य करना है?"

चौला की आंखों में भय की छाया दिखाई दी। भीमदेव महाराज ने खम्भात में ऐसी आंखें देखी थीं—वैसी ही; आज देखकर महाराज काँप उठे। उनके पास अथाह काम था। प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त समीप आ रहा था। उनके हृदय में रमा हुआ आनन्द लुप्त हो जाय यह उन्हे पसन्द न था। अतएव वे खिलखिलाकर हंस पड़े।

"अरे तू देखना तो सही!" उन्होंने उत्साह को बनाये रखनेका प्रयत्न किया। "आज रातको तेरा व्रत पूरा हुआ कि मैं आऊंगा। अपनी सेज उस दिन जैसी ही सजाकर तैयार रखना" इतना कहकर वे मुडे क्षोभ का अनुभव करते हुए भी हंसे।"

और असह्य वेदना से मानो आकुल ही हो इस तरह चौला ने अपने गले मे हाथ लिपटाये। उसके होंठ फड़कने लगे।

"आज रात को—आज ही की रात···हां, आज रात को" उसके कण्ठ से यथा कथाञ्चित् मन्द स्वर निकला और भीमदेव महाराज अपने काम पर चल दिए।

: ६ :

उतरती दोपहर होने आई थी। अपने कमरे मे चौला और सामन्त एक दूसरे की ओर देखते हुए बैठे थे। उन दोनों की दृष्टि खिडकी के बाहर कुछ-न-कुछ देख रही थी।

"चौहान!" चौला ने मन्द स्वर से कहा "आज मेरे हृदय में कुछ उल्लास-सा हो रहा है। मेरे कानों में कोई आवाज़ सुनाई देती है। मुझे गुरुदेव और गङ्गा 'आज सुबह से बुला रहे हैं—दोनों मुझे कहने लगे

कि मेरा भगवान् मुझे न छोड़ेगा—मेरे प्राणनाथ जैसी मैं हूं वैसी को ही फिर अङ्गीकार करेंगे···।"

"......मैं भोली हूं—मेरा भोलानाथ मुझे न भूलेगा। मैं उसकी हूं, उसके चरणों की रज हूँ—जैसी हूँ वैसी—भ्रष्ट एवं पातकी—तथापि चौहान वीर! आज नवनूतन आशा मेरे मन में उमड़ रही है—आज फिर मुझे शान्ति मिलेगी। सुबह से मुझे नन्दी का घण्टानाद सुनाई दे रहा है...।"

"आज वे आयंगे"—चौला रो पड़ी, "और मुझे क्षमा करेंगे। मैं जैसी हूं वैसी ही को अपनी बनायंगे।"—इतना कहने पर वह अविरल आँसू बहा कर रोने लगी।

"...मैंने कुछ भी ऐसा नहीं किया कि मेरा नाथ मुझे त्याग दे। चौहान! वे तो करुणा के सागर हैं और मैं तो हूँ उनकी किङ्करी—वे यदि मेरा हाथ न पकड़ें तो और मुझे कौन सहारा दे सकता है?

"चौला! आज मुझे भी अपना घोघागढ दिखाई दे रहा है। आज मैं भी कृतकृत्य हुआ हूँ।"

"मेरा इतना तो कर दो, चौहान वीर! जन्मजन्मान्तर मैं आपकी ऋणी रहूँगी!"

सामन्त थोड़ी देर तक रोती हुई चौलाकी ओर देखता रहा। पल भर के लिए उस दुःखी के दुःख की रेखाएं लुप्त हुईं, और विजयतिलक करने वाली बाल नर्त्तकी की सुहावनी रेखाएं उसकी दृष्टि-पथ में उतर आईं। उसने विजय पाई थी, देव को उभारा था, परन्तु अपने व्यक्तित्व का नाश कर दिया था।

उस समय जीवन के साथ उसे बांधता हुआ वह छोटा-सा तार हाथ जोड़कर याचना करता था। उस याचना को अस्वीकार करना? क्या उसके हृदय में बसी हुई उस अद्भुत सुन्दरी की वाञ्छनाएं अपरिपूर्ण रखी जायं? क्या दुनिया को, प्रतिष्ठा को, भीमदेव महाराज की कीर्ति को प्रिय मानकर, दुःखी जीवन की निराकृति की जाय?

एक पल में उसने निश्चय किया। वह तो सारी अवनी पर अकेला ही था। एक मृत-प्राय चौला का स्नेह ही उसका समग्र धन था। उसे किसी की क्या परवाह? उसे प्रतिष्ठा की क्या परवाह? भीमदेव से उसे क्या? कीर्ति, धन एवं राज्य से उसे क्या? वह तो अरण्य की रेत का एक कण, देव कृपा की महिमा से उस कण का कैलाश हो गया था और जब देव फिर विराजमान हो जायं तब फिर वह कण-का-कण। उसकी साँडनियां तैयार थीं। सांझ की आरती हुई कि वह अपने मरुदेश के लिए रवाना हो जायगा—उसी रास्ते जिससे उसके पूर्वज गये थे। क्यों फिर चौला की याचना को वह स्वीकार न करे?

वह खड़ा हुआ और उसने कटिपर बांधी हुई भेंट को मजबूत किया।

"चौला!" उसकी आवाज़ में जीवन भर का प्रेम उछाल आया, "चौला मैं तेरा दास हूं, तेरी आज्ञा सिर आंखों पर उठाऊँगा। आरती के समय उपस्थित रहूंगा।"

चौला के मुँहपर लाली छा गई।

"चौहान! तो मैं तैयार रहूंगी।"

: १० :

सांझ की आरती का समय हो रहा है। सभा-मण्डप देदीप्यमान हो रहा है। सैंकड़ों मणिमय स्तम्भों में सहस्र दीपकोंकी प्रतिच्छाया तेज को प्रसर कर रही थी। पहले की अपेक्षा सरस एवं विशाल गर्भ द्वार से भगवान् के दर्शन हो रहे थे—वैसे ही सुन्दर, चन्दन चर्चित और बिल्व के ढेर में सुशोभित—ऊपर सुवर्ण की जलाधारी लटक रही है और नीचे कोने-कोने पर सुवर्ण के दीपक जल रहे हैं।

बाहर सभामण्डप में राजाओं की बैठक है। दाहिनी ओर महाराज भीमदेव विराजमान हैं। साथ ही सालोर के वाक्पतिराज बुढ़ापे की मूंछों को जवानी के ज़ोर से ताव दे रहे है, और सपादलक्ष के बालमदेव चौहान—हज़ार रणों के खिलाडी—गर्व से हँस रहे हैं। आबू के धुण्डिराज और स्थानक के मुकुन्ददेव पास बैठे हुए हैं और उनके पीछे

कच्छ और सोरठ के स्वामी तथा अन्य सामन्तगण प्रसन्न वदन से बैठे हैं।

गज़नी के अमीर को हराने के लिए दी हुई आहुतियों का आज सब फल चख रहे हैं। आख़िर अनादि एवं अनन्त भगवान् अपने धाम में विराजमान हैं, यह देख सब सहे हुए दुःख आज सुखद स्मरण में परिवर्तित होगए हैं।

शङ्ख बजता है और सब उठ खड़े होते हैं। गगन सर्वज्ञ पादुका धारण कर, चीनांशुक पर व्याघ्रचर्म ओढ़कर काली जटा को ज़रा क्षोभ से सँवारते हुए आरहे हैं। गुरुदेव के चलने और बोलने का कुछ-कुछ ढंग उनमें भी दिखाई देता था।

वे सबके "नमःशिवाय" को स्वीकार करते हुए मन्दिर में पहुँचते हैं और वहां पल भर ध्यान कर बिल्व चढ़ाते हैं और घण्टा-नाद प्रारम्भ होता है।

काश्मीर नरेश के द्वारा भगवान् के चरणों मे समर्पित रत्नजटित आरती को गगन सर्वज्ञ अपने हाथ में लेते है। सब साथ आरती गाते हैं।

तत्पश्चात् स्वयं वे "जय सोमनाथ" की घोषणा करते है और सभा-मण्डप मे बैठे हुए समस्त महारथी उसमें सहयोग देते हैं। आकाश में धीरे-धीरे फैलती हुई गर्जना के अनुरूप वह घोषणा परकोट में, उसके बाहर, सारे नगर में प्रसार पाती है। नगाड़े बज रहे हैं। नगरजन एवं सैनिक गण सब साथ-साथ जय-घोषणा करते है। समस्त प्रभास—जैसा पहले था वैसा ही—सोमनाथमय हो उठता है। सब एक ही स्वर से "जय सोमनाथ" की गर्जना से गगन गुँजा देते हैं।

समस्त जन शान्त होते है। गगन सर्वज्ञ अपने आसन पर विराजमान हो आज्ञा करते हैं—नृत्य होने दो—"

शिष्यगण पुकारते है: नृत्य का प्रारम्भ करो—और भी पुकार होती है, परन्तु नर्त्तकी तैयार नही और न तैयार थे बजवैय्या।

एक पल—दो पल—पांच पल।

राजन्य गण विस्मित हो एक दूसरे की ओर देखने लगे। गगन सर्वज्ञ के भाल पर भ्रूभङ्ग स्पष्ट दिखाई दे रहा था…।

परन्तु नूपुर मुखर होते हैं, मृदङ्ग की ध्वनि प्रस्तुत होती है।

नर्त्तकी सभामण्डप में प्रवेश करती है।

हीरे, मोती और रत्नों से झलकती हुई देदीप्यमान कोई दिव्य देवाङ्गना तथा उसके वस्त्र एवं अलङ्कारों मे सहस्रधा होती हुई दीपकों की दीप्ति समस्त समाज को अञ्जित करती है।

वह धीरे-धीरे आगे बढती है जैसे वह चल ही न सकती हो। उसने अपना मुँह ढाँक कर नीचे तक ओढ लिया है।

उसके पैरों में शक्ति बढ़ रही है। मृदङ्ग के साथ पैर भी उठते जाते हैं। गायिकागण गिरिजा की तपश्चर्या का प्रसङ्ग प्रारम्भ करती हैं। मन्द कम्पायमान स्वर से नर्त्तकी स्वयं भी गाती है—नितान्त मन्द स्वर से—जिसे कोई सौभाग्य से ही सुन सकता हो। गीत हो रहे हैं।

मृदङ्ग की प्रतिध्वनि मण्डप में होती है और नर्त्तकी झणत्कार के साथ फूल बीनती है, माला गूंथती है और बिल्वदल भी साथ लेती है।

धमक-धमक वह पूजा करने जाती है, वह गर्भद्वार के सामने पहुँचती है, हाथ जोड़ती है, नमन करती है और साष्टांङ्ग प्रणिपात करती है। तत्पश्चात् वह शिव की अर्चना नृत्य एवं अभिनय के साथ करती है।

नर्त्तकी के मुखचन्द्र को देखने की लालसा में अधीर राजन्य अपनी धीरता को बिसराते हैं। यह कौनसे प्रकार का नृत्य है, यह जानने के लिए उत्कण्ठित गायिकाएं गीत बन्द करती हैं। केवल मृदङ्ग की ध्वनि हो रही है और साथ नर्त्तकी के चरणों के घुंघरू ताल दे रहे हैं।

समस्त समाज पर अकल्पित जादू फैल जाता है। यह नृत्य है या

नहीं इसका भी भान किसी को नहीं रहता। सब टकटकी लगाकर उस अद्भुत नृत्य को देख रहे है।

अभिसारिका के समान वह नर्त्तकी पूजा समाप्त करती है। तत्पश्चात् वह शिवजी से विनय करती है। फिर घूमती है और प्रार्थना करती है। उसके अङ्गो से लालित्य की सरिता बह निकलती है। उसका करुणगीत मन्दवाही नूपुर गाते हैं......।

- .....वह शङ्कर को रिझाने का प्रयास कर रही है—उन्हे हँसाने का प्रयत्न करती है। वह क्षमा की याचना करती है—निराश हो वह पीछे हटती है। लड़खडाते पैरों से वह लौटती है।

भीमदेव महाराज उन्मत्त के समान विदीर्ण नयनों से उस आकृति, उस नृत्य, उस अभिनय को देख रहे हैं।

गगन सर्वज्ञ की आँखो मे भय व्याप रहा है।

नर्त्तकी एक बार फिर शङ्कर को प्रसन्न करने का अन्तिम प्रयास करती है; वह मानो आक्रन्द करती हो ऐसा नृत्य करती है। रुदन उसके झांझर से झर रहा था। हिचकियाँ मृदङ्ग से निकल रही हैं अथवा नर्त्तकी के कण्ठ से, यह कोई कह न सकता था।

देखने और सुनने वालो के हृदय रोने लगते हैं।

नर्त्तकी गर्भद्वार पर खड़ी होती है। शङ्कर को रिझाने का प्रयत्न प्रस्तुत होता है। निराशा की मूर्त्ति बनकर वह अपना सिर पटकती है। अभिनय एवं पद-विन्यास के द्वारा वह भगवान् के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण करती है।

नृत्य मन्द होता है—नर्त्तकी का मस्तक झुकता है—मृदङ्ग तथा झांझर भी मन्द होते है... ..रुक जाते हैं।

नर्त्तकी प्रणिपात करती है—मृदङ्ग विपल के लिए स्तब्ध होता है।

......और झणत्कार के साथ नर्त्तकी खड़ी हो जाती है—शिव प्रसन्न हुए ऐसा उसकी ठुमकी पर से मालूम होता है...।

वह उछली और मानो वह अन्तिम तांडा हो इस तरह झाझर की

रदार झणत्कार के साथ विजयोल्लास को अभिव्यक्त करती है।

मृदङ्ग धमधमाता है—धा धा किट धा, धा धा किट धा—धा धा कट धा। चित्रवत् बनी हुई जनता स्तब्ध हो देखती रहती है।

···और एक महाप्रयत्न कर विजय को दर्शाते हुए तोडे को लेते ए नर्त्तकी के मुख पर से परिधान कुछ खिसक जाता है।

सूखे स्वरूपवान् मुख पर दिव्य सुख का अमर तेज तप रहा है—सकी आंखों में प्रणय की विद्युल्लेखा चमकती है।

तोडा पूरा हो उससे पहले ही वह गर्भद्वार की ओर छलांग मारती —देहली पर अपना सिर टकराती है।

मृदङ्ग अटकता है—झांझर भी रुक जाती है।

सिर देहली पर से निश्चेतन हो एक ओर झुक जाता है। शरीर शिथिल हो लोष्ठमय हो जाता है।

तलवार निकालते हुए भीमदेव को हाथ से रोककर गगन सर्वज्ञ उठ कर नर्त्तकी के पास दौड़े हुए जाते हैं।

उस धन्य पल में चौला ने अपने भोलेनाथ के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर दिया।

चारों ओर फैली हुई अभङ्ग शान्ति में एक हिचकी सुनाई देती है। एक योद्धा शीघ्रता के साथ सब लोगों में से घुसता हुआ अन्धेरे में अदृश्य हो जाता है।